समकालीन हिंदी रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर के रंग-प्रयोग

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ की पीएच.डी. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

शोध निर्देशक

डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत

शोधार्थी

ऋतु रानी

पंजीयन सं. CUH1701210204

अनुक्रमांक: 10204

हिंदी विभाग

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान पीठ

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़- 123031

[2021]

घोषणा-पत्र

मैं, **ऋतु रानी** घोषणा करती हूँ कि मैंने **डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत** के शोध निर्देशन में **'समकालीन हिंदी रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर के रंग-प्रयोग'** विषय पर पीएच.डी. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध पूर्ण किया है। मेरा यह काम पूर्णतः मौलिक एवं शोधपरक है। मेरी जानकारी में इससे पूर्व हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध कार्य नहीं हुआ है।

शोधार्थी

(ऋतु रानी)

पंजीयन सं. CUH1701210204

अनुक्रमांक : 10204

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री ऋतु रानी ने मेरे शोध निर्देशन में पीएच.डी. (हिंदी) की उपाधि हेतु **'समकालीन हिंदी रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर के रंग-प्रयोग'** विषय पर शोध कार्य पूर्ण किया है। यह शोध कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है।

मैं इस शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत करते हुए इसे मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

अध्यक्ष/ प्रभारी

हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

शोध-निर्देशक

(डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत)

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगगढ़

आभार

प्रस्तुत शोध प्रबंध के पूर्ण होने में कई व्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत के प्रति आभार प्रकट करती हूँ, जिन्होंने मुझे इस शोध विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की। मेरे शोध कार्य पर उनकी दृष्टि लगातार रही जिसके फलस्वरूप इस शोध प्रबंध का कार्य सम्भव हो सका। मैं विभाग के सहायक प्रोफेसर डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय तथा डॉ. अमित कुमार के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अपने उपयोगी सुझावों से सदैव मेरा मार्गदर्शन किया।

मैं हबीब तनवीर की दोनों बेटियों, नगीन तनवीर तथा ऐना (Anna) तनवीर का धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्त दिनचर्या में से समय निकाल कर हबीब तनवीर के जीवन और उनके रंगकर्म पर मुझसे बातचीत की। मैं डॉ. कपिल तिवारी तथा वसंत निरगुणे का भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने हबीब तनवीर के व्यापक रंग व्यक्तित्व पर मेरी दृष्टि को स्पष्ट किया। युवा पत्रकार पुष्पेंद्र का आभार जिन्होंने भोपाल में रहने और क्षेत्रीय कार्य में मेरी मदद की।

मैं 'नया थियेटर' के वर्तमान निर्देशक रामचन्द्र सिंह का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने बीच-बीच में नया थियेटर के साथ रहकर हबीब तनवीर के नाटकों की प्रस्तुति प्रक्रिया को देखने का अवसर दिया तथा विस्तार से उनके नाटकों के बारे में बताया। नया थियेटर के उन सभी शहरी और लोक कलाकारों के प्रति आभार जिन्होंने हबीब तनवीर और उनके नाटकों पर बातचीत के लिए समय दिया। इस कड़ी में मैं रामशरण वैष्णव और उनकी पत्नी लता खापड़े के प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने राजनांदगांव में रहने तथा

तमाम शोध सामग्री संकलन में मेरी हर संभव सहायता की। उन सभी आलोचकों, रंगकर्मियों, लेखकों के प्रति भी आभार जिन्होंने शोध विषय पर बातचीत करने हेतु अपना समय दिया।

मैं अपने स्नातक कॉलेज के अध्यापक डॉ. प्रभात कुमार तथा डॉ. रामाशंकर कुशवाहा के प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने सदैव मुझे प्रेरित किया तथा हर विपरीत परिस्थिति में एक अभिभावक की तरह मेरे साथ खड़े रहे। मैं अरविंदो कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी के एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. हंसराज सुमन का आभार व्यक्त करती हूँ जिनका सहयोग और मार्गदर्शन इस शोध प्रबंध में प्राप्त होता रहा। मैं म.गा.अ.हि.वि. वर्धा के फिल्म और नाट्य विभाग में सहायक प्रोफेसर तथा एम.फिल. के मेरे शोध निर्देशक डॉ. सतीश पावड़े के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरे प्रति अपने आत्मीय व्यवहार में कभी कमी नहीं आने दी।

मैं अपने परिवार के सदस्यों (माता-पिता, भाई-भाभी, दीदी) का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे घर की जिम्मेदारियों से हमेशा मुक्त रखा है। उनके आशीर्वाद और स्नेह के बिना तो यह शोध कार्य संभव ही नहीं था। मैं अपने सभी दोस्तों, साथी शोधार्थियों (पीएच.डी. एवं एम.फिल.) तथा विभाग के पूर्व शोधार्थी दीपक के प्रति भी आभारी हूँ जिनका सानिध्य, उत्साह इस शोध कार्य के दौरान मुझे प्राप्त होता रहा। साथ ही ह.के.वि. के सभी शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक कर्मचारियों के प्रति भी आभार। अंत में उस खास व्यक्ति को विशेष आभार जो सालों की इस यात्रा के उपरांत भी स्मृति-शेष है।

दिनांक ..... ऋतु रानी

स्थान .....

अनुक्रमणिका

आभार i-ii

भूमिका 1-4

प्रथम अध्याय - हबीब तनवीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 5-42

1.1 व्यक्तित्व

1.2 कृतित्व

द्वितीय अध्याय - समकालीन हिंदी रंगमंच : परम्परा और प्रयोग 43-80

2.1 रंगमंच की परम्परा और स्वरूप

2.2 समकालीन हिंदी रंगमंच : विविध प्रयोग

2.3 समकालीन रंग परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर

तृतीय अध्याय - हबीब तनवीर के नाटकों की विवेचना 81-134

3.1 बाल नाटक

3.2 मौलिक नाटक

3.3 लोक कथाओं आदि से सम्बंधित नाटक

3.4 अनूदित / रूपांतरित नाटक

चतुर्थ अध्याय - हबीब तनवीर के नाटक : रंगमंचीय आयाम 135-184

4.1 लोक शैलियों और लोक तत्त्वों का प्रयोग

4.2 रंगोपकरण

4.3 रंग संगीत

4.4 नाट्य रूढ़ियां

पंचम अध्याय - हबीब तनवीर के नाटक : भाषा और शिल्प 185-227

5.1 छत्तीसगढ़ी बोली का प्रयोग

5.2 उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग

5.3 कथावस्तु

5.4 चरित्र-चित्रण

5.5 गीत-योजना

उपसंहार 228-232

संदर्भ ग्रन्थ सूची 233-242

भूमिका

नाटक की कसौटी रंगमंच को माना गया है और ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रंगमंच एक ऐसी प्रदर्शनकारी कला है जो मनोरंजन के साथ-साथ जीवन के विविध अनुभवों को रूपायित करते हुए दर्शकों को सोचने पर मजबूर करती है। इसमें सभी ललित-कलाएं समन्वित हो जाती हैं। रंगमंच की परम्परा का इतिहास वैसे तो बहुत पुराना है, लेकिन हिंदी में इसकी शुरुआत लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले हुई और तब से लेकर अब तक हिंदी रंगमंच ने अपनी विकास-यात्रा के दौरान अनेक उपलब्धि प्राप्त की है। सर्जनात्मक रंग दृष्टि के परिणाम स्वरूप समकालीन हिंदी रंगमंच पर कहानी, उपन्यास, कविता जैसी साहित्यिक विधाओं के रंगमंचीय प्रयोग देखने को मिलते हैं। नुक्कड़ नाटक की लोकप्रियता बढ़ी है। इसने पश्चात्यनाट्य-परम्परा एवं चिंतन से प्रभाव ग्रहण किया। साथ ही आधुनिक जीवन की जटिलताओं, विसंगतियों, समस्याओं आदि को अभिव्यक्त करने के लिए भारतीय पारम्परिक एवं लोक-नाट्य परम्परा के उपयोग से अपनी जड़ों को भी समृद्ध करने का प्रयास किया है। इस कड़ी में हबीब तनवीर का योगदान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

हबीब तनवीर पर शोध कार्य करने के मुख्य रूप से दो कारण रहे। पहला, दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा एम.ए की पढ़ाई के दौरान रंगमंच विषय पढ़ते हुए इसमें मेरी दिलचस्पी बनी। दूसरा, वर्धा विश्वविद्यालय में एम.फिल. की उपाधि के लिए अपने गुरुजनों आदि के मार्गदर्शन के उपरांत 'हबीब तनवीर के नाटकों में लोकतत्व : नए रंग मुहावरे की तलाश' ('आगरा बाज़ार' और 'चरनदास चोर' के विशेष संदर्भ में) शोध विषय पर काम करने का निर्णय लिया। इस दौरान मुझे हबीब तनवीर के रंग व्यक्तित्व को समझने का मौका मिला। मुझे समझ आ गया कि हबीब तनवीर तो स्वयं ही एक 'टोटल थियेटर' की परिभाषा हैं

और उनका थियेटर अपनी ज़मीन से जुड़ा हुआ है। चूँकि एम.फिल. में मैंने हबीब तनवीर के केवल दो ही नाटकों का चयन किया था। इसलिए पीएच.डी. में हबीब तनवीर के सम्पूर्ण रंगकर्म को शोध का आधार बनाते हुए शोध निर्देशक के परामर्श से **'समकालीन हिंदी रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर के रंग-प्रयोग'** शोध विषय को सहर्ष स्वीकार किया।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय 'हबीब तनवीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' है। इसमें हबीब तनवीर के जन्म, परिवार, परिवेश, रूचि आदि पर बात करते हुए उनके संघर्ष, विचारधारा, सम्मान आदि पर प्रकाश डाला गया है। यह एक तरह से उनके व्यक्तित्व विकास की यात्रा है। कृतित्व पक्ष में हबीब तनवीर के प्रकाशित सभी नाटकों पर संक्षेप में चर्चा है। साथ ही उनकी प्रकाशित कविताओं, नज्मों, गजलों आदि को भी यहां स्थान दिया गया है।

दूसरा अध्याय 'समकालीन हिंदी रंगमंच : परम्परा और प्रयोग' है। इसमें रंगमंच शब्द के अर्थ, उसके स्वरूप, परम्परा पर चर्चा की गई है। इसमें समकालीन हिंदी रंगमंच की पृष्ठभूमि को बताते हुए हिंदी रंगमंच के विभिन्न पक्षों, प्रयोगों पर चर्चा है। समकालीन हिंदी रंगमच के संदर्भ में हबीब तनवीर की भूमिका पर चर्चा है। वास्तव में यह अध्याय हबीब तनवीर के रंगकर्म तक आने की एक कड़ी के रूप में अपनी भूमिका निभा रहा है।

तीसरा अध्याय 'हबीब तनवीर के नाटकों की विवेचना' में हबीब तनवीर द्वारा लिखित, निर्देशित सभी नाटकों को चार उपशीर्षकों (बाल नाटक, मौलिक नाटक, लोककथाओं पर आधारित नाटक तथा अनुदित/ रूपांतरित नाटक) में रखते हुए उन पर विवेचात्मक चर्चा की गई है।

चौथा अध्याय 'हबीब तनवीर के नाटक : रंगमंचीय आयाम' में 'लोक' शब्द के अर्थ और परिभाषा को बताया गया तथा लोकतत्व की चर्चा करते हुए लोक कथा, लोक गाथा, लोक गीत, लोक भाषा आदि पर संक्षेप में बात की गई है। इसमें हबीब तनवीर द्वारा अपने नाटकों में प्रयुक्त छत्तीसगढ़ की विभिन्न लोक शैलियों (नाचा, पंथी नृत्य, पंडवानी, सुआ गीत, बांस गीत, राउत नाच आदि), रंग संगीत तथा रंगोपकरण पर चर्चा है। साथ ही हबीब तनवीर द्वारा अपने नाटकों में नाट्य रूढ़ियों के किये गए बहिष्कार के संदर्भ में भी चर्चा है।

शोध का पांचवा और अंतिम अध्याय 'हबीब तनवीर के नाटक : भाषा और शिल्प' है। इस अध्याय में हबीब तनवीर के नाटकों में भाषायी एवं शिल्पगत प्रयोग पर चर्चा है। भाषायी दृष्टि से हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी बोली को प्राथमिकता दी है। साथ ही उनके नाटकों में उर्दू, अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। शिल्पगत दृष्टि से इसमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, गीत योजना पर प्रकाश है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के संबंध में यहां कुछ स्पष्टीकरण कर देना नितांत आवश्यक है। पहली बात, शोध विषय में प्रयुक्त 'समकालीन' शब्द को हिंदी आलोचना में प्रचलित रूढ़ अर्थ से नहीं लिया गया है, बल्कि उस समय से लिया गया है जब से हबीब तनवीर अपने रंगकर्म की शुरुआत करते हैं। चूँकि 50 के दशक से हबीब तनवीर रंगमंच पर सक्रिय हो चुके थे। अतः उस समय अवधि से हिंदी रंगमंच को देखते हुए हबीब तनवीर के रंग-प्रयोगों पर बात करना शोध विषय की मांग थी। यहाँ 'समकालीन' शब्द इस बात का भी सूचक है कि हिंदी का रंगमंच अपने समसामयिक सन्दर्भों से जुड़ा हुआ है तथा युग-विशेष के सन्दर्भों के अनुसार बदलती हुई चेतना या मानसिकता का भी द्योतक है।

दूसरा यह कि शोध-प्रबंध में आधार ग्रन्थ की श्रेणी में हबीब तनवीर के सभी प्रकाशित नाटक शामिल किये गए हैं। चूंकि शोध विषय हबीब तनवीर के रंग-प्रयोगों पर आधारित है। इसलिए शोध प्रबंध में हबीब तनवीर के उन नाटकों पर भी चर्चा है जो किसी कारण प्रकाशित नहीं हो सके। इन अप्रकाशित नाटकों के संदर्भ में जानकारी हबीब तनवीर से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए व्यक्तियों से बातचीत तथा क्षेत्रीय कार्य के माध्यम से संकलित की गई है। तीसरा यह कि प्रस्तुत शोध प्रबंध में विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा क्षेत्र सर्वेक्षण प्रविधि का प्रयोग किया गया है और शोध सामग्री को प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से संकलित किया गया है।

प्रथम अध्याय

हबीब तनवीर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 व्यक्तित्व

हबीब तनवीर का जन्म 1 सितम्बर, 1923 को छत्तीसगढ़ में रायपुर जिले के बैजनाथ पारा नामक गाँव में हुआ था। उनका मूल नाम हबीब अहमद खाँ था। लेकिन परिवार में सभी लोग प्यार से उन्हें 'बाबा' कह कर बुलाते थे। बाद में उन्होंने 'तनवीर' उपनाम शायरी लिखने के लिए चुना और तभी से हबीब तनवीर के नाम से लोग जानने लगे। हबीब का परिवार मूल रूप से पेशावर का रहने वाला था जो बाद में भारत (रायपुर) आकर बस गया। हबीब तनवीर की माँ नज़ीरून्निसा बेगम रायपुर की ही रहने वाली थी। वे लिखते हैं, *"My Father was from Peshawar. When he was young, God knows how, along with his Father, my grandfather, he found his way to the Central Provinces (CP), and in CP too to Raipur where my mother's family lived, the same Raipur that used to be in CP, then in Madhya Pradesh and is currently the capital of Chhattisgarh. He settled there and never returned to his native land."*[1]

हबीब तनवीर का एक बड़ा परिवार था। उनके दादा का नाम हबीबुल्लाह खान था तथा पिता हाफिज मुहम्मद हयात खाँ धार्मिक प्रवृति के इंसान थे। जिस कारण घर में उनका अनुशासन चलता था। हबीब के अतिरिक्त परिवार में चार बहन और दो भाई थे, यानी कुल सात भाई बहन थे। हबीब लिखते हैं, *"We would have been eleven siblings but only sevenhad survived- four sister and three brother; the other four children died as infants."*[2]

---

[1] Farooqui, Mahmood (tra.); Habib Tanvir Memoirs; penguin group, new delhi; 2014; p. 3

[2] Ibid; p. 8

हबीब तनवीर का बचपन रायपुर में बीता था जिस कारण पास के ही लॉरी म्युनिसिपल हाई स्कूल (वर्तमान में इस स्कूल का नाम 'माधव राव सप्रे शासकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय' हो गया है) से उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई। बी.ए. नागपुर के मॉरिस कॉलेज (वर्तमान में इसका नाम 'वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाज विज्ञान संस्था' हो गया है) से हुए तथा एम. ए. की पढ़ाई हेतु अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय चले गए।

देखा जाए तो हबीब तनवीर की बचपन से ही अभिनय और कला में रूचि थी। लेकिन परिवार के अंदर उनको कला के सम्बन्ध में अंतरविरोध एक साथ देखने को मिला। क्योंकि उनके पिता का मिजाज कुछ अलग ही था, जिसमें कला या अभिनय के लिए कोई खास जगह नहीं थी। वह पांच वक्त के नमाज़ी थे और कुरान को ही सब कुछ मानते थे। दूसरी तरफ उनके मामा कला और संगीत से जुड़े हुए थे। यही नहीं हबीब तनवीर के बड़े भाई ज़हीर अहमद खाँ भी उन दिनों पारसी नाटकों में अभिनय करते थे और कभी-कभी उनको चुपके से इन नाटकों को देखने ले जाते। वह लिखते हैं, *"Bhaijaan used to take part in the plays put up at the Kali Bari. He took me to see a play there while I was still very young."*[3]

बड़े भाई की रंगमंचीय गतिविधियों को तो पिता ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। लेकिन बाद में जब हबीब स्वयं अपने स्कूल की गतिविधियों में भाग लेने के लिए अभिनय करने लगे तो पिता ने कोई खास आपत्ति नहीं की। बचपन में किये गए उन नाटकों की स्मृतियों का उल्लेख हबीब तनवीर इस प्रकार करते हैं-

"किसी नाट्य प्रदर्शन में भाग लेने का मेरा पहला अनुभव उस वक्त का है जब मैं ग्यारह या बारह वर्ष का था। मैंने शेक्सपियर के किंग्जान का एक अंश किया था। मैंने प्रिंस आर्थर का अभिनय किया था... फिर मैंने अपने फारसी शिक्षक मोहम्मद ईशाक, जो बाद में मेरे बहनोई हुए,

[3] Farooqui, Mahmood (tra.); Habib Tanvir Memoirs; penguin group, New Delhi; 2014; P. 27

द्वारा लिखे हुए एक बड़े नाटक में भी अभिनय किया।''[4] इन दोनों नाटकों में अभिनय के लिए उन्हें पुरस्कार भी मिला। उसके बाद तो कॉलेज के समय जब कभी उनको मौका मिलता अभिनय करते और कभी-कभी मुशायरों में भी जाते।

बालक हबीब तनवीर की दूसरी बड़ी दिलचस्पी फिल्मों में थी। क्योंकि उस समय नाटक तो साल में एक दो बार किसी खास मौक़े पर ही होते थे। मूक फिल्मों के दौर से ही वह फिल्में देखने जाते थे। हबीब लिखते हैं *''मैं अपने बचपन से ही जबर्दस्त फिल्म देखने वाला रहा हूँ। रायपुर में मैंने मूक फ़िल्में देखीं। टिनटिन और उस समय की सीरिज की तमाम फ़िल्में। दीगर मूक फ़िल्में। तम्बू में भी, चलते–फिरते सिनेमा के जरिए भी और बाबूलाल टॉकीज में भी, जो उस वक्त रायपुर में एकमात्र सिनेमाघर था....हम लोग उसमें बिना टिकिट जाया करते थे। कोई शरारती लड़का टेंट (तम्बू) को एक तरफ कहीं से काट देता और उस दरार से हम लोग भीतर चले जाते थे। कभी–कभी हम लोग रस्सों के नीचे से झुक कर भीतर सरक जाते। ठीक उसी तरह जैसे हम लोग सर्कस में घुसा करते थे।''*[5]

अपने नागपुर प्रवास के दौरान भी हबीब तनवीर अक्सर फिल्में देखते। इन फिल्मों के कथानकों, अभिनय और तकनीक पक्ष ने उनके मन को इतना प्रभावित कर दिया कि वे एम. ए. के दौरान ही बम्बई चले आये। देखा जाए तो बम्बई की यह जिन्दगी उनके संघर्ष की शुरुआत थी। यहां वे किसी को नहीं जानते थे और शुरुआत के दो चार रोज फुटपाथ पर सोकर गुजारे। फिर एक दिन अचानक उनको जुल्फिकार अली बुखारी (वह उन दिनों रेडियो में प्रोड्यूसर थे) मिले और उनकी मदद से हबीब तनवीर को हथियारों के एक कारखाने में सुपरवाइज़र की नौकरी मिल गई। इस तरह बम्बई में पैर जमाने के लिए यह उनकी पहली मंजिल थी। उसके बाद तो हबीब तनवीर

---

[4] तनवीर, हबीब; 'ए लाइफ इन थियेटर'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 7-8

[5] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 24

1944-1945 में आकाशवाणी, बम्बई के तत्कालीन निदेशक रहे और उन्होंने फिल्मों का रिव्यू करना भी शुरू कर दिया। बम्बई रेडियो स्टेशन से हबीब तनवीर की जो फिल्म समीक्षाएं प्रसारित होती थी, वो इतनी सटीक, तीखी और बेबाक होती थीं कि वे मशहूर और विवादास्पद, दोनों बन गए। उनके साहस और प्रतिभा को देखते हुए 'फिल्म इंडिया' पत्रिका के संपादक बाबू राव पटेल ने इन्हें अपने सीनियर एसिस्टेंट के एडिटर के रूप में बुला लिया।

'फिल्म इंडिया' छोड़ने के बाद हबीब तनवीर फ़िल्मी पत्रकारिता से एक लम्बे अरसे तक जुड़े रहे तथा अनेक पत्र, पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते रहे। अपने इस प्रवास के दौरान (1946-53 तक) उन्होंने कई फिल्मों ('राही', 'दिया जले सारी रात', 'आकाश', 'लोकमान्य तिलक', 'फुटपाथ', 'नाज', 'बीते दिन') में अभिनय किया, गीत, संवाद लिखें। लेकिन फ़िल्मी दुनिया की यह माया नगरी हबीब तनवीर को ज्यादा समय तक बांध नहीं सकी और वह 1954 में दिल्ली आ गये। बाद के दिनों में 'गांधी', 'प्रहार', मंगल पाण्डेय (बहादुरशाह जफ़र की भूमिका) जैसी फिल्मों में भी बेहतर अभिनय किया।

हबीब तनवीर को अभिनय से जितना प्रेम था उतना ही शायरी से भी था। अपने कॉलेज के दिनों से ही वह मुशायरों में जाने लगे थे। बाद में तो एक शायर की हैसियत से 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़े। *''सज्जाद जहीर के घर हर रविवार को प्रगतिशील लेखकों की बैठकें होती थीं, जहाँ ये लेखक अपनी नई कहानियां, नज्में, गजलें आदि पढ़ते और उन पर चर्चा करते...उन दिनों अली सरदार जाफरी 'नया अदब' नाम की एक साहित्यिक पत्रिका का संपादन करते थे और उस पत्रिका में उनकी छह गजलों का पहला सैट प्रकाशित हुआ था, जिसकी अच्छी–खासी चर्चा भी हुई।''*[6] बम्बई के अलावा गुजरात, उतर-प्रदेश और मध्य–प्रदेश के अखिल भारतीय मुशायरों में शिरकत करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया जाने लगा था। कहने का तात्पर्य यह कि अदब की

[6] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 32

दुनिया में उन्होंने अपनी एक जगह बना ली थी और यही वह परिवेश था जब हबीब तनवीर 'इप्टा' (भारतीय-जन-नाट्य-संघ) की बम्बई शाखा के सम्पर्क में आये।

उस समय नाटक के क्षेत्र में इप्टा की स्वतंत्र पहचान थी और ख्वाजा अहमद अब्बास, पं. रविशंकर, विमल राय, बलराज साहनी, भीष्म साहनी, बलवंत गार्गी, दीना पाठक, मोहन सहगल, उत्पल दत्त, नेमिचंद्र जैन, शान्ता गाँधी, शबाना आजमी आदि चर्चित लोग इससे जुड़े हुए थे। हबीब तनवीर भी जब इससे जुड़े तो तहेदिल से उसके होकर रह गए। इप्टा से जुड़ने के संबंध में हबीब कहते हैं कि *''हम लोग तमाशा, लावणी, भवाई जैसी लोकविधाओं और गुजरात के लोकगीतों से परिचित हुए। इप्टा के कोंकणी दल में एक बड़ा मोहक संगीत दल था। मुझे संगीत से गहरा प्रेम है और इसीलिए यह सब वास्तव में देखने लायक था। मेरी साहित्यिक रूचि ही मुझको इस तरफ ले आई और फिर आख़िरकार बोलियों की तरफ। क्योंकि मैं उनको सभी महान साहित्यों का मूल मानता था।''*[7]

इस तरह देश के विभिन्न अंचलों के गीत, संगीत और नृत्य ने उन्हें काफी प्रभावित किया। साथ ही बलराज साहनी और दीना पाठक जैसे लोगों ने उनके रंगमंचीय अनुभवों को समृद्ध किया।

इप्टा के समय के अपने कई अनुभवों को हबीब तनवीर ने साझा किया है। उन्होंने 'इप्टा' में अपना पहला नाटक बलराज साहनी के निर्देशन में किया था। इस नाटक का कथानक कश्मीर की आजादी से जुड़ा हुआ था- डोगरा आन्दोलन से सम्बंधित। उसमें हीरो था एक आजादी-पसंद शायर, हबीब ने वह रोल किया। उसके बाद साहनी के ही निर्देशन में 'दकन की एक रात' में अभिनय किया, जिसका सम्बन्ध तेलंगाना के आन्दोलन से था। हबीब तनवीर इसमें एक अस्सी–

---

[7] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 32

नब्बे वर्ष के बूढ़े की भूमिका में थे।[8] बाद में इलाहाबाद में वे 'दकन की एक रात' के साथ ही 'जादू की कुर्सी' नामक नाटक भी ले कर गए थे। मोहन सहगल ने इसका निर्देशन किया था। यह नाटक बाम्बे के उन मध्यवर्गीय लोगों पर केन्द्रित था जिन्हें अपने घर से रोज काफी दूर ऑफिस जाना पड़ता है। इस नाटक के सम्बन्ध में वे लिखते हैं-

"वह बेहद हंसाने वाली कामेडी थी सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर एक चुभता, मारक व्यंग्य। बलराज ने नायक का रोल किया था और उसके बाद फिर कभी मैंने बलराज को हास्य की भूमिका में नहीं देखा। कम से कम किसी फिल्म में तो नहीं... हम सबको अपनी अपनी भूमिका को इम्प्रोवाइज करने की स्वतंत्रता दी गई थी। मैं न्यायाधीश बना था और मैंने भूमिका में हकलाकर बोलना तय किया। वह एक सम्पूर्ण नाटक था।... दुर्भाग्य से उस कमाल के नाटक का आज भी कोई लिखित पाठ नहीं है।"[9]

उन दिनों हबीब तनवीर इप्टा में रह कर बहुत कुछ सीख रहे थे। अपनी रंगमंचीय गतिविधियों के कारण जब इप्टा के सभी प्रमुख नेताओं, जैसे दीना पाठक, सरदार जाफरी, बलराज आदि को पकड़ कर दो साल के लिए जेल में डाल दिया था, तब संस्था के कार्यभार के लिए जेल के भीतर से ही पार्टी ने हबीब तनवीर को चुना। इस तरह वे इप्टा के सचिव, नाटककार बन गए। इप्टा के लिए उन्होंने 'शांतिदूत कामगार' (1948) नामक नाटक तैयार किया और गली चौराहों पर जा कर इसे खेला। इसमें जोहरा सहगल ने भी काम किया। इसी वर्ष प्रेमचंद की कहानी पर आधारित 'शतरंज के मोहरे' भी उनके द्वारा लिखा गया, जिसे सबसे पहले दीना पाठक ने और बाद में खुद हबीब तनवीर ने सफलतापूर्वक निर्देशित किया था। हबीब तनवीर पूरी निष्ठा के साथ 'इप्टा' के लिए काम करते रहे।

---

[8] अग्रवाल, प्रतिभा (सं); हबीब तनवीर एक रंग-व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कलकत्ता; संस्करण 1993; पृ. 11

[9] तनवीर, हबीब; 'ए लाइफ इन थियेटर'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक-103, 2003; पृ. 15-16

लेकिन इतनी जबर्दस्त कामयाबी मिलने के बावजूद भी देश का इतना बड़ा यह रंग-आन्दोलन धीरे-धीरे बिखर गया। इप्टा के बिखराव के बाद भी हबीब तनवीर ने अपना कार्य क्षेत्र नहीं बदला। वे निरंतर रंगकर्म से जुड़े रहे। जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स जैसी अनेक संस्थाओं और दूसरे समूहों के लिए नाटकों का निर्देशन करते रहे। फिर बाद में बम्बई की इस चकाचौंध, माया, आकर्षण और सुविधाओं की दुनिया को एक झटके में तोड़कर वे 1954 में दिल्ली आ गए। इस संदर्भ में वे लिखते हैं *"जो भी हो, सही या गलत, मैं इस बात पर मुतमईन था कि मेरे पास कहने के लिए कुछ था। जैसा भी हो और मुझे जो कुछ कहना था, सौन्दर्यशास्त्र में, प्रदर्शनकारी कलाओं में और साथ ही सामाजिक रूप से, राजनैतिक नजरिये से उसका माध्यम सिनेमा नहीं था, वह थियेटर था। यह एक बहुत साफ बोध था मन में, पांचवें दशक के प्रारम्भिक दिनों में, जो मुझे दिल्ली ले आया।"*[10]

दिल्ली का यह नया परिवेश भी उनके लिए संघर्षो का रहा, क्योंकि जिस भाव बोध, विचार को लेकर वे यहां आए थे उसमें अन्तर्निहित विरोध और प्रतिरोध के तत्व भी बहुत साफ थे। यहां आने के बाद हबीब ने सबसे पहले एलिजाबेथ गाबा के स्कूल में काम किया। यहाँ बच्चों के साथ रहते-रहते वे उनके मनोविज्ञान को समझने लगे थे और इसी मनोविज्ञान के आधार पर उन्होंने बच्चों के लिए नाटक लिखें। वर्ष 1954 मेंउन्होंने 'गधे', 'परम्परा', 'हर मौसम का खेल', 'चांदी का चमचा', 'दूध का गिलास', 'कारतूस', और 'बच्चों की दुनिया' जैसे बाल नाटकों का लेखन और निर्देशन किया। फिर काफी समय बाद उन्होंने 'किस्सा ठेलाराम' (1998) नाम से आखिरी नाटक बच्चों के लिए लिखा।

देखा जाए तो इप्टा से हबीब तनवीर को भारतीय लोकनाट्य रूपों की शक्ति और ऊर्जा से

[10] कुशवाहा, डॉ. रामाशंकर; 'हबीब तनवीर का रंग लोक'; डॉ. शिवेन्द्र कुमार मौर्य (सं.); उन्मेष; अंक 6, मई-अक्तूबर, 2020, पृ. 214

परिचित होने का एक अच्छा अवसर मिला था। लेकिन तत्कालीन पाश्चात्य रंगमंच के प्रचलित और स्वीकृत मुहावरे के स्थान पर वे जिस नये मुहावरे को स्थापित करना चाहते थे, उसका कोई निश्चित स्वरूप तब उनके सामने नहीं था। समकालीन नाटक और रंगमंच के लिए उसके कलात्मक प्रयोग की राह तलाश की जानी अभी बाकी थी और यह राह उन्हें 'आगरा बाज़ार' की प्रस्तुति से मिली। इसकी प्रस्तुति के द्वारा वे समझ पाते हैं कि 'स्थापित रंगमंचीय रूढ़ियों को तोड़ कर यदि जनता तक अपनी बात पहुंचानी है तो मंच पर एक ऐसा उन्मुक्त और सहज वातावरण तैयार किया जाना चाहिए जो संगीत और कविता के श्रेष्ठ गुणों को आत्मसात करके नाटक की सम्प्रेषण क्षमता में वृद्धि करने वाला हो।' नाटक के बाद उनकी मुलाकात बेगम कुदसिया जैदी से हुई जिसने हबीब तनवीर के साथ मिलकर 'हिन्दुस्तानी थियेटर' की स्थापना की और देश के अनेक नगरों में 'आगरा बाज़ार' के अत्यंत सफल प्रदर्शन करवाये।

इस नाटक के तुरंत बाद लंदन जाकर नाट्य प्रशिक्षण प्राप्त करने का हबीब को एक और सुनहरा अवसर मिला। वे 1955 में 'राडा' (रॉयल एकेडेमी ऑफ ड्रेमेटिक आर्ट्स) लंदन, में सीखने के उद्देश्य से अपने देश की मिट्टी से दूर चले गए। फिर वहीं के ब्रिस्टिल ओल्ड विक तथा ब्रिटिश ड्रामा लीग में भी प्रशिक्षण प्राप्त किया। फिर कुछ दिनों तक वे यूरोपीय देशों की यात्रा करते रहे, जिसमें विशेष रूप से बर्लिन एन्साम्बिल (पश्चिम जर्मनी) की प्रस्तुतियों का अवलोकन और अध्ययन शामिल हैं। अपने यूरोप प्रवास के दौरान हबीब तनवीर ने यह महसूस किया कि अपनी भाषा तथा संस्कृत नाटकों का आकर्षण अलग ही है।

उन्होंने पश्चिमी दृष्टि और तौर-तरीकों को बहुत अच्छी तरह देखा, समझा। जो उपयोगी लगा उसे ग्रहण किया। लेकिन वे अब इस बात में स्पष्ट थे कि उन्हें अपने देश लौटना है, अपने लोगों के सहयोग से अपनी भाषा में ही थियेटर करना है। इसीलिए स्वदेश लौटने के बाद इन्होंने संस्कृत नाटकों का गहन अध्ययन किया और अपने रंग-मंचीय मुहावरे की खोज में लगे रहे।

उन्होंने 'हिन्दुस्तानी थियेटर' के लिए सबसे पहले शूद्रक के संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम' का रूपान्तर 'मिट्टी की गाड़ी' नाम से किया,जिसमें उन्होंने कई मौलिक प्रयोग किये। इसकी पहली प्रस्तुति पर रंगकर्मियों, आलोचकों द्वारा कई कटाक्ष किये गए। लेकिन बाद के प्रदर्शनों को आलोचकों ने सराहा भी।

हबीब तनवीर के स्वदेश लौटने से पहले मोनिका मिश्रा ने 'हिन्दुस्तनी थियेटर' के लिए 'शकुन्तला' और 'खालिद की खाला' नाटकों का मंचन किया था। लेकिन उनके 'हिन्दुस्तानी थियेटर' में वापस आने के कारण मोनिका की नौकरी चली गई और इस बात के लिए मोनिका ने हबीब से मुलाकात की थी। इस बारे में हबीब बताते हैं कि "*After completing my two-year stint in Britain, at RADA and then Bristol Old Vic Theatre school, and a year roaming around Europe when I returned to India I made her lose her job. This was her grudge against me and she had first come to meetme to complain about this.*"[11] फिर 1959 में दोनों ने मिलकर कुछ लोक कलाकारों की मदद से दिल्ली के एक मोटर गैराज में 'नया थियेटर' की बुनियाद डाली और बाद में दोनों ने शादी कर ली।

देखा जाए तो 'नया थियेटर' की पहली प्रस्तुति 'सात पैसे' थी जिसके लेखक हबीब तनवीर और निर्देशिक मोनिका जी थी। फिर 1960 में नया थियेटर ने दो बड़े नाटक पेश किये। पहला आगा हश्र का 'रुस्तम शोहराब' और दूसरा 'लाला शोहरत राय' जो मौलियर के 'बुर्जुआ जेंटिलमैन' का अनुवाद था। 1961 में 'सूत्रधार 1961' का लेखन और निर्देशन किया। बाद में इसे 'सूत्रधार 77' के नाम से खेला गया। दोनों ने मिलकर नया थियेटर के संगठन का काम आगे बढ़ाया। हर कठिन परिस्थितियों में मोनिका ने हबीब को संघर्ष के लिए निरंतर प्रेरित किया।

---

[11] Farooqui, Mahmood (tra.); Habib Tanvir Memoirs; penguin group, new delhi; 2014; P. 301-302

जिसके परिणामस्वरूप सन् 1964 में 'नया थियेटर एक रजिस्टर्ड सोसाइटी' और 1972 में एक पेशेवर 'थियेटर कम्पनी' बना। इस बीच रंग मुहावरे की तलाश में कई अंग्रेजी नाटकों का निर्देशन नया थियेटर द्वारा किया जाता रहा।

1970 के दशक में आखिरकर हबीब तनवीर ने अपने रंग मुहावरे को खोज निकाला। 'कला और संस्कृति के क्षेत्र में तब देश के गिने-चुने लोग ही उनके विचारों से सहमत थे। उस समय वे अपने तीखे और विरोधी तेवरों के कारण अभिजात्य-वर्ग की आंख की किरकिरी बने हुए थे। लेकिन भारतीय रंगमंच के भविष्य के सम्बन्ध में उनके विचारों को अनदेखा किया जाना भी लगभग असम्भव सा हो गया था। अत्याचार, उत्पीड़न और शोषण की मारक स्थितियों के बावजूद भी जो लोग अपनी कला और संस्कृति को बचाए रख सकने में समर्थ थे, वही उनकी आंतरिक शक्ति बने।' अपने सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश की व्याख्या करते हुए वे जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, वह भी ध्यातव्य है-

"यह बात भी हमें शुरुआती तौर पर ही अब अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि शहरी रंगमंच ने जो स्वरूप हमारे सामने स्थापित किया है, वह पश्चिमी थियेटर से माँगा हुआ है और हमारे देश की सामयिक बुनियादी समस्याओं, सांस्कृतिक बुनावट, जीवन पद्धतियों और सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने में एकदम असमर्थ है। भारतीय संस्कृति के स्वरूप की सही पहचान हमें भारत के देहातों, गाँवों और कस्बों में मिलती है। यहाँ के गाँवों में ही हमें अपनी प्राचीन गौरवशाली नाट्य परम्पराओं के संदर्भ-संकेत मिलते हैं जो आज भी बरकरार हैं। यहां के नाट्य दलों को ही समुचित प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है। दूसरी ओर, जब तक शहरी युवा वर्ग के लोग पारम्परिक नाट्य रूपों से आत्मगत तादात्म्य स्थापित नहीं करेंगे तब तक सही मायनों में भारतीय रंगमंच, जो कि अपनी जड़ों से गहरा जुड़ा हो और साथ ही आधुनिक तथा

विश्वजनीन हो, स्थापित नहीं हो सकता।"[12] उनका यह कथन लोक और भारत के आधुनिक रंगमंच के प्रति उनकी दृष्टि को रेखांकित करता है।

हबीब तनवीर ने भारतीय रंग परम्परा में उपलब्ध संस्कृत नाटकों, लोक नाटकों तथा पश्चिम के नाटकों को व्यक्तिगत प्रयोगों द्वारा अपनी प्रस्तुति के लिए चुना। फिर भी वे अपनी धरती में रची-बसी पारम्परिक नाट्य-शैलियों के प्रति ही अधिक उत्साहित थे। उनका विचार था कि सत्ता के समर्थन में नहीं, बल्कि सत्ता के विरोध में ही सच्ची कला पनपती है, जिसका सीधा संबंध आम आदमी की तकलीफों, दुखों और उनकी विवशताओं से होता है। उनकी यह सामाजिक प्रतिबद्धता ही लोक शैलियों का सहारा लेकर अभिव्यक्त होती है।

सन् 1970 से तीन बरस तक हबीब तनवीर लगातार छत्तीसगढ़ी लोक तत्त्वों के आधार पर प्रयोग करते रहे। 1972 में पंडवानी गायक पूनाराम निषाद के माध्यम से पंडवानी शैली में 'अर्जुन का सारथी' का मंचन किया। फिर शिव-पार्वती प्रसंग पर आधारित कर्म-कांडी लोक-नाट्य गौरा-गौरी का मंचन किया। 1973 में हबीब तनवीर द्वारा रायपुर में एक महीने का छत्तीसगढ़ी नाचा शिविर चलाया गया जिसका नतीजा 'गाँव का नाम ससुराल, मोर नाव दामाद' नाटक था। इसमें तीन लोकनाट्यों 'छेरा-छेरी', 'बुढ़वा विवाह' और 'देवार-देवारिन' के चुनिंदा प्रसंगों को एक नाटक की शक्ल दी गई थी। इस नाटक ने उनके मुहावरे को गढ़ने में 'मील के पत्थर' का काम किया। वास्तव में 'चरनदास चोर' नाटक की सफलता का बीज ही इस नाटक में अन्तर्निहित है। 'चरनदास चोर' (1974) सबसे पहले एक एकांकी नाटक के रूप में छत्तीसगढ़ी में छत्तीसगढ़ी कलाकारों के माध्यम से अट्ठारह हजार दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया गया। दिल्ली में इस पर फिर काम किया गया और नाटक की अवधि दो घंटे की हो गई। इसी रूप में यह नाटक कमानी अडीटोरियम में मई 1975 में किया गया। बाद में तो यह सारे हिंदुस्तान में दिखया गया।

---

[12] सुलभ, हृषीकेश; रंग अरंग; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 58

1982 में 'एडिनबरा अंतर्राष्ट्रीय नाट्य उत्सव' में इसे 52 नाटकों में प्रथम फ्रिन्ज अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

1974 में ही हबीब तनवीर ने 'राजा चंबा और चार भाई' में लोक कलाकारों और शहरी प्रशिक्षित अभिनेताओं का समन्वय किया। 1976 में भारतीय लोकनाट्य-रूपों के गहन अध्ययन के लिए उन्होंने देश के अनेक भागों की यात्राएँ की और अनेक प्रयोगात्मक प्रदर्शन किये। 1978-79 में छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले में प्रचलित एक मिथक पर आधारित 'बहादुर कलारिन' तथा ब्रेख्त के नाटक 'ए गुड वूमन ऑफ सेंतज़ुआन' का छत्तीसगढ़ी रूपांतर 'शाजापुर की शांति बाई' का निर्देशन किया। भास के तीन नाटकों- 'उरुभंगम, कर्णभार और दूतवाक्यम' को एक कथा में पिरोकर 'दुर्योधन' नाम से प्रस्तुत किया। इसमें कोरस के रूप में पूनाराम निषाद की भूमिका बहुत सरहनीय रही। 1980-81 में 'देवी का वरदान' और 'सोन सागर' तथा 'मंगलू दीदी' की प्रस्तुति की गई। वर्ष 1985 में हबीब तनवीर 'हिरमा की अमर कहानी' का लेखन और निर्देशन करते हैं। इस नाटक की प्रस्तुति में बस्तर के आदिवासियों को गौर माडिया नृत्य के लिए सम्मिलित किया गया।

बीच-बीच में हबीब तनवीर द्वारा कुछ संस्थाओं के लिए भी नाट्य प्रस्तुतियां की गई हैं। जैसे1988 में भिलाई की इप्टा शाखा के लिए शंकर शेष के नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' का निर्देशन किया तथा जन नाट्य मंच के लिए प्रेमचंद की कहानी 'मोटेराम का सत्याग्रह' का निर्देशन किया। फिर 1989 में एनएसडी के लिए गोर्की के नाटक 'एनिमिज़' का सफ़दर हाशमी द्वारा किए गए रूपान्तर 'दुश्मन' का निर्देशन तथा 1990 में श्री राम सेंटर रिपर्टरी के लिए असगर वजाहत के 'जिन लाहौर नई देख्या वो जन्म्याई नई' का मंचन किया, जो काफी सफल रहा। फिर 1990 में हबीब तनवीर 'देख रहे हैं नैन' का लेखन-निर्देशन करते हैं। 1993 में शेक्सपीयर के नाटक 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' को छत्तीसगढ़ी में रूपान्तर कर 'कामदेव का अपना बसंत ऋतु

का सपना' नाम से प्रस्तुत किया। इस नाटक में भी उन्होंने लोक और शहरी कलाकारों का सफलतापूर्वक समन्वय किया।

सन 1998 में हबीब तनवीर फिर से 'जन नाट्य मंच' के तत्वावधान में 'एक औरत हिपेशिया भी थी' का लेखन और निर्देशन करते हैं। 2001 में संस्कृत नाटककार भट्ट नारायण के नाटक 'वेणी संहार' को हिंदी/ छत्तीसगढ़ी में रूपान्तरित एवं निर्देशित करते हैं। 2002 में भोपाल गैस त्रासदी पर आधारित नाटक 'ज़हरीली हवा' का मंचन किया। मई, 2005 में मोनिका मिश्रा की मृत्यु के बाद हबीब तनवीर अकेले हो गए। इस वियोग ने उन्हें अंदर तक तोड़ दिया था और वे कोई नई प्रस्तुति नहीं कर पाये। जीवन के अंतिम दिनों में उनका आखिर प्रयोग 2006 में टेगौर के नाटक 'विसर्जन' का निर्देशन था, जिसे बाद में उन्होंने 'राजरक्त' के रूप में प्रस्तुत किया। अपने जीवन में संघर्षों का सामना करने वाले हबीब तनवीर जीवन के आखिरी दिनों में लम्बी बीमारी के चलते 8 जून, 2009 को इस दुनिया में अपना अभिनय पूरा कर हमेशा के लिए नेपथ्य में चले गए।

सम्मान

आधुनिक भारतीय रंग-शैली की खोज-भरी इस लंबी, सार्थक और समर्पित रंग-यात्रा के महत्त्वपूर्ण योगदान की व्यापक प्रतिष्ठा के लिए उन्हें समय-समय पर विविध राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं-

1. निर्देशन के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (1969)
2. राज्यसभा की सदस्यता (1972-78)
3. मध्यप्रदेश का राजकीय सम्मान (1973)
4. जवाहर लाल नेहरू फेलोशिप (1979)
5. चरनदास चोर के लिए फ्रिंज का प्रथम पुरस्कार(1982)

6. साहित्य कला परिषद, दिल्ली से पुरस्कृत, भारत सरकार द्वारा पद्मश्री। इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की मानद उपाधि (1983)
7. शिखर सम्मान, रविशंकर विश्वविद्यालय में पंडित सुन्दरलाल शर्मा चेयर पर प्रतिष्ठित (1984)
8. मध्यप्रदेश के संस्कृति विभाग के सर्वोच्च राष्ट्रीय अलंकरण कालिदास सम्मान (1990)
9. भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से अलंकृत (1992)
10. संगीत नाटक अकादमी की रत्न सदस्यता (फेलोशिप) से अलंकृत (1994)
11. भारत सरकार द्वारा 'नेशनल प्रोफ़ेसर' के पद से सम्मानित (2006)

1.2 कृतित्व

हिंदी रंगमंच पर हबीब तनवीर मुख्य रूप से एक नाटककार, निर्देशक के रूप में हमारे सामने आते हैं। कृतित्व पक्ष में उनके अब तक प्रकाशित सभी नाटकों को शामिल किया गया है, जिसका संक्षेप में विवरण निम्न है-

कारतूस

1954 में हबीब तनवीर द्वारा रचित 'कारतूस' वजीर अली की हिम्मत, वीरता और बुद्धिमत्ता को रेखांकित करने वाला बाल नाटक है। अपने आकार में यह नाटक काफी छोटा है, जिसमें केवल चार ही पात्र हैं। नाटक का समय 1799 की एक रात है और यह रात गोरखपुर के जंगल में अंग्रेज कर्नल कॉलिंस के खेमे के अंदरूनी हिस्से पर घटित है।

चांदी का चम्मच

इस बाल नाटक में साफ-सफाई, स्वच्छता, और रहन-सहन के तौर-तरीकों की तरफ ध्यान दिया गया है। नाटक में तीन मंजील की एक इमारत है। इस इमारत के नीचे एक दुकान है।

दुकानदार इस बात के लिए बहुत दुखी और गुस्से में रहता है कि ऊपर रहने वाली एक औरत नीचे कूड़ा फेक देती है जो उसकी दुकान में आकर गिरता है। इस औरत की यह आदत कैसे रोकी जाए, बस इसी में नाटक की कहानी बढ़ती है।

आग की गेंद

यह नाटक खेल और व्यवहारिक प्रयोग के ढंग से सूरज के बारे में बच्चों को जानकारी देने वाला एक छोटा-सा नाटक है। इसमें नाटककार ने 'अलिफ, बे और जीम' को चरित्र बनाकर पेश किया है। नाटक में जीम दादी, सूत्रधार या अध्यापक जैसा वरिष्ठ चरित्र है, जो 'अलिफ़ और बे' जैसे जिज्ञासु बच्चों को सितारे और उपग्रह का फर्क बताते हुए एक गेंद के जरिए आग के गोले यानी सूरज की कहानी सुनाता है।

परम्परा

यह नाटक भारतीय इतिहास पर आधारित अन्य बाल नाटकों की अपेक्षा में थोड़ा बड़ा नाटक है। इसमें सूत्रधार, नटी और प्राम्टर आदि को मिलकर कुल 20 पात्र हैं। इसमें रंग-संकेतों का काफी प्रयोग किया है। इसमें नाटककार ने आर्यों के आगमन अर्थात वैदिक काल से लेकर महात्मा गाँधी और देश के विभाजन तक का सम्पूर्ण भारतीय इतिहास बहुत संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

दूध का गिलास

यह नाटक बच्चों को दूध पीने के लिए प्रेरित करता है। इस नाटक में मुख्य रूप से पांच चरित्र (दूध के विभिन्न संघटक) हैं। जैसे शीरीं (शक्कर), बी. प्रोटीन (प्रोटीन), मिक्खू बेगम (चर्बी) और जल्लो आपा (पानी) के रूप में। यह एक स्वप्न नाटक है। इसमें एक बच्चा (बिट्टू), जिसे दूध पीना पसंद नहीं है, सपने में इन चरित्रों से बात करती है और अंत में स्वप्न के चरित्र को याद करके दूध का गिलास उठा कर पी जाती है।

आगरा बाज़ार

'आगरा बाज़ार' नाटक सबसे पहले 1954 में खेला गया था और तब से लेकर अब तक इस नाटक के कई सौ प्रदर्शन हो चुके हैं। इस नाटक को हबीब तनवीर ने नज़ीर अकबराबादी के समय की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों के साथ बुना। देखा जाए तो नाटक की कथा एक ककड़ी वाला के इर्द-गिर्द घूमते हुए अपने लक्ष्य तक पहुंचती है। शुरुआत में यह केवल एक घंटे का नाटक था। बाद की प्रस्तुतियों में इसके कथानक में विस्तार किया गया।

गाँव का नाम ससुराल, मोर नाम दामाद

इस नाटक का निर्माण रायपुर में आयोजित 'नाचा' की एक कार्यशाला के दौरान किया गया था। इसमें छत्तीसगढ़ के तीन गम्मत 'छेर-छेरा', 'बुढ़वा विवाह' और 'देवार-देवारिन' के चुनिंदा प्रसंगों को एक नाटक में पिरोया गया है। इसमें मुख्य पात्र झंगलू, मंगलू, शांति, मानती हैं। नाटक में झंगलू और मानती की प्रेम कथा के माध्यम से कई सामाजिक कुरीतियों को उठाया गया है। नाटक में बीच-बीच छत्तीसगढ़ी लोक गीतों का भी प्रयोग किया गया है। अंत में यह नाटक प्रेम की जीत के गीतों पर समाप्त होता है।

चरनदास चोर

इस नाटक को हबीब तनवीर ने सबसे पहले 1974 में खेला था। यह उनकी विश्व ख्याति का आधार है, जिसकी अब तक कई हजार प्रस्तुतियां हो चुकी हैं। इस नाटक की कहानी एक चोर के आस-पास घूमती है जिसमें एक दिन पुलिस से बचते हुए चरनदास चोर एक गुरु के पास पहुँच जाता है। गुरु उसे चोरी छोड़ देने का प्रण करने को कहता है। तब चरनदास उससे चार चीज (सोने की थाली में खाना नहीं खाएगा, हाथी पर बैठकर किसी जुलुस में नहीं जाएगा, किसी रानी से शादी नहीं करेगा और किसी देश का राजा नहीं बनेगा) छोड़ने का प्रण करता है। गुरु कहता है कि

अगर तुम चोरी करना नहीं छोड़ता तो झूठ बोलना छोड़ दे। आखिर चरनदास उसकी यह बात मान लेता है। इस नाटक में एक-एक कर चारों प्रण उसके सामने आते जाते हैं। वह किस तरह इन समस्याओं का सामना करता है, यही इस नाटक में दिखाया गया है।

पोंगा पंडित

छत्तीसगढ़ में 'नाचा' के एक लोकप्रिय प्रहसन पर आधारित 'पोंगा पंडित' ('जमादारिन' नाम से भी खेला) को हबीब साहब ने कई बार खेला है। यह नाटक मुख्य रूप से हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों और पोंगा पंथी पर प्रहार करते हुए पुरोहितवाद की खुली आलोचना करता है। इसमें जमादारिन को मुख्य रूप से केन्द्रित करते हुए पंडित के लालची चरित्र को भी दिखाया गया।

बहादुर कलारिन

बहादुर कलारिन का मिथक छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के तहसील बालोद के सोरर और चिरचारी गाँव से सम्बद्ध है। इस मिथक के अनुसार बहादुर एक खूबसूरत महिला थी, जो शराब बेचने का काम करती थी। उसका बेटा छछन छाड़ू ने एक सौ छब्बीस शादियाँ की। लेकिन अंततः उसने अपनी माँ को ही वासना की नजर से देखा। माँ यह जानकर हैरान थी और उसे मारने का फैसला लेती है। वह उसे तेज मिर्च वाला खाना खिलाती है और कुएं से पानी लाने को कहती है। तब मौका पाते ही उसे कुएं में धकेल देती है और आप भी आत्महत्या कर लेती है।

हिरमा की अमर कहानी

आदिवासी परम्परा और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता यह नाटक तितुर बसना के आदिवासी राजा के माध्यम से आजादी के बाद राजघरानों को मिलाने और इससे जुड़ी समस्याओं को केन्द्रित करता है। नाटक की शुरुआत में (सूत्रधार) कहता हैं, *"ये कहानी आदिवासी रियासत तितुरबसना की है। वहां के महाराज हिरमादेव सिंह गंगबंसी हैं।... मैंने*

आदिवासी राज में सामंतवाद देखा है। सामंतवाद को ख़त्म करके लोकतंत्र को कैसे स्थापित किया जाये। मैं इस संघर्ष में लग गया। संघर्ष के रास्ते में बहुत ऊँच-नीच देखी और यही हमारे नाटक का विषय है।''[13] नाटक में राजनीति के दांवपेंच पर भी जमकर प्रहार है तथा नाटककार आदिवासी क्षेत्रों में विकास की नीतियों में परिवर्तन का भी पक्षधर है।

कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना

शेक्सपीयर के अंग्रेजी नाटक 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' का हबीब तनवीर द्वारा भारतीय शैली में किया गया यह नाट्य रूपांतरण है। इसमें ड्यूक थिसियस की हिपोलाइटा से होने वाली शादी के अवसर पर कुछ मजदूर और कारीगर एक नाटक करने की ठान लेते हैं। नाटक की रिहर्सल करने के लिए जब वे सब एक जंगल में पहुँचते हैं तब यहां से नाटक में दूसरी कहानी शुरू होती है। यह कहानी बड़ी रोचक तरीके से प्रस्तुत की गई है। हबीब तनवीर की यही खासियत थी कि वह नाटक को इतना प्रायोगिक बना देते थे कि दर्शक उसे देखने की जगह जीने लगता था।

सड़क

यह लघु नाटक आदिवासी क्षेत्रों में विकास-समस्या पर केन्द्रित था। इस नाटक की शुरुआत में एक जज के यहां एक मुकदमा आता है जिसमें उद्योगपतियों, व्यापारियों और नेताओं ने ग्रामीणों पर मुकदमा किया है कि उन्होंने वह सड़क तोड़ दी जो उनके विकास के लिए बनाई गई थी। सड़क खोदने के मुक़दमे के चलने के दौरान ही दोनों पक्षों के तर्कों से उस क्षेत्र के विकास से जुड़े पहलू सामने आते-जाते हैं। इनके इन्हीं सब तर्कों के जाल में आगे बढ़ता यह नाटक अपनी बात कहने में सफल रहा है।

---

[13] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्रीप्रकाशन, ए 14 आदर्श नगर, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृष्ट- 150.

ए ब्रोकेन ब्रिज

इस नाटक को हबीब तनवीर द्वारा 'शिकागो एक्टर्स एन्सेंब्ल' के लिए अंग्रेजी में लिखा गया था। हबीब ने इसे अपने शिकागो प्रवास के दौरान ही लिखा। यह नाटक अमेरिका में रह रहे उन अप्रवासियों के बारे में था जिनका जीवित संपर्क अब अपने देश से नहीं था, लेकिन जिनकी स्मृतियों में अपना देश अब भी था। इस नाटक को भी हबीब ने अपनी हस्ताक्षर शैली में गीत और संगीत से मिला कर नियोजित किया था।

डैडी का घर

यह नाटक हबीब तनवीर ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए 1995 में लिखा था। उस समय हबीब तनवीर दिल्ली के बेर सराय के मकान में अपने साथियों के साथ रह रहे थे कि तभी डीडीए ने उसे खाली करने का नोटिस दे दिया। हबीब ने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण साल इसी मकान में गुजारे थे और अब उनसे जबरन यह घर खाली करवाया जा रहा था। इस कारण वे दिल्ली छोड़कर भोपाल चले गए। इस स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए ही उन्होंने यह लघु नाटक तैयार किया।

एक औरत हिपेशिया भी थी

हबीब तनवीर ने यह नाटक 'जन नाट्य मंच' के लिए नब्बे के दशक में लिखा और निर्देशित किया था। यह समाज में बढ़ते कट्टरवाद के खिलाफ उनका एक वक्तव्य था। नाटक में हबीब ने ऐतिहासिक पात्र हिपेशिया के माध्यम से कट्टरता के परिणाम को दिखाया है जिसमें हिपेशिया को ईसाईयों के हमले का शिकार होना पड़ा था। इस नाटक की एक खास बात यह कि इसमें हबीब ने अपनी शैली के विपरीत क्लिष्ट उर्दू का प्रयोग किया।

ज़हरीली हवा

भोपाल गैस त्रासदी पर आधारित राहुल वर्मा के अंग्रेजी नाटक 'भोपाल' का हिंदी में 'ज़हरीली हवा' नाम से रूपांतर एवं निर्देशन हबीब तनवीर ने किया था। इस त्रासदी में कई हजार लोगों की मौत हुई थी और असंख्य लोग आज भी इस त्रासदी से आहत हैं। इस नाटक में डॉ. सोनिया, जो एक विदेशी फैक्टरी की लापरवाही के बुरे नतीजे मालूम करने में लगी है कि रिसर्च को कैसे दबाने की कोशिश की जाती है, यह सब दिखाया गया है।

अन्य रचनाएँ

हबीब तनवीर ने नाटकों के अलावा शेर, गीत, कविताएं, नज़्में, गजलें भी लिखी हैं। उनको जितना प्रेम अभिनय से था उतना ही गीत, शायरी से भी रहा। इसी के चलते वे अपने कॉलेज के दिनों से ही वह मुशायरों में जाने लगे थे। फिर मुंबई आने पर एक शायर की हैसियत से 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़े। उन दिनों वे सज्जाद जहीर के घर नियमित रूप से प्रगतिशील लेखकों की बैठकों में शामिल होते और अपनी नई-नई नज्मों, गजलों को पढ़ते। अली सरदार जाफरी की 'नया अदब' नाम की एक साहित्यिक पत्रिका में हबीब की छह गजलों का पहला सैट भी प्रकाशित हुआ था, जिसकी अच्छी-खासी चर्चा भी हुई। उन दिनों बम्बई के अलावा गुजरात, उतर-प्रदेश और मध्य-प्रदेश के अखिल भारतीय मुशायरों में भी शिरकत करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया जाने लगा था।

दुःख की बात यह है कि इतना कुछ लिखने के बाद भी हबीब तनवीर ने इन्हें प्रकाशित करवाने का कभी नहीं सोचा, जैसे अपने नाटकों के लिए नहीं सोचा था। इसलिए आज उनकी शेरो-शायरी, नज़्मों', कविताओं का हिंदी में कोई स्वतंत्र संग्रह नहीं है। व्यक्तिगत प्रयासों से ही उनकी कुछ रचनाएँ जरुर प्रकाशित हुई हैं, जिसके आधार पर हम उनके काव्य पक्ष को समझ

सकते हैं। उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण और उपलब्ध रचनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं-

शेर : हबीब तनवीर द्वारा लिखित विभिन्न शेरों में उनके उपलब्ध शेर इस प्रकार हैं-

1. *ख़ार को तो ज़बान-ए-गुल बख्शी*
   गुल को लेकिन ज़बान-ए-ख़ारही दी।[14]
2. *मैं नहीं जा पाऊंगा यारो सू-ए-गुलज़ार अभी*
   देखनी है आब-जू-ए-ज़ीस्त की रफ़्तार अभी।[15]

नज़्म : हबीब तनवीर ने कई नज़्में लिखी है जिसमें 'वापसी', 'नीला आसमान', 'तुम्हारे गाँव से जो रास्ता निकलता है' आदि उनकी उपलब्ध नज़्में हैं। **'तुम्हारे गाँव से जो रास्ता निकलता है'** में हबीब के आशिक मन का परिचय मिलता है। इसमें प्रेमिका के गाँव की हर चीज़ को वह अनुभव करता नज़र आता है। यह कुछ नज़्म इस प्रकार है-

"तुम्हारे गाँव से जो रास्ता निकलता है
मैं बार बार उसी रास्ते गुजरता हूं
हर एक ज़र्रा यहाँ का मिरी निगाह में है।
तुम्हारे गाँव के उस रास्ते एक इक मोड़
खुदा हुआ है मिरे पाँव की लकीरों में
हर एक मोड़ पे रुकता हुआ मैं गुज़रा हूँ
कभी सुनंद की दुक्काँ पे जा के खाया पान
कभी भरे हुए बाज़ार पर नज़र दौड़ाई
कभी शरीफ के होटल पे रुक के पी चाय

[14] https://www.rekhta.org
[15] https://www.rekhta.org

मुझे शरीफ से मतलब न कुछ सुनंद से काम

न उस भरे हुए बाज़ार से मुझे कोई रब्त

वो पूछें हाल मैं उन से कहूँ कि अच्छा हूं

वो मुझ से बढ़ती हुई कीमतों का ज़िक्र करें

मैं उन से शहर की बे-लुत्फियों की बात करूँ

गुज़रता है बस इस तरफ एक दो लम्हे

और इसके बाद सड़क पर कदम बढ़ाता है

तुम्हारे गाँव से जो रास्ता निकलता है...

ये देखो बढ़ने ही वाली है जैसे गाँव की शाम

ये जैसे उठने ही वाला है गाँव का बाज़ार

यहां से वैसे ही बस मैं भी उठने वाला हूँ

बिसान-ए-शाम बस अब मैं भी बढ़ ही जाऊंगा

न कोई मुझसे ये पूछेगा क्यूँ मैं आया था

न मैं किसी से कहा, मैं जाता हूँ

और एक उम्र से इस तरह जाने कितनी बार

तुम्हारे गाँव के रास्ते से गुज़रा हूँ,

और अब न जाने इसी तरफ और कितनी बार

तुम्हारे गाँव उस इस रास्ते से गुज़रुंगा"[16]

वापसी : इस नज़्म में नायक (प्रेमी/ पति) के घर लौटने को केन्द्रित किया है। वह घर जाने को बेहद बेताब है। जब वह घर लौटता है तो नायिका (प्रेमिका/ पत्नी) को दहलीज़ पर ऐसे खड़ा पता है जैसे उसने उसे पहचाना नहीं। उसमें पहले जैसा वह उत्साह, उमंग नहीं दिखता। समय के बड़े

[16] तनवीर, हबीब; 'तुम्हारे गाँव से जो रास्ता निकलता है'; www.rekhta.org

अन्तराल के बाद आज दोनों एक दूसरे को पहचानने की कोशिश कर रहे। इन्हीं सब को बड़ी खूबसूरती से पेश किया गया है।

"मैं ने सोचा तुम्हें मुद्दत से नहीं देखा है

दिल बहुत दिन से है बेचैन चलूँ घर हो आऊँ

दूर से घर नज़र आया रौशन

सारी बस्ती में मिला एक मिरा घर बे-ख़्वाब

पास पहुंचा तो वो देखा जो निगाहों में मिरी घूम रहा है अब तक

रौशन कमरे के अंदर!

और दहलीज़ पे तुम!

सुन के शायद मिरी चाप

तुम निकल आई थीं बिजली की तरफ

और वहीं रुक सी गई थी !

देर तक !

पाँव दहलीज़ पे चौखट पे रखे दोनों हाथ

बाल बिखराए हुए शानों पर

रौशनी पुश्त पे हाले की तरफ

साँस की आमद-ओ-शुद थी न कोई जुम्बिश-ए-जिस्म

ऐसे तस्वीर लगी है

जैसे आसन पे खड़ी हो देवी

मैं ने सोचा अभी तुम ने मुझे पहचाना नहीं

बस इसी सोच में ले कर तुम्हें अंदर आया

पास बिठला के किया यूँही किसी बात का ज़िक्र

तुम ने बातें तो बहुत कीं मगर उन बातों में

कोई वाबस्तगी-ए-दिल

कोई मानूस इशारा

लब पे इज़हार-ए-ख़ुशी

न कोई गम की लकीर

अरे कुछ भी तो न था

न वो हँसना, न वो रोना , न शिकायत, न गिला

न वो रग़बत की कोई चीज़ पकाने का ख्याल

न दरी ला के बिछाना न वो आंगन की लिपाई की कोई बात

न निगाहों में ये अहसास कि हम तुम दोनों

हैं कोई बीस बरस के इक साथ

लाख कोशिश पे भी तुमने मुझे पहचाना नहीं

मैंने जाना तुम्हें मैंने भी नहीं पहचाना

एक इशारे में ज़माना ही बदल जाता है

सिलसिला उन्स-ओ रिफ़ाकतका कोई आज भी है

पर ये बांधा है नया रिश्ता-ए-ज़ीस्त

मैं भी हूँ और कोई, जिसके साथ

तुम भी हँस-बोल के रह लेती हो

वो भी थी और कोई

जो वहीं रुक गई उस चौखट पर

जैसे तस्वीर लगी हो

जैसे आसान पे खड़ी हो देवी''[17]

नीला आसमान : हबीब तनवीर ने जिस तरह अपने नाटकों में बच्चों को स्थान दिया है, वैसे ही उनका कवि मन भी इससे अछूता नहीं। बच्चों का स्वभाव होता है कि वे जिज्ञासावश कुछ न कुछ सवाल पूछते हैं। उनकी 'नीला आसमान' भी कुछ इसी तरह की नज़्म है। इसमें बच्ची अपने बाबा से सवाल पूछती है कि 'आसमान नीला क्यों है' ? इस बात के उत्तर में पिता के मन की बात सामने आती है। नज़्म इस प्रकार है-

''मेरी बच्ची ने मुझसे कल पूछा
बाबा ये आसमां है नीला क्यूँ
मैं ने सोचा पर उस से कह न सका
ये सवाल उस के दिल में आया क्यूँ
क्यूँ ये बातें हैं इतनी दिल-आवेज़
है ये अंदाज़ इतना प्यारा क्यूँ
क्यूँ हैं लब पर ये इतने सारे सवाल
है तबस्सुम ये फूल जैसा क्यूँ
मेरे दिल में उधेड़-बुन क्या है
मैं सितारें से जा के उलझा क्यूँ
सितम-अंग्रेज जिंदगी दिल-कश
फिर ये आजम-ए-कार मरना क्यूँ
मैं ने ये क्या जवाब सोचा है
तुम ने ऐसा सवाल पूछा क्यूँ''[18]

---

17 तनवीर, हबीब; 'वापसी'; www.rekhta.org

18 तनवीर, हबीब; 'नीला असमान'; www.rekhta.org

गज़ल : हबीब तनवीर गज़ल विधा में भी पारंगत थे। वे बड़े रोचक ढंग से अपना विषय इन गज़लों में प्रस्तुत करते। देखा जाए तो उनकी इन रचनाओं में उर्दू के शब्दों का प्रयोग अधिक मात्र में है। उदाहरण के लिए उनकी एक गज़ल कुछ इस प्रकार है-

1. *तज़करा जफ़ाओं का*

अश्क खू की सूरत में

गम की तरजुमानी है

मुझको गम से क्या लेना

पर मेरी वफ़ाओं की

इक यही निशानी है।

शाद काम-ओ-आसूदा

कब मेरी मुहब्बत है

काश तू समझ सकती

अपने साथियों का गम

अपनी ज़िन्दगी का गम

क्या ये जिंदगानी है।

रंगोबू के अफसाने

हो न जाएँ पज़मुर्दा

निकहतें न मर जाएं

हर्फ़ हर्फ़ में पिनहां

है खिजां की वीरानी

ज़ुल्म की कहानी है।

दादे सब्र देते हैं

दर्द और बढ़ता है

खाक उस तसल्ली पर

इन्तहाए दिल मालूम

दिल के दुश्मनों को भी

ज़ोम-ए-पासबानी है।

ये तिक्समे ज़रदारी

एक ही इशारे में

हो गया तहोबाला

साक़िया न जाने क्या

तेरे इंकलाबी ने

अपने जी में ठानी है।

क्यूं नहीं समझ पता

क्यूं निगाह जाती है

मंज़िलों से भी आगे

राहबर है दीवाना

काफ़िले की नज़रों ने

किसकी बात मानी है।

हुस्ने रुए गेती पर

है दवाम का परतौ

अक्से रायते अहमर

अब यहां का हर लमहा

ज़िन्दा और पायान्दा

और गैरफानी है।

आज तेरे आँचल की

नर्म सरसराहट में

बिजलियों के तेवर हैं

और ये बर्क अब मुझको

ऊँचे-ऊँचे महलों पर

आज ही गिरानी है।

वह भी महबे हैरत हैं

अब मेरी वफ़ाओं पर

बदगुमां है महफ़िल भी

उनके सामने 'तनवीर'

आज तेरी बातों में

किस कदर रवानी है।[19]

गीत : कम ही लोग जानते हैं कि हबीब तनवीर एक गीतकार भी थे। उन्होंने अपने बम्बई प्रवास के दौरान फिल्मों के लिए गीत लिखें थे। आगे चलकर तो उन्होंने अपने नाटकों के स्वयं लिए गीत रचे। हम 'चरनदास चोर', 'मिट्टी की गाड़ी', 'हिरमा की अमर कहानी', 'देख रहे हैं नैन', 'जिस लाहौर नहीं देख्या...', 'कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' आदि नाटकों में उनके रचित गीतों का आनंद ले सकते हैं। उनके सभी गीत नाट्य-परिस्थिति के अनुकूल हैं। जैसे 'हिरमा की अमर कहानी' में आदिवासियों के अपने जल, जंगल, जमीन से जुड़े होने के भाव को प्रस्तुत करता हुआ यह गीत-

---

[19] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1993; पृ. 150

"यही हमारी महतारी, ये धरती इतनी प्यारी

पर्वत बन अभिमान दिखाती, बन के नदी इतराती।

सूरज को भी यहीं बुलाती, चाँद का दर्पण लाती।

तारों की महफिल गरमाती हवा का गीत सुनाती।

यही हमारी महतारी...

हम धरती के लाल हैं, धरती के सैनिक भी हम हैं।

हम जंगल के वासी, जंगल के रक्षक भी हम हैं

सेवक भी पेड़ों के हम हैं, और मालिक भी हम हैं

यही हमारी महतारी..." [20]

इसी तरह नाटक 'देख रहे हैं नैन' का यह गीत भी द्रष्टव्य है, जिसमें नाटक का नायक जब विराट साधू बन जाता है, तब गाया जाता है। जैसे-

"अब रहिये बैठ एक जंगल में, सब कुछ तजकर बैराग लिये।

वो करम की गठरी सर पर है, और बोझ भी उसका भारी है।

कुछ बोझ से पांव रुका भी है, कुछ चलने की तैयारी है।

कल और किसी की बारी थी, अब आज हमारी बारी है।

एक नींद का झोंका आता है, यानी बहतेरे जाग लिये

अब रहिये बैठ एक जंगल में...।

ये धन दौलत भी बंधन है, घर बार गृहस्थी बंधन है।

बीबी बच्चे बटमार भी है, बढ़ती सम्पति बंधन है।

खुद तेरा दिल गद्दार भी है, खुद तेरी हस्ती बंधन है।

बो जितने दोस्त हमारे थे, सब एक एक कर भाग लिये

---

[20] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1993; पृ. 151

अब रहिये बैठ...

औरों को सुख पहुँचाने में भी, जुल्म का पहलू शामिल है।

दुनिया के नाम कमाने में भी, जुल्म का पहलू शामिल है।

खुद दानिस्ता मर जाने में भी, जुल्म का पहलू शामिल है।

आखिर कब तक ये हाय हाय, एक अभिलाषा की आग लिये

अब रहिये बैठ एक जंगल में ...[21]

कविताएं : हबीब तनवीर का जो तेवर, भाव-बोध उनके नाटकों में दिखाई देता है वही उनकी कविताओं में भी दिखता है। अपने लेखन में वे कभी भी समाज से कटते नहीं। यहां भी वे आम आदमी की वकालत करते हुए प्रश्न करते दिखाई देते हैं। विषय विविधता भी उनकी कविताओ में देखी जा सकती है। 'जंगल', 'रामनाथ का जीवन चरित्र', 'रतौंदी', 'सफेद स्वर', 'दरीचे', 'इलेक्ट्रांस की आवाज़' आदि उनकी कुछ इसी तरह की कविताएँ हैं।

1. जंगल

वह क्या था

दोस्त वह क्या था

जिसने जंगल से बस्ती का रास्ता दिखाया

इंसान की तंजीम

वह क्या था

दोस्त वह क्या था

जिसने बस्ती के अन्दर जंगल खड़े कर दिए

---

[21] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1993; पृ. 152

इंसान की तंजीम

वह क्या था

दोस्त वह क्या था

जो बस्ती के जंगल साफ कर देता है

वह दिन कब आएगा

दोस्त वह दिन कब आएगा

जब बस्ती-बस्ती भी होगी

और बस्ती की रविश–रविश पर

जंगल की हवाएं भी होंगी।[22]

2. रामनाथ का जीवन चरित्र

रामनाथ ने जीवन पाया साठ या इकसठ साल

रामनाथ ने जीवन में कपड़े पहने कुल छः सौ गज़

पगड़ी पांच

जूते पंद्रह

रामनाथ ने अपने जीवन में सौ मन चावल खाया

सब्जी दस मन

फ़ंके किए अनगिनत

शराब दो सौ बोतल

पूजा की दो हजार बार

रामनाथ ने अपने जीवन में धरती नापी कुल जमा पैंसठ हजार मील

---

[22] तनवीर, हबीब; 'जंगल' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 275

सोया पंद्रह साल

प्यार की रातें उसे मिलीं दो ढाई हजार

उसके जीवन में आई बीबी के सिवा कुल पांच औरतें

एक के साथ पचास की उम्र में प्यार किया और प्यार किया नौ साल

सत्तर फीट कटवाए बाल

सत्रह फीट नाख़ून

रुपया कमाया दस हजार या ग्यारह

कुछ रुपया मित्रों को दिया कुछ मंदिर को

और छोड़ा आठ रूपये उन्नीस नया पैसे का क़र्ज़

बस यह गिनती रामनाथ का जीवन है

इसमें शामिल नहीं चिता की लकड़ी, तेल, कफ़न

तेरही का भोजन

रामनाथ बहुत हँसमुख था, उसने पाया इक सन्तुष्ट सुखी जीवन

चोरी कभी न की

कभी कभार अलबत्ता कह देता बीबी से झूठ

गाली दी, दो तीन महीने में एक-आध

एक च्यूंटी भी नहीं मारी

बच्चे छोड़े सात।

भूल चुके हैं गाँव के सबलोग अब उसकी हर बात

रामनाथ![23]

3. रतौंदी

वह कीड़ा

जो जमीन से तीन इंच ऊपर उड़ता है

दो घंटे जीता है

दस फीट जमीन को कायनात समझता है

और देखता उतने ही टुकड़े को है

जिस पर उसका साया पड़े

मुझ पर उड़ता रहे

मुझे देखने की कोशिश करता रहा

काटता रहा

और यूं उसने जिन्दगी बसर कर दी[24]

4. सफेद सवार

(नेहरु की मौत पर)

एक सवार

रात का एक जंगल

रात के एक जंगल में एक सफेद सवार

जामिद पेड़

साकित जंगल

---

[23] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कलकत्ता; संस्करण-1993; पृ. 147-148

[24] तनवीर, हबीब; 'रतौंदी' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 276

जंगल भी लक-दक

अथाह एक जंगल के आगे तन्हा एक सवार

एक सवार, एक तेज हवा का झोंका

एक सफेद सवार

जुंबिश में सब पेड़ हैं पत्ते हिलते हैं

वसी एक जंगल का जंगल जंगल जलता है

कब आया और कहां गया वह तन्हा एक सवार

एक सफेद सवार[25]

5. गरदिल मंजिल

(नेहरु की वसीयत)

मेरी खाक

इन फिजाओं में उड़ा दो

इन्हीं आवारा हवाओं में तो पनपी थी यह खाक

मुश्तेखाक

दिल को कर दो इन्हीं आवारा हवाओं के सुपुर्द

धूल बन कर रूखे देहका निकल जाने दो

अर्केमेहनते देहका से यह खाक

बन ही जाएगी कभी लालवो गुल गंदुम व जौ

ले के गंगा में छिड़क दो

मौजे गंगा से उठती, दामने गंगा में पली

---

[25] तनवीर, हबीब; 'रतौंदी' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 128

बैठ जाएगी उसी पहलुए बेचैन में खाक

लरजिशे मौजे गमे दिल बनकर

मेरी खाक

कुछ तो गंगा में छिड़क दो

कुछ फिजाओं में बिखर जाने दो

गरदे मंजिल है यह खाक

उड़ते रहने दो इसे

इसमें बाकी है अभी काविशे यक मंजिले नौ[26]

6. दरीचे

ताक रही थी मुझ को एकदरीचे से

और कहती थी बीस रूपये

कितने दिन यूं ही गुज़रे

वो मुझको तकती ही रही

खिड़कियों से कहती ही रही

बीस रूपये

फिर मैंने कुछ दिनों वो कूचा छोड़ दिया

कितने दिन यूं ही गुज़रे

फिर एक दिन मैं चला आ रहा था कि यकायक क्या देखा

ताक रही थी मुझको उसी दरीचे से

---

[26] तनवीर, हबीब; 'रतौंदी' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 280

वही कमीस

नीले रंग में रंगी हुई और सुर्ख डोर से सिली हुई

वो ही कमीज़

कहती थी पच्चीस रूपये, पच्चीस रूपये, पच्चीस रूपये[27]

7. इलेक्ट्रांस की आवाज़

सुबह दम मुझसे मशीनों की धमक ने यह कहा

आबो दाने के तजस्सुस में ही गुज़री तेरी उम्र

गो मोहब्बत की परस्तिश को बना तेरा दिमाग

गमे दुनिया से सुबकदोश तुझे करना है

चाहे इसके लिए करनी पड़े आफ़ाक से जंग

इन्कलाब और एक आयेगा मशीनों का अभी

रोकने से भी न रुक पायेगा जब आयेगा

गैब से बारिशे ज़र होगी और इतनी होगी

खुद ब खुद देखते ही देखते बदलेगा निज़ाम

और निज़ाम आप न बदला तो उलट जायेगा

हुस्ने तख़लीक़े बशर और निखर आयेगा

हर जफ़ाकश को मिलेगा गमे हस्ती का सिला[28]

---

[27] तनवीर, हबीब; 'रतौंदी' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 286

[28] तनवीर, हबीब; 'इलेक्ट्रांस की आवाज़' (कविता); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 297

प्रकाशित लेख और भाषण

हबीब तनवीर का नाटककार पक्ष मुख्य रूप में हमारे सामने आता है। लेकिन हबीब तनवीर ने समय-समय पर कुछ अन्य विधाओं में भी हाथ आजमाया है। साथ ही अलग-अलग समय, स्थान पर दिए गए भाषणों का लिप्यांतरण भी किया गया है। ये लेख, भाषण हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में मिलते हैं।

लेख

1. 'उपभोक्ता समाज में कला और संस्कृति'
2. 'भारतीय थियेटर का क्षरण और पुनर्निर्माण साथ-साथ चल रहा है'
3. 'पारम्परिक थियेटर'
4. 'पहचान का संकट और थियेटर की प्रमाणिकता का सवाल'
5. पारसी थियेटर के नाटक
6. योरोप के यात्रा की कुछ घटनाएँ
7. Journe into Theatre.
8. The Indian Experiment.
9. My Subversive Allies in Theatre.
10. The Crisis of Identity and the question of Authenticity.

भाषण

1. थियेटर और मेरे अनुभव
2. क्लासिकल और फोक थियेटर
3. रंगमंच व लोक संस्कृति

4. लोककथाओं और लोकगीतों में प्रतिवाद के स्वर
5. Cultural Pursuasions of Politics and their Implication.
6. Subversive Processes in third world culture : The Question Pursuasion of Politics and their Implication.
7. Shakespeare in Translation: The Indian Context.
8. Indian Theatre.

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि हबीब तनवीर का रंग व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे पत्रकार, कवि, समीक्षक, अभिनेता, गीतकार, लेखक, निर्देशक सभी कुछ एक साथ थे। बम्बई का जीवन उनके व्यक्तित्व निर्माण की पहली कड़ी है जहाँ वे कलात्मक, सृजनात्मक संसार से जुड़ते हैं। साथ ही 'इप्टा' के साथ काम करते हुए लोक की गतिशील ऊर्जा ने उन्हें गहरे तक प्रभावित किया। इस प्रभाव ने ही आगे चलकर हबीब तनवीर को उनके मंचीय मुहावरे तक पहुँचाया। उनकी रंग प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी रहा कि उन्होंने विफलताओं, विरोधों और कटु-आलोचनाओं की चौतरफ़ा मार सहते हुए भी अपनी रचनात्मक ज़िद नहीं छोड़ी।

द्वितीय अध्याय

समकालीन हिंदी रंगमंच : परम्परा और प्रयोग

2.1 रंगमंच की परम्परा और स्वरूप

किसी भी देश की सभ्यता-संस्कृति के विकास में सृजनात्मक-कलात्मक अभिव्यक्तियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। इनके द्वारा जहाँ एक ओर समाज का मनोरंजन होता है वहीं दूसरी ओर यह समाज के मौलिक आदर्शों और मूल्यों को भी प्रकट करती है। रचनात्मक प्रक्रिया का यही दोहरा पक्ष हमारे जीवन में संगीत, चित्रकला, साहित्य, नाट्य आदि कलाओं का महत्त्व बढ़ाता है। प्रसिद्ध रंग समीक्षक नेमिचंद्र जैन के अनुसार, *''कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा समाज का सर्वाधिक वांछनीय और संस्कृत अनुरंजन होता है जो जन-मानस का परिष्कार भी करता है और संस्कृति के मौलिक मूल्यों की स्थापना भी।''*[1] रंगमंच भी एक ऐसी प्रदर्शनकारी कला है जो केवल मनोरंजन ही नहीं करती अपितु जीवन के विविध अनुभवों को रूपायित भी करती है। यह एक जीवंत कला है। रंगमंच को कला-अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम मानते हुए दया प्रकाश सिन्हा लिखते हैं, *''रंगमंच एक विशिष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह सीमित अर्थों में किसी वर्ग-विशेष का नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज का, अपनी विविधताओं सहित प्रतिनिधित्व करता है। इस अर्थ में वह सम्पूर्ण विश्व है।''*[2]

देखा जाए तो 'रंगमंच' शब्द का आविर्भाव 'रंग' और 'मंच' शब्दों के संयोग से हुआ है। यह दोनों शब्द संस्कृत भाषा के शब्द हैं, परन्तु इन दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग 'नाट्यशास्त्र'

---

1 जैन, नेमिचंद्र; रंग-दर्शन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1996; पृ. 9

2 सिंह, डॉ. केदारनाथ; हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच; विद्या विहार, गांधी नगर, कानपुर; संस्करण 1985; पृ. 47

में कहीं नहीं मिलता है। इस संदर्भ में डॉ. अज्ञात मानते हैं, *''रंगमंच अपेक्षाकृत एक अर्वाचीन शब्द है, जिसका उल्लेख भरत नाट्यशास्त्र या अन्य परवर्ती नाट्य-विषयक लक्षण-ग्रंथों में नहीं मिलता। अपने सीमित अर्थ में यह नाट्यशास्त्र में वर्णित 'रंगशीर्ष' अथवा 'रंगशीर्ष एवं रंगपीठ' दोनों का संयुक्त पर्याय प्रतीत होता है। नाट्यमंडप के आधे पृष्ठ भाग को पुनः दो बराबर भागों में विभक्त करने पर उसके आधे अग्र भाग को 'रंगशीर्ष' और पीछे के भाग को नेपथ्य कहते हैं। अभिनवगुप्त ने इस 'रंगशीर्ष' वाले भाग के पुनः दो भाग कर, शिरोभाग को 'रंगशीर्ष' और पादभाग को 'रंगपीठ' माना है। इस प्रकार 'रंगशीर्ष' और 'रंगपीठ' वस्तुतः एक ही 'रंग' के दो पीछे–आगे के भाग हैं। इस प्रकार 'रंग' कहने मात्र से पूरे 'रंगमंच' का बोध होता है, अतः रंगमंच में 'मंच' शब्द अनावश्यक प्रतीत होता है, वैसे ही जैसे 'पावरोटी' में रोटी, क्योंकि पुर्तगाली भाषा में 'पाव' शब्द का अर्थ ही रोटी होता है। भाषा-विकास के सिद्धांत के अंतर्गत लोक-व्यवहार की कसौटी पर चढ़कर 'पाव' शब्द 'पाव-रोटी' बन गया और 'रंग' शब्द 'रंगमंच'।''*[3]

संस्कृत में 'रंग' शब्द स्थल-विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। यानी वह स्थल जहाँ नाट्य अभिनय प्रस्तुत होता हो। कालांतर में इस शब्द का प्रयोग लोक व्यवहार की कसौटी पर चढ़कर 'मंच' शब्द के साथ जुड़ते हुए 'रंगमंच' बन गया। हिंदी में भी यह शब्द काफी समय तक स्थल-विशेष का ही अर्थबोध करता रहा। संस्कृत रंगमंच के संदर्भ में चर्चा करते हुए जयशंकर प्रसाद ने भी 'रंगमंच' शब्द का अर्थ अभिनय स्थल–विशेष से ही लिया था। 'रंगमंच' नामक अपने निबंध में उन्होंने लिखा है, *''रंगमंच में भी दो भाग थे। पिछले भाग को रंगशीर्ष कहते थे और सबसे आगे का भाग रंगपीठ कहा जाता था।''*[4] परन्तु आगे चलकर नए समय के अनुसार नए भाव-बोध के अनुरूप 'रंगमंच' के अर्थ में एक व्यापक परिवर्तन आया है। शब्द वही है बस अर्थ

---

[3] डॉ. अज्ञात; भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास; पुस्तक संस्थान, कानपुर; संस्करण 1978; पृ. 27

[4] प्रसाद, जयशंकर; 'रंगमंच'; वर्तमान साहित्य; (सं.) विभूति नारायण राय; 'शताब्दी नाटक विशेषांक'; जुलाई-अगस्त, 2000; पृ. 21

के संदर्भ बदल गए। विद्वानों ने अब इस शब्द को अंग्रेजी के 'थियेटर' शब्द का पर्याय माना। *"थियेटर के अंतर्गत नाट्य-साहित्य, प्रस्तुतीकरण, अभिनय, उपस्थापन, रंग-शिल्प, रंग-भवन, रंगशाला और नाट्यालोचन और इन सबका शास्त्र समाहित है।"*[5] अर्थात् अब उसकी परिधि में रंग-प्रस्तुतीकरण से सम्बंधित सभी तत्त्व आ गए हैं। प्रस्तुत है इन तत्त्वों का संक्षिप्त परिचय-

नाटक : संस्कृत में नाटक रूपक का एक प्रधान अंग रहा है। हिंदी में आज इसका व्यवहार अंग्रेजी ड्रामा के पर्याय के रूप में होने लगा है। नाट्यशास्त्र में नाटक के मूलभूत रचनात्मक तत्त्व तीन माने गए हैं- वस्तु, नेता और रस। दूसरी तरफ पाश्चात्य नाट्य चिंतकों ने नाटक के छः तत्त्व माने हैं और यही आजकल हिंदी नाट्य-साहित्य में मान्य है। ये तत्व हैं- वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उदेश्य। देखा जाए तो ये छः तत्त्व उपन्यास या कहानी के भी रचनात्मक तत्त्व मने जाते हैं। लेकिन इसके बावजूद भी नाटक इस दोनों विधाओं से अलग है। क्योंकि वह श्रव्य के साथ-साथ दृश्य भी है।

एक नाटककार की सफलता उसी में है कि उसका नाटक रंगमंच पर अच्छी तरह से अभिनीत हो। वास्तव में नाटक और रंगमंच दोनों अन्योन्याश्रित है। *"नाट्य-कृति और रंगमंच एक दूसरे के कार्य और कारण हैं, दूसरे स्तर पर एक-दूसरे के पूरक और यहां तक कि एक दूसरे के पर्याय भी।"*[6]

निर्देशक : निर्देशक का सामान्य अर्थ है, निर्देश देने वाला। रंग प्रस्तुति से जुड़े सभी तत्त्वों को एक सूत्र में पिरोकर एक निश्चित दिशा में ले जानेवाला व्यक्ति है, निर्देशक। किसी रंग-प्रस्तुति को सफल बनाने में निर्देशक का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप से

---

5 सिंह, डॉ. केदारनाथ; हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच; विद्या विहार प्रकाशन; गांधी नगर, कानपुर; संस्करण 1980; पृ. 46

6 लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण; रंगमंच और नाटक की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; संस्करण 1989; पृ. 15

दर्शक के पास पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कला-बोध, सौन्दर्यबोध और जीवन-बोध को ही सूचित करता है। रंगकर्म में निर्देशक के इस महत्त्व के कारण ही उसे 'कैप्टन ऑफ दि शिप' कहा जाता है।

देखा जाए तो यूरोप में 19वीं शताब्दी से निर्देशक का महत्त्व बढ़ा और धीरे-धीरे रंग-कार्य में उसका स्थान बहुत प्रमुख हो गया, यहां तक कि नाटक और अभिनेता भी उसके आगे गौण पड़ने लगे। भारतीय परम्परा में निर्देशक की संकल्पना नहीं थी, यह तो पश्चिम के प्रभाव और समय की जरूरत के हिसाब से हमारे आधुनिक रंगमंच में समाता चला गया।

अभिनेता : अभिनेता भी रंगमंच का एक प्रमुख तत्त्व है। यह अपनी अभिनय-कला के माध्यम से नाटककार और निर्देशक के विचारों को सामने बैठे दर्शकों तक पहुंचता है। इसीलिए नाट्यकला को अभिनेता का माध्यम भी कहा जाता है। नाट्यशास्त्र में आए 'अभिनय' शब्द में ही अभिनय की परिभाषा समाहित है- *"'अभिनय' शब्द में 'अभि' उपसर्ग है, जिसका अर्थ है- किसी विशेष दिशा की और, 'नय' का मतलब है- ले जाना। अर्थात् जो अपनी कला से दर्शकों को नाटक और स्वयं को किसी विशेष दिशा में ले जाए, उस कला का नाम 'अभिनय' है और कला का कलाकार 'अभिनेता' है।"*[7]

रंगशिल्प : रंगमंच एक दृश्य-श्रव्य कला है और इस दृश्य-श्रव्यता को प्रभावी बनाने में रंगशिल्प का बहुत बड़ा योगदान रहता है। *"रंगशिल्प नाटक के निर्देशक द्वारा स्वीकृत अर्थ-निर्णय के साथ समन्वित होकर एक समग्र-सम्पूर्ण भाववस्तु का निर्माण करता है, जिसका संप्रेक्षण ही पूरे प्रदर्शन-आयोजन का उद्देश्य रहता है।"*[8] रंगशिल्प के अंतर्गत दृश्य-विधान, रंगदीपन, रंगसंगीत, वेशभूषा तथा रूप-सज्जा को सम्मिलित किया जाता है। जब रंग-प्रस्तुति की आवश्यकतानुसार ये

---

7 लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण; रंगभूमि : भारतीय नाट्य सौन्दर्य; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; संस्करण 1989; पृ. 10

8 जैन, नेमिचंद्र; रंग-दर्शन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1996; पृ. 48-49

तत्त्व एकत्रित आते हैं तब दर्शकों को एक प्रभावी नाट्य-प्रस्तुति का आस्वाद लेने का अवसर प्राप्त होता है।

दृश्य-विधान: मंच पर सर्जित दृश्य-बंध, दृश-सज्जा या मंच-सज्जा, दृश्य-विधान के अंतर्गत आते हैं। दृश्यबंध केवल मंच पर जो रिक्तता होती है, उसे भरने का काम ही नहीं करता बल्कि रंग-प्रस्तुति के लिए आवश्यक वातावरण निर्मित करता है तथा संप्रेक्षण का माध्यम बन जाता है। दृश्य-रचना मात्र तकनीकी ज्ञान नहीं हैं, बल्कि कल्पनाशील, समझदारी और सूझ-बूझ भरा सृजन है। आज रंगमंच पर प्रमुखतः तीन प्रकार की दृश्य-सज्जा का उपयोग दिखाई देता है। चित्रांकित रंगसज्जा, प्रकृतिवादी दृश्यबंध, प्रतीक रंगसज्जा। नाटक की मांग और निर्देशक की संकल्पना के अनुसार ही दृश्य बंध का निर्माण किया जाता है।

रंगदीपन : 'रंगदीपन' का अर्थ प्रकाश-योजना या प्रकाश व्यवस्था से है। निर्देशक की रंग-संकल्पना के अनुसार प्रकाश-अभिकल्पक सही प्रकाश-योजना से दृश्य-सज्जा और रूप सज्जा में पूर्ण निखर लाता है। केवल मंच की वस्तुओं को उद्भासित करने में ही रंगदीपन का कार्य पूरा नहीं हो जाता बल्कि उसकी सार्थकता इस बात में भी है कि कब, किस वस्तु को कितना दिखाना है और किसे छिपाना है।

रंग संगीत : संगीत हमारे सांस्कृतिक परिवेश का एक अहम् हिस्सा रहा है। यह अपने आप में एक स्वतंत्र कला है, जिसका अपना शास्त्र भी है, परन्तु जब उसका उपयोग रंगमंच के संदर्भ में होता है, तब उसमें एक ऐसा लचीलापन आ जाता है जो शास्त्रीय नियमों के परे, प्रस्तुति की मांग के अनुसार उसका स्वरूप रचता चला जाता है। देखा जाए तो संस्कृत रंगमंच में संगीत को बड़ा महत्त्व प्राप्त था। यह दर्शकों के समक्ष नाटक आदि की भूमिका बांधने का काम करता था। लोक रंगमंच की कल्पना तो संगीत को छोड़कर की ही नहीं जा सकती। फिर धीरे धीरे हिंदी

रंगमंच पर भी संगीत का महत्त्व बढ़ने लगा। अब तो तकनीक से रंगमंच को प्रभावकारी बनाया जा रहा है। टेप रिकार्डर, माइक्रोफोन, लाउडस्पीकर जैसे ध्वनि-यंत्रों की उपलब्धि के बाद रंग-व्यापर में उनके उपयोग का स्वरूप व्यापक हो गया है और पार्श्व–ध्वनि, संगीत–योजना रंगमंच की एक विलक्षण कला के रूप में विकसित हुई है।

वेश-भूषा: संस्कृत रंगमंच में आहार्य के अंतर्गत वेश-भूषा को लिया गया है। इसमें पात्रों की वस्त्र-सज्जा और अलंकरण से संबंधित रंग-कार्य आते हैं। दर्शकों के सामने अभिनेता को नाटक के पात्र के रूप में उपस्थित होना पड़ता है और उसका यह कार्य वेश-भूषा के माध्यम से आसान हो जाता है। देश, काल परिवेश और जीवन की पहली पहचान पात्र द्वारा परिधान की गई वेश-भूषा ही होती है। कथानक के परिवेश तथा निर्देशक की रंग-कल्पना के अनुसार ही वेष-भूषा का चुनाव किया जाता है। रंगमंच के अन्य तत्त्वों के साथ सामंजस्य की स्थिति में ही वेश-भूषा सही रूप में नाटक में चित्रित जीवन और परिवेश की पहचान बनती है।

दर्शक : कोई भी कला अपने उद्देश्य में तब तक सफल नहीं हो सकती तब तक उसका रसास्वादन करने वाला, उसे परखने वाला, कोई सहृदय कला-प्रेमी उसे प्राप्त नहीं होता। इस संदर्भ में रंगकार्य भी अपवाद नहीं है। प्रदर्शनकारी कला होने के कारण रंगमंच के लिए दर्शक का बड़ा महत्त्व है। रंगकार्य का पूरा प्रयोजन ही दर्शक को ध्यान में रखकर किया जाता है। "संस्कृत नाटक और रंगमंच का भी चरम उद्देश्य था दर्शकों को लोकोत्तर आनन्द देने अर्थात् रसानुभूति कराने का धर्म।"[9] दर्शकों के व्यक्तित्व ने हर युग में नाटक की प्रकृति और प्रदर्शन की पद्धति को प्रभावित किया। वह केवल द्रष्टा ही नहीं होता, वह एक संवेदनशील व्यक्ति भी है जो समूह के अंग के रूप में स्वतंत्र तथा कल्पनाशील है। वास्तव में किसी भी प्रस्तुति को सफल या असफल बनाने में इस

[9] लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण; रंगमंच और नाटक की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; संस्करण 1965; पृ. 67

दर्शक वर्ग की बड़ी भूमिका है।

देखा जाए तो रंगमंच एक युग विशेष की जनरुचि तथा तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है। प्रत्येक युग की रंगमंच परम्परा अपने ही काल में कुछ ऐसी रूढ़ियाँ व मान्यताएं स्थापित कर जाती है, जिनके रंगसूत्र कभी भी पूरी तरह लुप्त नहीं होते। महाकाव्य की भांति नाटक और रंगमंच की परम्परा भी मानव जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संस्कारों की वाहक है। कई रंग परम्पराएं मिल कर भारतीय रंगमंच का स्वरूप बनाती हैं। इसमें स्थानगत, समयगत, शैलीगत तथा कथ्यगत विविधता है तो आन्तरिक एकता का सूत्र भी है। इसी को आत्मसात करते हुए भारतीय रंगमंच की यह परम्परा संस्कृत रंगमंच, लोकरंगमंच तथा पारसी रंगमंच से होते हुए हिंदी रंगमंच तक आती है। हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषओं में भी इसने अपना स्थान बनाये रखा है।

अब हम संस्कृत रंगमंच की बात करें तो यह परम्परा हजारों वर्ष पुरानी है। संस्कृत के प्राचीन ग्रंथों में नाटक के उद्भव की रोचक कथाएं मिलती हैं। कुछ विद्वानों ने तो धार्मिक उत्सवों, वेद-पूजा, कर्मकांडों, वैदिक संवादों और सूक्तियों में संस्कृत रंगमंच की उत्पत्ति मानी है। जैसे 'ऋग्वेद' में आये अनेक पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, इन्द्र-अदिति-वामदेव, इन्द्र-मरुत, अगस्त्य-लोपामुद्रा आदि संवाद सूक्त प्राचीन नाट्य का ही रूप माने गए हैं। इन संवादों में हम नाटक के विकास का चिह्न पाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन्हीं संवादों से प्रेरणा ग्रहण कर लोगों ने नाटक की रचना की और धीरे-धीरे नाट्यकला का विकास हुआ। तभी भरतमुनि द्वारा 'नाट्यशास्त्र' में उसे शास्त्रीय रूप दिया गया। वेदों, नाट्यशास्त्र के अतिरिक्त संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों, पुराणों, काव्यों, नाटकों, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन धर्म ग्रंथों आदि में भीनाट्यकला की समृद्ध रंगमंच के प्रारम्भिक रूप का स्पष्ट संकेत मिलता है।

'नाट्यशास्त्र' पहली अथवा दूसरी शती ई. में संकलित हुआ समझा जाता है। 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित कथा के अनुरूप ही नाटक के लिए शिव और पार्वती ने अभिनय के लिए तांडव और लास्य मिलाया तथा विष्णु ने उसे नाटकीय शैली दी और भरतमुनि ने इसका प्रचार किया।[10] भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के प्रथम अध्याय में नाट्य को तीनों लोकों के विशाल भावों का अनुकीर्तन कहा है। भरत के अनुसार ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग एवं कर्म नहीं है जो नाटक में दिखाई न पड़े। *''इस शास्त्र का उद्देश्य 'नाट्य' का नियमन मात्र नहीं है अपितु व्यापक जीवन के आचार-विचार एवं सार का परिष्करण भी है। बहुजातीयता और सांस्कृतिक वैविध्य से युक्त भारतीय समाज का उपकार इस शास्त्र का लक्ष्य है।''*[11]

'नाट्यशास्त्र' में नाट्योत्पति का संदर्भ है कि ब्रह्मा के आदेश पर भरतमुनि ने ऋग्वेद से पाठ, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत और अथर्वेद से रस लेकर नाट्य रचना की, जिसे पांचवा वेद कहा गया क्योंकि अन्य वेदों के विपरीत यह सभी वर्णों के लिए था।[12] भरत ने स्वयं इसे पंचम वेद के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए तीन बातों पर जोर दिया है। *''एक तो यह कि चूँकि शुद्र तथा वन्य जातियों के लोग वेद-पाठ से वंचित थे, इसलिए ऐसे वेद की आवश्यकता पड़ी, जो सभी वर्गों की जनता के लिए उपादेय हो। दूसरी बात यह कि नाट्य में ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस का संग्रह किया गया। भरत की तीसरी स्थापना यह थी कि नाट्य सभी प्रकार की कलाओं, शिल्प तथा ज्ञान से सम्पन्न होने के कारण पंचम वेद कहलाने योग्य है।''*[13]

'नाट्यशास्त्र' में हमें नाट्यमंडप के प्राचीन स्वरूप का भी संकेत मिलता है। इस दृष्टि से

---

10 कुमारी वी.एल, डॉ. रीना; हिंदी नाटक एवं रंगमंच; विद्या प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2019; पृ. 36

11 त्रिपाठी, डॉ. वशिष्टनारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2001; पृ. 26

12 https://Rangwimarsh.blogspot.com

13 माथुर, जगदीशचंद्र; परम्पराशील नाट्य, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 15

नाट्यशास्त्र के अध्याय दो और तीन महत्त्वपूर्ण है। इसके दूसरे अध्याय में संस्कृत-काल के शास्त्रीय रंगमंच का विवेचन किया गया है। इसमें विभिन्न आकर-प्रकार और माप वाले नाट्यमंडपों के निर्माण के लिए अलौकिक वास्तुकार विश्वकर्मा द्वारा निर्देशित नियमों का उल्लेख है।[14] भरत ने इसमें तीन प्रकार के नाट्यमंडपों का विधान बताया है। पहला विकृष्ट (आयताकार), दूसरा चतुरस्त्र (वर्गाकार) तथा तीसरा त्रयस्त्र (समबाहु त्रिकोण)। भरत ने इन तीनों के फिर तीन-तीन भेद किए हैं: ज्येष्ठ (देवताओं के लिए), मध्यम (राजाओं के लिए) तथा अवर अथवा कनिष्ठ अथवा कनीयस (औरों के लिए) ।[15] उस समय नाप की इकाई हस्त (18 इंच) थी। इनकी माप के विषय में दिए गए निर्देशों के अनुसार *"विकृष्ट अवर की लम्बाई 32 हस्त होनी चाहिए और चौड़ाई 16 हस्त। विकृष्ट मध्यम की लम्बाई 64 हस्त और चौड़ाई 32 हस्त होनी चाहिए। परन्तु विकृष्ट ज्येष्ठ की लम्बाई 108 हस्त और चौड़ाई 64 हस्त होनी चाहिए। अवर परिमाण के चतुरस्त्र और त्रियस्त्र की भुजाएँ 32-32 हस्त लम्बी होनी चाहिए। मध्यम परिमाण में यह लम्बाई 64 हस्त तथा ज्येष्ठ में 108 हस्त होनी चाहिए।"* [16]

इतना ही नहीं इस अध्याय में भूमि-पूजा के लिए उपयुक्त नक्षत्रों के बारे में भी भरत बताते हैं। साथ ही ध्वनि के लिए आवश्यक दिशा-निर्देश, छत-निर्माण, लकड़ी की सजावट आदि के बारे में भी लिखते हैं। 'नाट्यशास्त्र' के अध्याय तीन में रंगमंच के देवताओं की चर्चा से लेकर उनकी पूजा की विधियों व नाट्यशाला को शुद्ध व जाग्रत रखने के उपायों आदि का उल्लेख करते हैं। भरत रंगमंच के 45 देवताओं की पूजा के साथ ही साथ राजा और प्रजा के कल्याण की कामना भी करते हैं। भरत ने नाट्यशाला को यज्ञ के समान श्रेष्ठ बताया है और अभिनेताओं तथा नाट्य के सम्बन्ध सभी व्यक्तियों के लिए उसके प्रति निष्ठा रखने का विधान किया है।

---

[14] शर्मा, एच.वी; रंग स्थापत्य; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 24

[15] वही, पृ. 25

[16] वही, पृ. 25

संस्कृत का रंगमंच शास्त्रबद्ध था जिसमें नाट्य प्रकारों, रंग स्थल, अभिनय, मंच सज्जा, रंगोपकरणों के साथ शैली की भी परिभाषा निर्धारित थी। 'रस' इसका केंद्रीय तत्व था। संस्कृत रंगमंच की इस लम्बी नाट्य परम्परा में शूद्रक, भवभूति, कालिदास, हर्ष, विशाखदत्त, भास आदि उल्लेखनीय नाटककार रहे हैं। संस्कृत नाटकों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सामान्यतः उनका अभिनय किसी देवोत्सव, विवाहोत्स्व, विजयोत्सव या त्यौहारों-पर्वों के समय हुआ करता था। उनके अभिनय के लिए किसी देव मंदिर या राजप्रासाद में अस्थायी व्यवस्था कर ली जाती थी। नाट्य रूढ़ियों का खास पालन किया जाता था। इसलिए संस्कृत रंगमंच में भोजन, शयन, मृत्यु, यात्रा, युद्ध, वस्त्र-धारण या चुम्बन जैसे अप्रिय तथा अभद्र व्यवहार निषिद्ध थे। वहाँ चमत्कार प्रदर्शन का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

संस्कृत रंगमंच में दो प्रकार की नाट्य धर्मिताएँ भी प्रचलित थीं। पहली नाट्यधर्मी और दूसरी लोकधर्मी। भरत ने प्रथम को 'आभ्यंतर' और दूसरे को 'बाह्य' संज्ञा दी है। पात्र के अनुसार वेश-भाषा-वय-विधि-प्रकृति-मंच आदि का नियोजन नाट्यधर्मी कहलाता है जहाँ भरतोक्त नाट्यशैलियों का विधिपूर्वक प्रयोग किया जाता है। अर्थात् जो विशिष्ट कला और शास्त्र से निर्धारित है, वह नाट्यधर्मी है। जबकि *"अभिनय के लोकजीवन और लोक व्यवहार से संबंद्ध यथार्थोन्मुख रूप को लोकधर्मी माना गया है। इस प्रकार लोकधर्मी का सम्बन्ध लोकजीवन को सूक्ष्म कलात्मकता में ढालने से ज्यादा उसके यथार्थ रूप को प्रस्तुत करने से है।"*[17] लोकधर्मी के संदर्भ में डॉ. गिरीश रस्तोगी ने भी लिखा है कि *"जो मानव स्वभाव है, वह लोकधर्मी है।...इस प्रकार के नाटकों में लोकवार्ता और लौकिक क्रियाओं, चेष्टाओं, स्वाभाविक अभिनय और अनेक प्रकार के स्त्री-पुरुष पात्रों के होने की बात कहते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि उनके अभिनय में अंग-लीला वर्णित है। भरत मुनि के इतने ही संकेत लोकनाट्य स्वरूपों को विशिष्टता,*

[17] त्रिपाठी, डॉ. वशिष्टनारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2001; पृ. 10

उनके स्वभाव और स्वरूप, परम्परा और प्रभावशीलता को व्यक्त कर देते हैं।"[18] देखा जाए तो आधुनिक भारतीय रंगमंच में अल्काजी, हबीब तनवीर, पणिक्कर आदि के नाट्य-प्रयोग लोकधर्मी परम्परा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

साक्ष्य बताते हैं कि सन् एक हजार तक कुछ कारणों से संस्कृत रंगमंच का धीरे-धीरे अवसान हो गया। जैसे- अपभ्रंश भाषाओं के विकास के साथ ही संस्कृत का क्षेत्र संकुचित हो गया। फिर अपभ्रंश भाषाओं में भी साहित्यिक रचना होने लगी और क्षेत्रीय भाषाओं में भी रंगमंच का विकास हुआ जिसने संस्कृत रंगमंच की विशेषताओं को भी अपनाया।[19] जनभाषा में होने के कारण इन नाट्यरूपों को अधिक लोकप्रियता मिली। कुछ विद्वान संस्कृत रंगमंच के अवसान के लिये राजनीतिक और सामाजिक कारणों को भी जिम्मेदार ठहराते हैं। सैकड़ों वर्षों तक संस्कृत रंगमंच की गौरवमयी परम्परा के उपरांत मध्यकाल में भारतीय रंग-परम्परा केवल लोक नाटकों के रूप में ही जीवित रह सकी।

भारतीय रंगमंच की दूसरी परम्परा लोकनाट्यों की रही है। इसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से न होकर सर्वसाधरण के जीवन से है। इनमें जनविश्वासों और जन रुचियों की गहरी पहचान है। लोकनाटक के संदर्भ में जगदीशचंद्र माथुर लिखते हैं, *"लोकनाटक शब्द अंग्रेजी के 'फोक' ड्रामा से उधार लिया गया है। 'ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑव ड्रामा' के अनुसार 'फोक प्ले', यानी लोकनाटक ऐसा नाट्य-मनोरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों पर ग्रामवासियों द्वारा स्वयं प्रस्तुत किया जाता है और प्रायः अशिष्ट और देहाती होता है। योरोप के लोक-नाटक आदिम जीवन में लोकोत्सवों में प्रारम्भ हुए थे। उनमें मृत्यु, पुनर्जन्म, तथा स्थानीय महापुरुषों के विवरण,*

---

[18] रस्तोगी, डॉ. गिरीश; बीसवीं सदी का हिन्दी नाटक और रंगमंच; भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली ; संस्करण 2004; पृ. 18

[19] https://Rangwimarsh.blogspot.com

नटों के खेल इत्यादि होते थे। इंग्लैंड में 'ममर्स प्ले' को लोकनाटक कहा जाता है।" [20] देखा जाए तो लोक की भारतीय अवधारणा व्यापक है जबकि फोक बेहद सीमित है। जगदीशचंद्र माथुर के अनुसार भारत की क्षेत्रीय नाट्यशैलियाँ पश्चिम के लोक-नाटक से कहीं ऊँचे स्तर के प्रदर्शन और साहित्य से सम्पन्न है। उनमें कई शैलियाँ तो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इसलिए वे अपनी पुस्तक 'परम्पराशील नाट्य' में लोकनाटकों को 'परम्पराशील नाट्य' कहने पर बल देते हैं।[21]

भले ही लोक रंगमंच और संस्कृत रंगमंच का विकास एक दूसरे के समानान्तर हुआ है तथा रंग रूढ़ियों के स्तर पर भी दोनों में गहरी समानता दिखाई देती है। यह जरुर है कि लोक रंगमंच का अस्तित्व संस्कृत नाटकों से भी पूर्व का होगा। इसलिए भरत के 'नाट्यशास्त्र' में लोक-रंगमंच का उल्लेख सर्वत्र प्राप्त है। इस संदर्भ में वशिष्ठनारायण त्रिपाठी लिखते हैं, *"यह अवश्य है कि दसवीं शताब्दी के आस-पास लोकनाट्य रूप पूरे भारत में ज्यादा उभरे हुए दिखाई देते हैं और क्रमशः संस्कृत नाटकों का स्थान लेते दिखाई देते हैं। किन्तु इससे पूर्व अर्थात् संस्कृत नाटकों के जन्म से पूर्व और संस्कृत नाटकों के समानान्तर इनका अस्तित्व रहा है।"* [22] लोक रंगमंच की इस प्राचीन परम्परा से प्रेरणा लेकर ही साहित्यिक रंगमंच का उद्भव हुआ।

हम सब जानते हैं कि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र को 'पंचम वेद' कहा है। लेकिन जगदीशचंद्र माथुर परम्पराशील नाट्य को पंचम वेद कहने के पक्ष में हैं और लिखते हैं, *"यद्यपि भरत के नाट्य-शास्त्र में सभी नाट्य को सोद्देश्य एवं धर्म और नीति के सन्देश का वाहक माना गया है, तथापि संस्कृत-नाटककारों ने प्रायः इस कर्त्तव्य को निबाहने का प्रयास नहीं किया। परम्पराशील भाषा-नाटकों ही में भरत द्वारा निर्दिष्ट नाट्य-उद्देश्य को सार्थक करने की चेष्टा की गई।*

---

[20] माथुर, जगदीशचंद्र; परम्पराशील नाट्य, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 17

[21] वही, पृ. 17

[22] त्रिपाठी, डॉ. वशिष्टनारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2001; पृ. 9

अतः परम्पराशील नाट्य ही 'पंचम वेद' कहलाए जाने के अधिकारी हैं।" [23] परम्परागत नाट्य में कई ऐसी विशेषताएँ हैं, जो भारतवर्ष के विभिन्न क्षेत्रों को एक-दूसरे से बांधती हैं। इसका दूसरा महत्त्व इस बात में है कि नागरिक नाट्य की अपेक्षा वह देश की असंख्य जनता के कहीं अधिक समीप है।

लोक नाट्यों की भी मुख्यतः दो प्रवृतियाँ हैं। पहली धार्मिक जिसमें रासलीला, रामलीला, कुट्टियाट्टम, अंकिया नाट, यक्षगान जैसी शैलियाँ हैं। इनके कथानक का आधार और प्रक्रिया धार्मिक हैं। दूसरा है लौकिक, जिनमें स्वांग, ख्याल, नौंटकी, नाचा, माच जैसी शैलियाँ मिलती हैं। इनके कथा स्रोत सामान्य जन जीवन से हैं। यह सभी लोकनाट्य अपने-अपने क्षेत्रों में आज भी काफी लोकप्रिय हैं। संगीत, नृत्य, संवाद तीनों ही लोकनाटय शैली के अनिवार्य अंग हैं और इनके सम्मिश्रण से ही सौन्दर्य-बोध और ज्ञान प्राप्त होते हैं। लगभग प्रत्येक लोकनाटक में उसका प्रारम्भिक अंश, जिसे नाट्यशास्त्र में पूर्वरंग कहा गया, विशेष महत्त्व रखता है। लोकनाट्यों में सूत्रधार और विदूषक अपना खास महत्त्व रखते हैं। *"पुराकथाओं आदि पर आधारित मंदिर, मण्डम या अन्यत्र प्रस्तुत होने वाले धार्मिक नाटकों में सूत्रधार का विकास होता है तथा लोक गाथाओं आदि से सम्बन्धित लौकिक गाथाओं में विदूषक विकसित होता हुआ दिखाई देता है।"*[24]

19 वीं सदी में एक भिन्न राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के आगमन और उसके वर्चस्व ने भारतीय संस्कृति और लोक नाटकों को प्रभावित किया। साथ ही निरंतर पुनरावृत्ति, प्रेरणा की कमी, लौकिक नाटकों के कथानक की आवृत्ति और कवायद में तब्दील होते चले जाने की वजह से इस रंगमंच में एक ठहराव सा आया। लेकिन फिर भी यह धारा पुर्णतः

---

[23] माथुर, जगदीशचंद्र; परम्पराशील नाट्य, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 8

[24] त्रिपाठी, डॉ. वशिष्टनारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2001; पृ. 10

समाप्त नहीं हुई है। आज भी भारत के ग्रामों में यह आधुनिकता से प्रभावित होकर अपने अस्तित्व को बचाए हुए है। ये लोकनाट्य शैलियाँ निरंतर प्रवाहित होने वाली एक ऐसी जीवंत धारा है जिसका हिंदी रंगमंच और पारसी रंगमंच के इतिहास में बड़ा महत्त्व है।

पारसी रंगमंच या थियेटर उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में विकसित हुआ और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक लोगों के मन-मस्तिष्क पर छाया रहा। विस्तृत अर्थ में देखा जाए तो पारसी थियेटर का अभिप्राय है, *"पारसी जाति द्वारा चलाये और बनवाये गये नाट्यगृह, पारसी नाटककार, पारसी नाटक, पारसी नाट्यशालाओं के रंगमंच, पारसी नाटक मण्डलियाँ, पारसी अभिनेता और पारसी निर्देशक आदि-आदि।"*[25] उस समय 'पारसी ड्रामेटिक कोर', 'पारसी थियेट्रिकल कमिटी', 'पारसी थियेटर' शीर्षकों से तत्कालीन बम्बई के समाचार-पत्रों में पारसी नाटकों के विज्ञापन छपे थे। 'इन्दरसभा', 'खुरशेद सभा', 'फ़र्रुख सभा', 'हवाई मजलिस', 'बेनज़ीर-बदरेमुनीर' आदि पारसी रंगमंच के बड़े सफल नाटकों में से थे। इस रंगमंच का बम्बई और कलकत्ता में बोलबाला अधिक रहा। तत्कालीन समय में पारसी रंगमंच के दो रूप थे। पहला रूप बम्बई और उसके आसपास अपने नाटक प्रदर्शित करता था और समय-समय पर बम्बई से बाहर अन्य प्रान्तों में भी अभिनय किया करता था। इसके कर्त्ता-धर्त्ता और मालिक केवल पारसी थे। दूसरा रूप वह था जिसके द्वारा अन्य प्रांतीय मण्डली मालिक अपनी मण्डलियों का अभिनय दिखाते फिरते थे।

पारसी व्यवसायिक नाटक कम्पनियां लगभग सारे भारत में भ्रमण कर अपने नाटकों का प्रदर्शन करती रहीं। नाटकों का अभिनय पर्याप्त रिहर्सलों के बाद किसी निर्देशक की देख-रेख में ही होता था। धन प्राप्ति के हेतु ये कम्पनियां हर संभव प्रयास करने को व्यग्र रहती थीं, भले ही उससे साहित्यिकता का ह्रास हो या गलत साधनों का आश्रय लेना पड़े। इनके अभिनय में उछल-कूद,

---

[25] गुप्त, सोमनाथ; पारसी थियेटर उद्भव और विकास; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2015; पृ. 28

चिल्लाना, हास्य में अश्लीलता, संवादों में शेरबाजी आदि का बड़ा ज़ोर रहता। भारतेंदु हरिशचंद्र ने इस ओर इंगित करते हुए लिखा है, *"काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब 'शकुन्तला' नाटक खेला और उसका धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटे वालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने लगा और 'पतली कमर बल खाए' यह गाने लगा तो डा. थीबो, बाबू प्रमदा दास मित्र, प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता, यह लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं।"* [26] पारसी रंगमंच को संचालित करने वाली सतही दृष्टि की ओर संकेत डॉ. नगेन्द्र ने भी किया है। वे लिखते हैं, *"सचमुच में उस समय कला के स्थूल रूप से ही परिचय था। उसके सूक्ष्म रूप से वे अनभिज्ञ थे। इसके परिणाम स्वरूप वे लोग अनेक प्रकार की ऐतिहासिक भूलें करते थे, उनका हास्य बड़ा भोंड़ा था, उनके अभिनय में अतिरंजना होती थी, कथोपकथन में व्यर्थ की बम्बास्ट और माईक्रोफोन का उपयोग न करने की वजह से प्रत्येक अभिनेता को अस्वाभाविक स्तर में बोलना पड़ता था।"*[27]

यह सही है कि भारत में पारसी रंगमंच ने अपनी व्यवसायिक दृष्टि, असाहित्यिकता और अतिरंजनपूर्ण शैली के साथ विकसित हुआ। इसके बावजूद भी यह जनसामान्य को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुआ। क्योंकि एक तो तत्कालीन समय तक सिनेमा का उद्भव नहीं था और मनोरंजन का कोई खास विकल्प नहीं था। दूसरा इस रंगमंच में दर्शकों को कई तरह के चमत्कार, जादूदेखने को भी मिलते थे जो उनके लिए किसी पहली से कम नहीं थे। इसके अतिरिक्त भी पारसी रंगमंच की कुछ अन्य विशेषताएँ थीं जो दर्शकों का मन मोह रही थीं। जैसे पर्दों का नायाब प्रयोग, संगीत, नृत्य और गायन का प्रयोग, वस्त्र सज्जा, लम्बे संवाद आदि।

---

[26] हरिश्चंद्र, भारतेंदु; 'नाटक'; महेश आनंद; रंग दस्तावेज़: सौ साल-1; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2007; पृ. 68

[27] डॉ. नगेन्द्र; आधुनिक हिंदी नाटक; साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा; संस्करण 2004; पृ. 156

देखा जाए तो पारसी थियेटर के विकास में उनके द्वारा निर्मित नाट्यशालाओं (जैसे इरास थियेटर, एडवर्ड थियेटर, एम्पायर थियेटर, टिबोली थियेटर, रायल ओपेरा हाउस, विक्टोरिया थियेटर, हिंदी नाट्यशाला आदि) का बड़ा महत्त्व था। इन नाट्यशालाओं में नाटक रात 9 या 10 बजे शुरू होकर सुबह 3-4 बजे तक चलते थे। नाटक की शुरुआत सामूहिक मंगलाचरण से होती। संगीत के लिए तबला, हारमोनियम, वायलिन आदि का भी प्रयोग होता था। इनके सफल नाटक एक-एक महीने तक चलते थे।

चूँकि पारसी बाहर से आकर भारत में बसे थे। इसलिए पारसी थियेटर के उद्भव के समय पारसियों में अपने देश के इतिहास के प्रति एक मोह था और अपने धर्म के प्रति एक भाव भरी श्रद्धा थी। कैखुशरु कावराजी ने इस भाव को पहचानते हुए 'बेजन-मनीजेह', 'जमशेद' और 'फरेदून' नाटकों की रचना की थी। पारसी जनता ने इनके इस साहस का स्वागत किया था। पारसी अंग्रेजों के रहन सहन से काफी प्रभावित थे और यथासंभव उनकी नकल भी करते थे। देखा जाए तो नाटकों में भी अधिकांश अंग्रेज़ी नाटकों के रूपांतर पारसी रंगमंच पर खेले गये। कुछ नाटकों की कथावस्तु उपन्यासों से भी ली गई। फिर जब पारसी मण्डलियों ने हिंदू दर्शकों की रूचि की ओर ध्यान दिया तो 'हरिश्चन्द्र', 'गोपीचन्द', 'महाभारत', 'रामलीला', 'भक्त प्रह्लाद' आदि नाटक लिखवाये गये और अभिनीत किये गये। राष्ट्र-प्रेम और धर्म-प्रेमपरक कथ्यों पर भी अच्छे-अच्छे नाटक अभिनीत किये गये। जैसे 'वतन' नाटक इस धारा का बड़ा प्रभावशाली नाटक था। 'ज़ख्मे पंजाब' को तो सरकार ने कई बरस तक बंद रखा।[28]..

पारसी रंगमंच का मूलभूत उद्देश्य सस्ता मनोरंजन देकर धन कमाना था। इसका आरम्भ भारत में गुजराती भाषा में हुआ। यह रंगमंच मनोरंजक, लौकिक होने के साथ-साथ श्रृंगारिक,

[28] गुप्त, सोमनाथ; पारसी थियेटर उद्भव और विकास; लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद; संस्करण 2015; पृ. 201

बनावटीपन से युक्त तथा उपदेश देने वाला भी था। हिंदी रंगमंच को अपने विकास के आरंभिक चरण में ही पारसी रंगमंच से सामना हुआ। जिसका प्रभाव यह रहा कि स्वतंत्रता से पूर्व का लगभग सम्पूर्ण हिंदी नाट्य–सृजन इसके प्रभाव से आक्रांत रहा। पारसी रंगमंच की भर्त्सना करने वाले स्वयं प्रसाद के नाटक एक भिन्न स्तर पर उससे विमुख न रह सके। इस विषय में नेमिचंद्र जैन के विचार उल्लेखनीय हैं, *''प्रसाद के नाटक एक भिन्न स्तर पर पारसी रंगमंच के युग की ही चरम उपलब्धि के सूचक हैं। प्रसाद के नाटक पारसी रंगमंच की बुनियाद पर ही हैं। उनका कार्य-व्यापार का विन्यास, दृश्य-संयोजन, रूपबंध, सब कुछ पारसी रंगमंच की रूढ़ियों और व्यवहारों से निर्धारित हुआ है। प्रसाद का महान योगदान इसमें है कि अपने नाटकों में उन्होंने एक भिन्न प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक चेतना का अन्वेषण किया, नाटक और रंगमंच दोनों को सर्जनात्मक स्तर प्रदान किया और सार्थक बनाया।''*[29]

देखा जाए तो हिंदी नाट्य-परम्परा का विकास 19 वीं शताब्दी के उतरार्द्ध में हुआ है। साहित्य के आलोचकों ने भारतेंदु–युग से हिंदी नाटक और रंगमंच का स्वरूप निर्धारित किया है। इससे पूर्व हिंदी का कोई रंगमंच नहीं था। *''भारतेंदु हिंदी के पहले नाटककार थे जिन्होंने न केवल नाट्य-रचना की अपितु अपने समकालीन पारसी रंगमंच के असाहित्यिक एवं अरुचिकर मनोरंजन के सस्ते साधन से विमुख कर साहित्यक, सुरुचिपूर्ण एवं नागरिक रंगमंच की ओर दर्शकों की रूचि को मोड़ने का प्रयास किया।''* [30] भारतेंदु के बाद लगभग चालीस सालों तक हिंदी साहित्यिक नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। बाद में प्रसाद युग और प्रसादोत्तर युग में हिंदी रंगमंच के विकास को एक दिशा देने का कार्य हुआ। इस दिशा में जयशंकर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि नाटककारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। वहीं

---

[29] जैन, नेमीचंद; 'हिंदी रंगमंच : परम्परा और प्रयोग के सम्बन्ध-सूत्रों का अन्वेषण'; नटरंग; अंक 5; 1966; पृ. 11

[30] बोरा, राजकमल; नारायण शर्मा (सं.); हिंदी नाटक और रंगमंच; पंचशील प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 1988; पृ. 151

दूसरी तरफ विभिन्न लोकनाट्यों के रूप क्षेत्रीयता के आधार पर विकसित हो रहे थे। नागरिक रंगमंच के नाम पर इप्टा, पृथ्वी थियेटर आदि इने-गिने प्रयास ही हमारे सामने थे।

पारसी थियेटर के मुकाबले इप्टा-रंगमंच विषय-वस्तु, रंगशिल्प और उद्देश्य- सभी दृष्टियों से एक ऐसा रंगमंच था जिसने जनता की आवाज को उठाया तथा लोककलारूपों को पुनर्जीवित और पुनर्स्थापित करने का काम भी किया। उस समय इप्टा से ख्वाजा अहमद अब्बास, पं. रविशंकर, विमल राय, बलराज साहनी, भीष्म साहनी, बलवंत गार्गी, दीना पाठक, मोहन सहगल, उत्पल दत्त, नेमिचंद्र जैन, शान्ता गाँधी, शबाना आजमी आदि चर्चित लोग जुड़े हुए थे।

आजादी के बाद हिंदी प्रदेश में नए रंग-आन्दोलन ने हिंदी रंगमंच को समृद्ध करने के साथ ही एक नई दिशा भी दी। खास तौर पर छठे दशक के बाद रंगमंच की प्रयोगशीलता नया रूप धारण करने लगी। इस दिशा में जगदीश चंद्र माथुर, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, शंकर शेष, लक्ष्मीनारायण लाल, हबीब तनवीर, सुरेन्द्र वर्मा, मणि मधुकर आदि के साथ-साथ हिंदीतर भाषी विजय तेंदुलकर, बादल सरकार, गिरीश कर्नाड, वसन्त कानेटकर, आद्य रंगाचार्य, उत्पल दत्त आदि की सराहनीय भूमिका रही है। इन्होंने नाटक के कथ्य और शिल्प परक अनेक नवीन प्रयोग किए।

नाटक में रंग शिल्प को समृद्ध बनाने के उद्देश्य से संस्कृत, लोकनाट्य और पश्चिमी रंगशैली के सार्थक रंगतत्त्वों को अंगीकार करने के प्रयास हुए। नाटक और रंगमंच के प्रति इन नाटककारों के नूतन कला बोध ने समकालीन हिंदी रंग निर्देशकों का मार्ग भी प्रशस्त किया। लेकिन आज हिंदी के रंगमंच को दोहरी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। एक तरफ तो धारावाहिकों और मीडिया की चुनौती है तो दूसरी तरफ प्रस्तुति के खर्चे में भी अत्यधिक वृद्धि हुई है। आज आवश्यकता इस बात की है कि कैसे रंगमंच इन चुनौतियों से सामना कर सकेगा, इस

बात का समाधान ढूंढना होगा।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि रंगमंच एक ऐसी सर्जनात्मक, कलात्मक, प्रदर्शनकारी कला है जो जीवन के विविध अनुभवों को रूपायित करते हुए मनोरंजन करने के साथ-साथ जन-मानस का परिष्कार भी करती है। यह एक सामूहिक तथा संश्लिष्ट कला है। भारत में रंगमंच की परम्परा संस्कृत काल से ही विद्यमान है। यह हमारे लोक जीवन की धूरी पर लगातार घूमती आ रही है।

आज का रंगमंच भले ही तकनीक से पूर्ण है लेकिन उसके सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। आज रंगमंच का तात्पर्य केवल नाट्य लेख के मंचन के स्थान तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके व्यापक स्वरूप के अंतर्गत नाटक, निर्देशक, अभिनेता, रंगदीपन, संगीत, वेश-भूषा, दर्शक आदि को समाहित किया गया है। ये सारे तत्त्व मिलकर ही रंगमंच को सार्थक करते हैं और साथ ही अपनी स्वतंत्र अनुभूति भी कराते रहते हैं।

2.2 समकालीन हिंदी रंगमंच : विविध प्रयोग

'समकालीन' का सामान्य अर्थ है एक ही समय में रहने वाला या समान युग में रहनेवाला। जैसे कि एक ही समय के व्यक्तियों या रचनाकारों को समकालीन कहा जाता है, वैसे ही समय के बोध को व्यक्त करने वाली कृति भी समकालीन कही जाती है। वही रचनाकार समकालीन कहलाता है जो अपने समाज के यथार्थ को व्यक्त करे। अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं का समग्र चित्रण ही रचनाकार का समकालीन बोध है। देखा जाए तो समकालीनता में वर्तमान बोध के साथ ही अतीत और भविष्य का विवेकसम्मत बोध होता है। मनुष्य के चिंतन एवं कर्म से जुड़ा हुआ यह वह बोध है जो आधुनिक मनुष्य के जीवन, उसकी दृष्टि, परिवेश तथा यथार्थ से संबंधित है। डॉ. सुखबीर सिंह लिखते हैं,

"समकालीनता एक व्यापक एवं बहुआयामी शब्द है और आधुनिकता का आधार तत्व है। जो समकालीन है, वह आधुनिक भी हो, यह आवश्यक नहीं है किन्तु जो आधुनिक चेतना से संवलित दृष्टि है, वह निश्चित रूप से समकालीन भी होती है।"[31]

'समकालीन' शब्द इस बात का सूचक है कि प्रस्तुत कला समसामयिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई है। यह युग-विशेष के सन्दर्भों के अनुसार बदलती हुई चेतना या मानसिकता की भी द्योतक है। स्थायी जीवन-मूल्यों की उपस्थिति के कारण यह कला काल की सीमाओं को भी लाँघ जाती है। समकालीनता की इस परिभाषा के आधार पर समकालीन हिंदी रंगमंच से हमारा तात्पर्य उस रंगमंचीय क्रियाकलाप से है जहाँ से समसामयिक सन्दर्भों से जुड़ने के साथ-साथ रंगमंच में एक नयी रंग-चेतना का, रंग-प्रस्तुतीकरण में एक नयी दृष्टि का आरंभ होता दिखायी देता है। यह बात ठीक है कि कोई भी प्रवृत्ति केवल एक दिन में ही निर्मित नहीं होती। उसके बनने में बीते युग की परिस्थितियों का भी हाथ रहता है तभी वह अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त करती है। हिंदी का समकालीन रंगमंच भी इसका अपवाद नहीं है।

सामाजिक दायित्व के प्रति कलात्मक सजगता, निर्देशक का महत्त्वपूर्ण होना, सर्जनात्मक रंग-दृष्टि, दर्शक का बदलता स्वरूप, तकनीकी विस्तार के अंतर्गत पर्दे का खत्म होना, प्रकाश व्यवस्था, रंग-संगीत के बदलते आयाम, यंत्र चालित मंच, संचार माध्यमों का प्रभाव जैसे कारक तत्त्वों के आधार पर हम समकालीन हिंदी रंगमंच का विकास तीन चरणों में देख सकते हैं- प्रथम चरण (1942- 1959), दूसरा चरण (1959- 1982) और तीसरा चरण (1982- अब तक)। 1942 से 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक आते–आते हिंदी रंगमंच पर युगीन सन्दर्भों से जुड़ते हुए कई प्रयोग हुए हैं। इस प्रक्रिया में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक

---

[31] मिश्र, डॉ. रामदरश (सं); समकालीन साहित्य चिंतन; प्रभात प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1986; पृ. 74

परिस्थितियों, पारम्परिक तथा पश्चिमी विचारधाराओं के मिले-जुले प्रभावों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। रंगमंच पर हुए इन प्रयोगों ने भारतीय रंगमंच को एक नई रंग भाषा प्रदान की तथा विश्व पटल पर भारतीय रंगमंच को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाई।

देखा जाए तो कला के विविध रूपों के परिप्रेक्ष्य में 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार आज की वैज्ञानिक चिंतन-पद्धति की देन है। इस शब्द का सामान्य लोक प्रचलित अर्थ तो इस्तेमाल या व्यवहार ही है, लेकिन वैज्ञानिक संदर्भ में यह व्यवहार परीक्षण प्रक्रिया बन जाता है। क्योंकि विज्ञान का तो हर सत्य परीक्षण द्वारा ही सिद्ध किया जाता है। इस प्रयोग शब्द की अर्थ-क्षमता इतनी अधिक है कि जीवन के लगभग सभी पक्षों के संदर्भ में यह शब्द अर्थ देता है। साहित्य के संदर्भ में यह शब्द सामान्यतः अंग्रेजी के एक्सपेरिमेंट का हिंदी पर्याय है। साहित्य में तो नवीन प्रयोग होते आए हैं। *''वास्तव में प्रयोग वह साधन है जिसके द्वारा लेखक अपने पूर्व की समस्त ग्राह्य परम्परा को स्वीकार करता हुआ भी पूर्ववर्ती लेखन से अपने को भिन्न रखता है तथा उसमें नवीनता का पुट देता है।''*[32]

डॉ. सुषमा बेदी के अनुसार इसका अर्थ है, *''जहाँ कवि या कलाकार परम्परागत सम्प्रेषण-पद्धतियों को तोड़कर नयी भावभूमि और अभिव्यक्ति के नये माध्यमों की खोज करता है और नाट्य के संदर्भ में भी प्रयोग का यही अर्थ अभीष्ट है।''*[33] अतः नाटक और रंगमंच के संदर्भ में प्रयोग शब्द का तात्पर्य है- परम्परा का संस्कार करते हुए 'नये' की खोज करना। परम्परा का अन्वेषण करते हुए ही प्रयोग अस्तित्व में आता है और फिर वह प्रयोग प्रवृत्ति बन कर परम्परा का अंग बन जाता है। परम्परा के जड़ और गतिशील दोनों रूपों से प्रयोग का सम्बन्ध है। कुल मिलाकर नाट्य प्रयोग परम्परा की गतिशीलता के भीतर से ही अपना नया आकार खोजता है।

---

[32] काला, मीनाक्षी; प्रयोगधर्मी नाटककार जगदीशचंद्र माथुर; शारदा प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1983; पृ. 9

[33] बेदी, डॉ. सुषमा; हिंदी नाट्य: प्रयोग के संदर्भ में; पराग प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1984; पृ. 2

यह सब जानते हैं कि आधुनिक काल में पारसी थियेटर की व्यावसायिक दृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदी में अपना सुरुचिपूर्ण और गंभीर अव्यवसायिक रंगमंच आरम्भ करने में भारतेंदु हरिश्चद्र, पंडित माधव प्रसाद शुक्ल के प्रतिभाशाली प्रयासों के साथ-साथ 'पृथ्वी थियेटर' और 'इप्टा' का योगदान रहा है। इप्टा आन्दोलन ने रंग-कला की भारतीय दुनिया में एक नई क्रांति की। *"प्रान्तीय भाषाओं के नाटक इस समय चौखटे में जड़े मंच की नकल कर रहे थे। मंच और दर्शक के बीच पद-प्रकाश का प्रबंध होता था। यवनिका रंगशाला को दो भागों में बाँटती थी- मंच और दर्शक। पिपुल्ज थियेटर इस प्रकार की मंच-व्यवस्था के विरुद्ध खड़ा हुआ। इसने लोकनाटकों के रूप पुनर्जीवित किए और इनमें नए विषय अवतरित किए। मंच और दर्शक की खाई को पाट दिया। व्यावसायिक नाटक कम्पनियों ने लोकनाटकों के कथाकार, सूत्रधार, गीतकार और विदूषक को प्राचीनकाल के अवशेष समझकर त्याग दिया था। पिपुल्ज थियेटर इन्हें वापस लाया और नए विषयों पर लिखे नाटकों में उसके नई शक्ति और नया रंग भर इन्हें मंच पर प्रस्तुत किया।"*[34]

भारतीय जन-नाट्य संघ ने 1942 से 1960 के भीतर सैकड़ों नाटकों एवं एकांकियों का प्रदर्शन किया था। 'ये किसका खून है', 'आज का सवाल', 'आधा सेर चावल', 'घायल पंजाब', 'कानपुर के हत्यारे', 'हिमालय', 'मैं कौन हूँ', 'जादू की कुर्सी', 'मशाल', 'बेकारी', 'किसान', 'तूफान से पहले' आदि नाटक बार-बार मंचित हुए थे। दमन के वातावरण में भी गाँवों, कस्बों और शहरों में इप्टा के नाट्य-प्रदर्शन होते रहे।

इप्टा के साथ-साथ पृथ्वीराज कपूर के 'पृथ्वी थियेटर' ने भी (जिसकी स्थापना मुंबई में 15 जनवरी 1944 को हुई) हिंदी रंगमंच को गति देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस संस्था ने हिंदी रंगमंच को व्यावसायिक रूप देने का प्रयास किया। लेकिन इसकी व्यावसायिकता और पारसी रंगमंच की व्यावसायिकता में अंतर था। पारसी रंगमंच के लिए पैसा ही मुख्य था। लेकिन

---

[34] गार्गी, बलवंत; रंगमंच; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1968; पृ. 207-208

पृथ्वी थियेटर का उद्देश्य काफी स्वस्थ था। इसने *''जनता को सात्विक मनोरंजन प्रदान कर लोगों के मन में नाट्यकला के प्रति रूचि बढ़ाने एवं व्यवसाय के साथ-साथ, पारसी रंग-शैली से थोड़ा परे हटकर समाज के आदर्श और यथार्थ की महत्त्व दिया।''*[35] डॉ. अज्ञात लिखते हैं, *''इसके पीछे था-एक मिशन, एक आदर्श, एक स्वप्न, जिसकी पूर्ति हिंदी रंगमंच की स्थापना के लिए अपेक्षित थी।... 'दीवार', 'पठान', 'गद्दार', 'आहुति', आदि नाटक नवीन विषयों, नवीन रंग-शिल्प को लेकर लिखे गये थे, जो उसी युग के एक नवीन प्रयोग थे-किन्तु भा.ज.ना. संघ के खुले एवं प्रतीकवादी मंच-शैली के नहीं, प्राचीन चित्रफ्रेम वाले रंगमंच- शैली के।''*[36]

इस प्रकार समकालीन हिंदी रंगमंच के इस प्रारंभिक दौर में पहली बार रंग-प्रस्तुतीकारण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बदलाव देखने को मिला। आगे चलकर साठ-सत्तर के दशकों में हिंदी रंगमंच का जो प्रौढ़ स्वरूप निखरकर सामने आया उसकी नींव यही पड़ी थी। भारतीय जन नाट्य संघ, पृथ्वी थियेटर के साथ कई गैर-सरकारी तथा सरकारी नाट्य-संस्थाओं ने हिंदी रंगमंच को गति देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। हिंदी रंगमंच पर नया रंगान्दोलन या रंगमंचीय प्रयोगशीलता के आरम्भ होने से पहले इलाहबाद, कानपुर, काशी तथा लखनऊ जैसे नगरों और कोलकत्ता, दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरों में रंगकर्म न्यूनाधिक रूप में जीवित था। परन्तु इस समूचे रंगकार्य पर भी कहीं न कहीं पारसी थियेटर का भी प्रभाव था। जिसका परिमाण यह हुआ कि रंगकार्य से संबंधित लगभग सभी संस्थाओं का धीरे-धीरे विघटन हो गया। बांग्ला, मराठी, कन्नड़ इत्यादि प्रादेशिक भाषाओं के समृद्ध रंगमंच के समक्ष हिंदी रंगमंच की स्थिति नगण्य-सी ही थी।

आजाद भारत में जब कलात्मक गतिविधियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आंका जाने लगा तो यह पाया गया कि हमारे पास रंगमंच की ऐसी कोई भी नियमित परम्परा नहीं थी जिसे हिंदी

---

[35] वशिष्ठ, डॉ. सुरेश; हिंदी नाटक और रंगमंच; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1995; पृ. 58-59

[36] डॉ. अज्ञात; भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास; पुस्तक संस्थान, कानपुर; संस्करण 1965; पृ. 428

रंगमंच का नाम दिया जा सके। यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अमरीकी रंगमंच की। जिस प्रकार अमरीकी रंगमंच आरम्भ में यूरोप की पतनशील, तथाकथित यथार्थवादी लेकिन मूलतः मेलोड्रामेटिक रंगमंच की नकल भर था, वैसे ही हमारे यहाँ भी एक ओर पाश्चात्त्य विघटनशील विक्टोरियन नाट्य-परम्परा का हिंदी संस्करण पारसी रंगमंच था और दूसरी ओर शा, इब्सन के नाटकों का आदर्श लिये लेकिन केवल नाम के तौर पर ही यथार्थवादी रंगमंच था या पाठ्य नाटक थे।[37] इसीलिए भारत में नये और निजी रंगमंच की खोज के लिए प्रयोग का रास्ता अपनाया गया।

इस नए प्रयोगात्मक रंगान्दोलन में सरकार द्वारा किये गए प्रयासों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 1953 में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी की तथा इसके बाद राज्यों में प्रादेशिक आकादमियों की स्थापना की गई। साथ ही 1959 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय कि स्थापना भी समकालीन हिंदी नाट्य और रंगमंच की यात्रा में महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि नाटक के पाठक के स्थान पर दर्शक की संज्ञा महत्त्वपूर्ण हो गयी। समुचे भारतीय रंगमंच के समक्ष हिंदी रंगमंच ने अपने को खड़ा किया। *''वस्तुतः छठा दशक हिंदी नाटक और रंगमंच की सक्रियता, विस्तार और नवजीवन में अपनी जड़ें रोपने का काल कहा जा सकता है।''*[38] वस्तुतः नाटक ही वह नींव है जिस पर रंगमंच रुपी भवन खड़ा किया जाता है। अनेक मौलिक और आधुनिक प्रयोगों के साथ नाटक को सशक्त जामा पहनने में अनेक रंगकर्मियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है जिसमें हबीब तनवीर, ब.व. कारंत, मोहन महर्षि, बंसी कौल, एम.के. रैना, भानु भारती राजेंद्रनाथ, रंजीत कपूर, देवेन्द्रराज अंकुर, रतन थियम आदि के नाम प्रमुख हैं।

समकालीन हिंदी नाटक जीवन से जुड़ा हुआ है। कथ्य, शिल्प, शैली के नवीनतम प्रयोगों

---

37 बेदी, डॉ. सुषमा; हिंदी नाट्य: प्रयोग के संदर्भ में; प्राग प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1984; पृ. 6

38 किशोर, ब्रजराज; हिंदी नाटक और रंगमंच: समकालीन परिदृश्य; जनप्रिय प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1980. पृ. 160

के साथ-साथ, समकालीन बोध, समकालीन हिंदी रंगमंच की पहचान है। कथ्य (विषय-वस्तु) चाहे ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक या राजनैतिक हो, जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसे नाटककार ने छुआ न हो। व्यष्टिगत चेतना के साथ-साथ समष्टिगत चेतना को भी महत्त्व देते हुए हमारे नाटककारों, निर्देशकों ने व्यक्ति तथा समाज से जुड़ी हुई विभिन्न समस्याओं को अपने नाटकों का विषय बनाया है। समकालीन हिंदी रंगमंच की विशेषता रही है कि यह परिवेशगत प्रतिबद्धता और रंगमंचीय प्रतिबद्धता दोंनो को साथ लिए नाट्य-सृजन कर रहा है।

समकालीन हिंदी रंगमंच प्रयोगशीलता का ऐसा रंगमंच है, जिसमें विरासत में मिली रंग-परम्पराओं के आधार पर नये नाट्य प्रयोग किये गए। इस प्रयोगशीलता के तहत ही संस्कृत नाटकों को हिंदी रंगमंच पर पुनः खेला गया। इस रंगमंच की नाट्य-रूढ़ियों का प्रयोग रंगकर्मी नवीन सन्दर्भों में करने लगे। संस्कृत के नाटकों में एक अत्यन्त उच्च सृजनात्मक स्तर की नाट्य-कृतियों का भंडार है, केवल साहित्य की ही दृष्टि से नहीं, रंगमंच पर प्रस्तुत करने के उपयुक्त आलेखों की दृष्टि से भी। इस संदर्भ में कुछ नाटकों ने हिंदी रंगमंच पर विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की जिसमें 'अभिज्ञान शाकुंतल', 'मृच्छकटिकम', 'स्वप्नवासवदता', 'प्रतिमा', 'उत्तररामचरित', 'रत्नावली','माध्यम व्यायोग','उरुभंगम' आदि प्रमुख हैं। *''ये नाटक विषयगत विविधता और रोचकता के लिए, जीवन के सूक्ष्म अवलोकन के लिए, वातावरण की विशिष्टता के लिए, और शैलीगत नवीनता के लिए, बड़ा व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत करते हैं। उनमें वह काव्य-तत्व पर्याप्त मात्रा में है जो नाटक को नीरसता से निकालकर जीवन की गहराई में स्थापित करता है।...रंगसज्जा की दृष्टि से भी उनका परिवेश अत्यंत ही सूक्ष्म कलाबोध और सुरुचिपूर्ण दृश्यात्मक कल्पनाशीलता की अपेक्षा रखता है।''*[39]

[39] जैन, नेमिचंद्र; रंगदर्शन; राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 1996; पृ. 93

हिंदी रंगमंच और नाट्य-लेखन जब पश्चिमी रंग-प्रयोगों और शैलियों से ऊब गया तो हिंदी रंगमंच अपनी मिट्टी और जनसमूह से जुड़ने की बेचैनी में लेखन और रंगकर्म दोनों लोक-नाट्य शैली के प्रयोगों की ओर मुड़े। फलस्वरूप कई सशक्त नाटक लोकनाट्य शैलियों में लिखे और खेले गए। सन 1975-77 के आसपास का समय इस दृष्टि से बेहद रचनात्मक कहा जा सकता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', 'अब गरीबी हटाओ', मणि मधुकर के 'रसगंधर्व', 'दुलारीबाई', 'खेला पोलमपुर', लक्ष्मीनारायण लाल का 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'नरसिंह कथा'शंकर शेष का पोस्टर, आदि उल्लेखनीय हैं। देश में कोने-कोने में इन नाटकों के नौटंकी, राजस्थानी ख्याल, भवई, नाचा, काबुकी, यक्षगान, तमाशा, आदि लोकनाट्य- रूपों में सैकड़ों मंचन हुए। इनका उपयोग नाट्य- प्रशिक्षण-शिविरों के लिए भी हुआ और बड़े-बड़े समारोहों के लिए भी। इन सभी प्रयोगों के द्वारा नाटक और रंगमंच दोनों ही समृद्ध हुए। *''राष्ट्रीय फलक पर हबीब तनवीर अपने मूल लोक-कलाकारों द्वारा छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य-रूपों का आधुनिक संदर्भ में सर्जनात्मक उपयोग 'चरनदास चोर' तथा अन्य कृतियों द्वारा कर रहे थे।''*[40]

इसी दौर में कारंत ने दक्षिण की यक्षगान शैली के बहुत ही सार्थक प्रयोग 'अंधेर नगरी' और 'बरनम वन' में किये। उनकी 'हयवदन' प्रस्तुति इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। बंसी कौल ने माच लोक-शैली, दक्षिणी नाट्य- शैलियों के प्रयोग भी किये। रतन थियम मणिपुरी, असमी लोकनाट्य-शैलियों के और आंचलिक बोली के धनी और सृजनशील निर्देशक और अभिनेता के रूप में उभरे।

समकालीन हिंदी रंगमंच की विरासत की चर्चा करते हुए पाश्चात्य रंग-परम्परा की उपेक्षा नहीं की जा सकती। पाश्चात्य रंग-जगत की विविध रंग-परम्पराओं ने आयास या अनायास रूप से

---

[40] रस्तोगी, डॉ. गिरीश; समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; पृ. 24

हिंदी रंगमंच के विकास के लगभग सभी सोपानों को प्रेरित और प्रभावित किया है। इब्सन का 'गुडिया घर', मौलियर का 'बिच्छू', बैकेट का 'गोदो के इंतजार में', ब्रेख्त का 'खड़िया का घेरा', शेक्सपीयर का 'मेकबेथ' आदि इन सभी नाटकों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हिंदीरंगमंच को प्रभावित किया। डॉ. गिरीश रस्तोगी लिखती हैं, *''नवीनता और प्रयोगात्मकता के भ्रम में नाट्यलेखन भी और रंगकर्म भी पश्चिमी रंग-शैलियों और विचारों से शुरू हुआ। शेक्सपियर, ब्रेख्त, इब्सन, चेखव, मोलियर आदि सब पर बहुत तेजी से ध्यान गया। ग्रोटोव्स्की और स्तानिस्लाव्स्की की अभिनय शैलियों और उनका प्रशिक्षण ही मुख्य हो गया- ब्रेख्तियन मंच शैली के प्रशिक्षण और हिंदी नाट्य प्रस्तुतियों में उस शैली के प्रयोगों की प्राथमिकता आरम्भ हो गयी।''*[41] इस काल में पाश्चात्य नाटककारों के नाटकों के रूपांतरों-अनुवादों को भी रंगमंच पर खेला गया, जिन्होंने हिंदी रंगमंच को काव्यात्मक-यथार्थवादी शैली से लेकर विसंगतवादी शैली तक के अनेक रूपों से परिचय कराया।

इस प्रकार ये तीनों रंग-परम्पराएं (संस्कृत, लोकनाट्य, पाश्चात्य) हिंदी रंगमंच के लिए एक सम्पन्न दाय और स्रोत सिद्ध होती हैं। हिंदी का उत्साही रंगकर्मी और नाटककार आज भी इन तीनों परम्पराओं का मंथन करते हुए, उन्हें नया रंग-संस्कार देता हुआ, वस्तु और शिल्प दोनों के स्तर पर अनेक नवीन प्रयोग करते हुए महत्त्वपूर्ण रंग-उपलब्धियों की तलाश कर रहा है। प्रस्तुति के स्तर पर भी नाटक के सर्जनात्मक रूप एवं अर्थ की व्याख्या करने और इसे दर्शकों तक सम्प्रेक्षित करने के लिए भी अनेक रूढ़ियों एवं व्यवहारों का कल्पनाशील, अयथार्थवादी उपयोग करते हुए रंगकर्मियों ने नवीन अंतर्दृष्टि का परिचय दिया। फलस्वरूप नाटक को बंद प्रेक्षागृह से निकाल कर मुक्ताकाशी रंगमंच, पारम्परिक रंग शैली, काव्यात्मक धरातल, रीतिबद्ध शैली का व्यंजनापूर्ण प्रयोग करते हुए नवीन धरातलों और रंग शैलियों की गहराई से तलाश की गई।

---

[41] रस्तोगी, डॉ. गिरीश; समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी; संस्करण 2000; पृ. 17-18

ब्रेख्त की महाकाव्यात्मक शैली, ग्रोतोव्स्की के मनोशारीरिक रंगमंच इत्यादि से प्रेरणा लेते हुए प्रदर्शन के स्तर पर नए आयामों का अन्वेषण किया गया। प्रदर्शन की नवीन संभावनाओं की तलाश में रंग-सज्जा की सादगी एवं प्रतीकात्मकता, प्रकाश का कल्पनाशील प्रयोग, गतियों का सृजनात्मक प्रयोग, कोरस- सूत्रधार-वाचक का प्रयोग, संगीत का सृजनशील प्रयोग, मुखौटों-कठपुतलियों इत्यादि के प्रयोग तथा प्रदर्शन में दर्शकों की भी हिस्सेदारी आदि के स्तर पर अनेक मौलिक प्रयोग किये गए। मनोशारीरिक रंगमंच के अंतर्गत मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में', ब्रेख्त के नाटक 'खड़िया का घेरा', गिरीश कर्नाड के 'तुगलक', बादल सरकार के 'बाकी इतिहास' की प्रस्तुतियां की गयीं जिनमें शरीर से बनने वाले दृश्य-बिम्बों और उनसे निकलने वाली ध्वनियों द्वारा नयी रंगमंचीय भाषा की तलाश की गई। इस प्रयोग ने शरीर के द्वारा बनने वाली भाषा की महता को सिद्ध कर दिया।

समकालीन हिंदी रंगमंच के अंतर्गत नुक्कड़ नाटकों का भी नए संदर्भों में प्रयोग किया गया। *''शुरूआती दौर में नुक्कड़ नाटकों का दौर मुख्यतः राजनीतिक ही रहा। आज़ादी के बाद जनता के टूटते भ्रमों और सपनों के संघर्षों को जन-आंदोलनों से जोड़ने में नुक्कड़ नाटकों ने सक्रिय और निर्णायक भूमिका निभाई है। सत्ता के साथ संघर्ष की दास्तान अपने आप में कला की सार्थक भूमिका का दस्तावेज है।''*[42] देश में इस आन्दोलन को जनता तक पहुँचाने में इप्टा से लेकर गुरुशरण सिंह, हबीब तनवीर, उत्पल दत्त, बदल सरकार, सफ़दर हाशमी, शम्सुल इस्माल समेत कई अभिनेताओं, नाटककारों का योगदान है। सफदर हाश्मी द्वारा स्थापित 'जन नाट्य मंच' और 'अस्मिता थियेटर ग्रुप' ने नुक्कड़ नाटक द्वारा रंगमंच को जन चेतना का सशक्त आधार बनाने का प्रयास किया है। भ्रष्टाचार, सामाजिक भेदभाव, छेड़खानी, बाल मजदूरी, पर्यावरण आदि जैसे मुद्दे इसके विषय बनने लगे हैं। आज धीरे-धीरे इस प्रयोग ने एक आन्दोलन का ही रूप ले लिया।

---

[42] गौड़, अरविन्द; नुक्कड़ पर दस्तक; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2019; पृ. भूमिका से

समकालीन हिंदी रंगमंच की इस प्रयोगशीलता के अंतर्गत उत्साही रंगकर्मियों का ध्यान नाटकेतर विधाओं के मंचन की ओर भी गया। साहित्य की अन्य विधाओं को भी इस क्षेत्र में प्रतिष्ठा मिली। हिंदी के रंगमंच पर उपन्यास, कहानी, कविता, व्यंग्य रचनाएँ, डायरी, पत्र इत्यादि साहित्यिक विधाओं को रंगमंच पर उतारने के लिए सफल प्रयास हुए हैं। कविता की सार्वजनिक प्रस्तुति हमारी परम्परा में शामिल है। नाट्यकला के उद्भव के पश्चात् गद्य नाटकों के विकास से पूर्व काव्य नाटक ही मंच पर प्रस्तुत किये जाते थे। कविता का नाट्य रूपान्तर 'काव्येषु नाटकं रम्यम' को सार्थक कर रहा है। आज समकालीन रंगमंच पर कविता की वापसी हुई है। नाट्य निर्देशकों ने समकालीन कविता के मंचन में अनंत संभावनाओं को देखते हुए ही इसके मंचन का सिलसिला प्रारम्भ किया।

कविताओं के संदर्भ में सर्वप्रथम प्रयास मुक्तिबोध की कविताओं को लेकर हुए। उनकी कविताओं की एक विशेषता यह है कि उसमें दृश्यात्मकता प्रमुख है जो किसी भी निर्देशक के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बिंदु है। प्रसिद्ध रंग निर्देशक अलखनंदन, अरुण पाण्डेय ने मुक्तिबोध की कविताओं को दृश्य रूप में मंच पर उपस्थित किया। मुक्तिबोध के अलावा कई अन्य कवि भी निर्देशकों के प्रिय रहे। श्रीकांत वर्मा के 'मगध', मैथिलीशरण गुप्त के 'नहुष', 'भारत-भारती', 'साकेत', 'जयभारत', 'द्वापर', 'यशोधरा', राजकमल चौधरी के'मुक्ति प्रसंग', रघुवीर सहाय के 'औरत का देश', धूमिल की 'मोचीराम', सक्सेना की 'कुआनो नदी', धर्मवीर भारती की 'मुनादी' और 'कनुप्रिया' आदि की सफल प्रस्तुतियां इसके उदाहरण हैं। श्रीकांत वर्मा, ज्ञानेंद्रपति, गुलज़ार, रघुवीर सहाय, संतोष चौबे, लीलाधर जगूड़ी विनोद दास, शमशेर बहादुर, केदारनाथ अग्रवाल, आदि की कविताओं का भी मंचन किया गया।

प्रयोग के स्तर पर हिंदी रंगमंच में 'कहानी का रंगमंच' सर्वाधिक चर्चित और प्रसिद्ध रहा

है। नाटक और कहानी दोनों में समानतायें होते हुए भी कुछ भिन्नताएं भी हैं। हर कहानी में नाटक है और हर नाटक में कहानी। कहानी को पढ़ते समय उसकी चाक्षुष अनुभूति मन में बनती चलती है। इसी चाक्षुष अनुभूति को मंच पर साकार करने का स्तुत्य प्रयास देवेन्द्र राज अंकुर ने किया और उनमें वे सफल भी रहे। इसकी शुरुआत 1975 में निर्मल वर्मा की तीन प्रसिद्ध कहानियों- 'धूप का एक टुकड़ा', 'डेढ़ इंच ऊपर', और 'वीकएंड' को 'तीन एकांत' नाम से मंचन करने से हुई।[43] तब से लेकर अब तक कई कहानियां इस प्रयोग से गुजर चुकी हैं तथा इस प्रयोग की सार्थकता को घोषित भी करती हैं। अंकुर ने मोहन राकेश, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, प्रसाद, प्रेमचंद आदि की कहानियों को भी मंचित किया है।

कहानी के नाट्य रूपांतरण से हिन्दी साहित्य और रंगमंच को गतिशील एवं समृद्ध बनाने में योगदान दिया है। हनुयादव द्वारा रूपांतरित 'पंचलाइट' (रेणु), 'अरथी' (श्रीकांत), 'जीव खो गया' (परसाई के 'भोलाराम का जीव' का), हबीब तनवीर द्वारा रूपांतरित 'मोटेराम का सत्याग्रह' (प्रेमचंद की 'सत्याग्रह' का), 'उसकी रोटी' (मोहन राकेश), अरुण कुकेरजा द्वारा निर्देशित पंचपरमेश्वर' (प्रेमचंद), 'उसने कहा था'(गुलेरी), 'उसकी माँ' (उग्र), आकाशदीप और पुरस्कार (प्रसाद) प्रसन्ना के तिरीछ (उदय प्रकाश) आदि उत्तम उदाहरण हैं। महिला रचनाकारों में गिरीश रस्तोगी, चित्र मुद्गल, मृदुला गर्ग, उषा गांगुली आदि नाम आता है।[44]

कहानी के रंगमंच के साथ ही उपन्यासों के नाट्य रूपांतरण भी मंच पर हुए हैं। कहानी की अपेक्षा उपन्यास का नाट्य रूपांतरण करने में चुनौतियाँ अधिक होती हैं। उपन्यासों का नाट्य रूपांतरण करने का सफल प्रयास भी अंकुर द्वारा किया गया। उन्होंने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा कुल मिलकर 12 उपन्यासों का नाट्य रूपांतरण किया। 'महाभोज', 'मित्रों मरजानी', 'डार से

---

[43] कुमारी वी.एल, डॉ. रीना; हिंदी नाटक और रंगमंच; विद्या प्रकाशन, कानपुर; संस्करण 2019; पृ. 156

[44] वही, पृ. 156

बिछुड़ी', 'अपना मोर्चा' (काशीनाथ सिंह), 'अनारो' (मंजुल भगत), 'अपने अपने अजनबी', 'कसप' (मनोहर श्याम जोशी) आदि उदाहरण हैं। अंकुर के अतिरिक्त इस प्रकार के प्रयास रंजीत कपूर का 'मुख्यमंत्री' (चाणक्य सेन), 'कुरु-कुरु स्वाहा' (मनोहर श्याम जोशी), हनुयादव का 'गली आगे मुड़ती है' (शिवप्रसाद सिंह), रामकुमार भ्रमर का 'तमाशा' वज्रमोहन शाह का 'मित्रो मरजानी', नरेंद्र आचार्य का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (धर्मवीर भारती), एम.के रैना (मैला अंचल), 'कभी न छोड़े खेत') आदि प्रसिद्ध रहे।

महिला नाट्य रूपांतरकार/ निर्देशिकाओं में प्रतिभा अग्रवाल की भूमिका सराहनीय रही। उनके द्वारा प्रस्तुत होरी (प्रेमचंद, गोदन), नगर वधू (अमृतलाल नागर, सुहाग के नुपूर), वंशवृक्ष (कन्नड़ उपन्यास) काफी प्रसिद्ध रहे। गिरीश रस्तोगी ने रंगनाथ की वापसी (राग दरबारी) तथा बाणभट्ट की आत्मकथा (हजारी प्रसाद दिवेदी), रंगनाथ की वापसी- रागदरबारी का, प्रभा खेतान के छिन्नमस्ता' का नाट्यान्तरण प्रस्तुत किया। इसके अतिरिक्त महाश्वेता देवी का 'हजार चौरासी की माँ', कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', मन्नू भंडारी के 'महाभोज' मृणाल पाण्डेय (काजर की कोठरी,- देवकीनंदन खत्री) जैसे- उपन्यासों की नाट्य रूपांतरित प्रस्तुतियां भी उल्लेखनीय रहीं। मंच पर स्वरूप ग्रहण करके ये कृतियाँ आधिकाधिक लोगों तक पहुंचीं।

कुल मिलकर कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी रंगमंच सामाजिक दायित्व के प्रति सजगता, कलात्मकता का पक्षधर है। हिंदी रंगमंच ने युगीन संदर्भों से जुड़ते हुए अपने स्वरूप को आकर दिया है जिसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, साहित्यिक परिस्थितियों, पारम्परिक तथा पश्चिमी विचारधाराओं का प्रभाव भी रहा। आज का नाटककार मंचीय पक्ष को ध्यान में रखकर लिखने लगा है। विज्ञान और तकनीक के विकास ने भी निश्चित रूप से रंगमंच के स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। सामाजिक दायित्व के प्रति कलात्मक सजगता, निर्देशक

का महत्त्वपूर्ण होना, दर्शक का बदलता स्वरूप, पर्दे का खत्म होना, सर्जनात्मक रंग-दीपन, रंग-संगीत के बदलते आयाम, यंत्र-चालित मंच आदि समकालीन हिंदी रंगमंच के कारक तत्व हैं।

समकालीन रंगमंच के इस प्रयोगात्मक रंगान्दोलन में हिंदी के अतिरिक्त अनेक देशी-विदेशी नाटकों के अनुवाद, उपन्यास, कविता, कहानी जैसी मंचेतर विधाओं के नाट्य रूपांतरण कर ज्यों की त्यों प्रस्तुति एवं मंचन भी हिंदी रंगमंच के स्वरूप को नया आयाम प्रदान करता है। इन सबके मूल में प्रयोगशील प्रतिभा की बेचैनी है। आज नाट्य कला को परखने और उसके मूल्यांकन में रचनात्मक दृष्टि एवं लोक-दृष्टि का सामंजस्य भी जरूरी है। निश्चित रूप से इन नए प्रयोगों के द्वारा हिंदी का समकालीन रंगमंच समृद्ध हुआ है।

2.3 समकालीन रंग परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर

हिंदी के समकालीन रंगमंच ने अपनी विकास-यात्रा के दौरान अनेक उपलब्धि प्राप्त की है। आधुनिक जीवन की जटिलताओं को विभिन्न रचनात्मक तरीके से पेश करते हुए समकालीन हिंदी रंगमंच में निर्देशक एक महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में उभरकर आया है। उसकी सर्जनात्मक रंग दृष्टि के परिणाम स्वरूप ही कहानी, उपन्यास, कविता जैसी साहित्यिक विधाओं के मंचन के प्रयोग हुए। नुक्कड़ नाटकों के साथ-साथ बाल रंगमंच की सक्रियता बढ़ी। इसने पश्चिम के देशों से नाट्य-परम्पराओं एवं नाट्य-चिंतन से प्रभाव ग्रहण किया। साथ ही आधुनिक जीवन की जटिलताओं, विसंगतियों, समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए नाट्य लेखन तथा रंग-प्रस्तुतीकरण में पारम्परिक, लोक-नाट्य परम्परा के प्रयोग से अपनी जड़ों को समृद्ध करने का प्रयास किया गया। इस संदर्भ में हबीब तनवीर, ब.व. कारंत, रतन थियम, के. एन. पणिक्कर आदि ने अपने रंग-प्रयोगों से एक ओर लोकशैलियों को समकालीन सन्दर्भों में जीवंत रखा, वहीं दूसरी ओर भारतीय रंगमंच को विविध आयाम दिये।

देखा जाए तो समकालीन रंग परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर अपनी दोहरी भूमिका निभाते हैं। एक नाटककार के रूप में तो दूसरी निर्देशक के रूप में। उनके निर्देशकीय पक्ष की बात करें तो उनकी रंग चेतना ने छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति को रंगमंच के विश्व फलक तक पहुँचाया है। उनका रंगकर्म जीवन की पूर्णता का पर्याय है। क्योंकि वे सुख-दुःख, आशा-निराशा, जीवन-मृत्यु आदि जीवन की किसी भी चीज़ को छोड़ते नहीं थे। उसको दिखाते थे। हबीब तनवीर के इस साहस और संघर्षपूर्ण व्यक्तित्व के पीछे परम्परा की सही पहचान और उनकी आधुनिक विश्व दृष्टि थी। उनका थियेटर न तो पश्चिमविरोधी है और न ही परम्परावादी। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, *''बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। यह केवल व्यक्ति-सत्य है, सामाजिक संदर्भ में भी यह सत्य है। खड़ा पैर परम्परा है, चलता पैर आधुनिकता। दोनों का पारस्परिक संबंध खोजना बहुत कठिन नहीं है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती।''*[45] यही बात हबीब के रंगकर्म में देखी जा सकती है।

कथ्य की दृष्टि से उनके नाटक आधुनिक हैं और शैली की दृष्टि से पारम्परिक। लेकिन शैली के प्रयोग मात्र से हमें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वह सिर्फ पारम्परिक नाटक कर रहे थे। वह तो बस उन रंग तत्त्वों का इस्तेमाल भर करते हैं। इसीलिए नामवर सिंह कहते हैं, *''हबीब के नाटकों में लोक की स्थानीयता का बहुत विराट स्वरूप है, लेकिन उनके नाटक-लोक नाटक नहीं हैं, वैज्ञानिक सोच के साथ परिमार्जित आधुनिक नाटक है।''*[46]

हबीब तनवीर मानते थे कि लोक रंगमंच और बोलियों का रंगमंच ही सबसे सशक्त है। उनकी रंग चेतना उस सोच पर आधारित है जहाँ लोक परम्पराओं की अपार सृजनात्मक

---

[45] कुमार, अमितेश; 'गाती-झूमती मज़े लेती वैकल्पिक आधुनिकता'; अभय कुमार दुबे (सं.); प्रतिमान; प्रवेशांक; जनवरी-जून 2013; पृ. 268

[46] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 138

क्षमताओं और ऊर्जा का स्वीकार्य है। हबीब तनवीर परम्परा को बहुत अच्छे से जानते थे। उन्हें यह ज्ञात था कि परपरा का बहुत सारा हिस्सा मृत, अनुपयोगी और जीवन विरोधी भी है। इसलिए इस बात को लेकर वे काफी सजग थे। उन्होंने कहा भी है कि *''हमें परम्परा का दास नहीं बनना है, पर साथ ही हमें उसके साथ मनमानी करने का भी कोई अधिकार नहीं। आधुनिक कला रचना में परम्परा के सृजनात्मक समावेश के लिए उसके प्रति अधिक गम्भीर और संस्कार-परक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।... रंगमंच के विकास के मौजूदा दौर में हमें पारम्परिक नाट्य की ओर उन्मुख होने की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उसके प्रति एक स्वस्थ और दायित्वपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की भी है।''*[47]

हबीब तनवीर बार-बार यह बात कहते थे कि *''मेरे आसपास का समाज मेरी सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।''*[48] उनके आसपास का यह समाज ही उनका लोक है। इसे ही उन्होंने पढ़ा, समझा, इसे ही खेला। वे कहते थे कि *''लोक हमारे बीच प्रमाण के रूप में स्वीकृत होता है। इस लोक की संस्कृति का अपना समाजशास्त्र है। साथ ही संस्कृति को आप लोकततत्त्वों से अलग नहीं कर सकते। हमारा लोकसाहित्य संस्कृति और विश्व दर्शन से गहरे जुड़ा हुआ है, परस्पर अनुस्यूत है। शब्दों से परे जाकर भाव और संवेदन की जो अदृश्य दुनिया है, लोक उसे थाती की तरह संभालकर रखता है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए उपलब्ध कराता है।''*[49] यही कारण है कि वे इन परम्पराओं से गीत–संगीत, शैली कुछ भी लेने में जरा भी हिचकते नहीं। 'आगरा बाजार', 'मिट्टी की गाड़ी', 'गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद', 'अर्जुन का सारथी', 'राजा चंबा और चार भाई', 'चरनदास चोर', 'शाही लकड़हारा', 'जानी चोर', 'चंदैनी', 'जमादारिन', 'बहादुर क्लारिन', 'देवी का वरदान', 'सोन सागर', 'मंगलु दीदी', 'हिरमा की अमर कहानी'

---

47 सुलभ, हृषीकेश; रंग अरंग; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 59

48 वही, पृ. 62

49 वही, पृ. 57-58

आदि उनके ऐसे नाटक हैं जहाँ उनकी शैली की छाप देखी जा सकती है।

'लोक' उनके यहां जीवन का हिस्सा है। उन्होंने न केवल छत्तीसगढ़ी 'नाचा' की शैली को लिया, अपितु पंडवानी गायन, पंथी नृत्य, सुआ गीत, चन्दैनी, स्वांग, प्रह्लाद नाटक जैसी लोकनाट्य शैलियों और विभिन्न प्रदेशों के आनुष्ठानिक प्रयोगों, लोक कथाओं आदि को भी शामिल किया। हबीब तनवीर के नाटकों में रंग संगीत भी एक शक्ति थी। वे करवा, ददरिया, विहाव इन लोक धुनों का प्रयोग करते थे। वास्तविकता में उन्होंने छत्तीसगढ़ की लोक रीतियों, अनुष्ठानों और परम्पराओं को अपनी रंगदृष्टि में पूरा स्थान दिया है।

देख जाए तो लोक शैली को अपनाने हुए हबीब तनवीर आज के संदर्भ में आधुनिक नाटककार इसीलिए बन पाए कि उन्होंने समाज की समस्याओं का बारीकी से अध्ययन किया और उसके निदान के लिए अपने नाटकों को माध्यम बनाया। उन्होंने इतिहास, परम्परा के साथ-साथ आधुनिक भाव-बोध को अपनाया। वह कहते थे कि *"किसी नयी चीज़ को पुरानी चीज़ से मिला दीजिये तो एक तीसरी खासियत पैदा होती है और उसका नाम है आधुनिकता या रेनेसां।"*[50] यहाँ गौर करने की बात यह है कि भारतीय रंगमंच पर उन्होंने उस आधुनिकता को पेश किया जिसमें परम्परा का समावेश हो सके। उन्होंने महसूस किया कि पश्चिम से आयातित नाट्य रूप भारत की समकालीन सामाजिक स्थितियों, जीवन-व्यवहार, संस्कृति और मूलभूत समस्याओं को प्रभावी रूप से अभिव्यक्त करने में अक्षम हैं। इसीलिए वे पारम्परिक शैली और लोक की तरफ मुड़ते हैं।

समकालीन रंगमंच पर हबीब तनवीर जन-साधारण के हितों और आकांक्षाओं के प्रतिनिधि के रूप में उभर कर सामने आते हैं। उनका व्यक्तित्व आधुनिक बोध और परम्परा के

---

[50] तनवीर, हबीब; 'लोककथाओं और लोकगीतों में प्रतिवाद के स्वर'; तिवारी, अशोक (सं.); नुक्कड़ जनम संवाद; अंक 23-26; अप्रैल 2004-मार्च 2005; पृ. 55

समन्वय का परिचायक है। उसमें किसी प्रकार की अपरिवर्तनशील, रूढ़ीगत भावना के लिए स्थान नहीं है। अपनी जड़ों की पहचान, नवीनता की स्वीकृति, तर्क, गतिशीलता, मानवतावादी दृष्टिकोण, संघर्ष की चेतना आदि का भाव नीहित है। वे शोषितों के सवालों को नाटक के केंद्र में लेकर आते हैं। अपने लगभग सभी नाटकों में उन्होंने समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति आदि की समस्याओं एवं प्रश्नों को उठाया।

'आगरा बाज़ार' अपनी प्रतीकात्मकता में तत्कालीन राजनीतिक अस्थिरता के समय आम आदमी के बीच व्याप्त हताशा, कुंठा और असमंजस की स्थिति का चित्रण करता है। इस नाटक के आरंभ में लिखा है, *"है अब तो कुछ सखुन का मेरे कारोबार बंद...जब आगरे की खल्क का हो रोजगार बंद।"*[51] यही बात आदमीनामा में भी दिखाई देती है। 'मिट्टी की गाड़ी' पहली बार एक साधारण आदमी के नायकत्व का बोध कराता है। यह चारुदत्त और गणिका बसंतसेना की रोमांटिक प्रेम कथा ही नहीं है, उसके साथ अत्याचारी राजा पालक के विरुद्ध शर्विलक की राजनीतिक चेतना का भी बिंदु है। 'बहादुर कलारिन' में तो हबीब तनवीर द्वारा लोककथा की एक नितांत आधुनिक व्याख्या हुई है। इस नाटक में मनुष्य मन का गहरा स्वभाव देखने को मिलता है। आधुनिक युग में व्याख्यित 'इडिपस काम्प्लेक्स' का समन्वय इस लोक कथा में दिखता है।

हबीब तनवीर की दृष्टि लगातार अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों पर थी।। आपातकाल के बाद 'चरनदास चोर' में रानी की निरंकुशता तत्कालीन स्थितियों में और भी व्यंग्यात्मक हो जाती थी। यह नाटक एक चोर के सत्य के आग्रह की लोक कथा है जो आधुनिक और सामाजिक विसंगतियों को उभारने में भी सफल रहा। इसमें सत्य और सत्ता के संबंधों पर टिप्पणी की है। एक चोर सत्य पर अडिग रहता है और सत्ता अपना ऐब छुपाने के लिए उसकी

---

[51] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 47

हत्या कर देती है। जबकि 'हिरमा की अमर कहानी' में वे आदिवासियों के जीवन की विसंगतियों को उठाते हैं। हबीब तनवीर के अन्य नाटकों की तुलना में इसमें राजनीतिक तत्त्व सबसे ज्यादा हैं, लेकिन अफ़सोस यह है कि इस नाटक की कम ही चर्चा हुई। सच्चाई तो यह है कि आज भी भारत में आदिवासी प्रश्न अनसुलझे हैं।

उदारीकरण के बाद उससे हुए विकास के खोखले दावों की हकीकत बताने के लिए 'सड़क' नाटक तैयार किया। इस नाटक के आदिवासी पात्र बताते हैं कि सड़क के आगमन से उनके जंगली जानवर, पेड़, फल इत्यादि समाप्त होते जा रहे हैं। इस आधुनिक विकास से केवल सामान्य जीवन ही नहीं उनकी संस्कृति भी प्रभावित होती है। हबीब कहना चाहते थे कि *''वस्तुतः आधुनिकता विविधता को प्रश्रय नहीं देती। वह एकरूपता को प्रोत्साहन देती है और एक ही वृत्तांत में सब को ढालना चाहती है। यह दरअसल उपभोक्ता-निर्माण की प्रक्रिया है...इस उपभोक्तावाद और विकास से जो हानि हो रही है उसकी चिंता बराबर हबीब तनवीर के साक्षात्कारों में देखी जा सकती है।''*[52] 'ज़हरीली हवा' में भी वे दिखाते हैं किस प्रकार व्यापक जनसंहार के बाद विकास के सूत्रधार जनता को दयनीय स्थिति में डाल कर छोड़ देते हैं।

नब्बे के दशक के बाद सांप्रदायिक उन्माद ने भी समकालीन जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया। उसे केंद्र में रखकर हबीब तनवीर ने 'जिस लाहौर नइ देख्या' और 'एक औरत हिपेशिया भी थी' जैसे नाटकों का मंचन किया। वे साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध न धर्म से मानते हैं और न ही संस्कृति से। वे कहते हैं *''ये बात आप और हम सब अच्छी तरह से जानते हैं कि ये कोई और चीज़ है, इस चिड़िया का कुछ और ही नाम है। इसके पॉलिटिकल कॉम्प्लीकेशन हैं, ये पैदा की गई है, पहले नहीं थी।...ये कुछ अंग्रेजों की देन है, कुछ हिटलर महोदय की देन है।*

[52] कुमार, अमितेश; 'गाती-झूमती मज़े लेती वैकल्पिक आधुनिकता'; प्रतिमान; अंक जनवरी-जून, 2013; पृ. 279

साम्प्रदायिकता और फासिज्म में बहुत कम फर्क बाकी रह गया है।''[53]

हबीब तनवीर अपने समय की सांप्रदायिक शक्तियों के उभार और सत्ता के साथ उनके गठजोड़ के दुष्परिणामों की चिंता से भी वे जूझ रहे थे। इसीलिए उनकी अंतिम प्रस्तुति 'राजरक्त' धर्म और राज-सत्ता के संबंधों और टकराव पर ही आधारित है। इस नाटक में एक धर्मांध पुरोहित धर्म की रूढ़ियों को चलने देने के लिए राज-सत्ता को ही पलट देना चाहता है। वहीं जाति प्रथा की विडंबना को 'पोंगा पंडित' के माध्यम से व्यक्त किया जिस कारण इस नाटक और स्वयं हबीब तनवीर पर प्रतिक्रियावादियों ने हमले भी किये, लेकिन वे कभी रुके नहीं।

कुल मिलाकर कह सकते हैं कि समकालीन रंग परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर दोहरी भूमिका में हैं। उनके नाटकों का कथ्य मानव की संवेदना को छूता है, प्रश्न करता है और सत्ता का विरोध करता है। क्योंकि उनका कहना था सत्ता के विरोध में ही सच्ची कला पनपती है, जिसका सीधा संबंध आम आदमी की तकलीफों, दुखों से होता है। उनकी यही सामाजिक प्रतिबद्धता लोक शैलियों का सहारा लेकर अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने 'नाचा' के तत्त्वों और लोक कलाकारों के साथ मिलकर एक ऐसा नया रंग मुहावरा गढ़ा जिसमें परम्परा और आधुनिकता का समन्वय है।

---

[53] तनवीर, हबीब; 'संस्कृति और साम्प्रदायिकता'; राजेन्द्र शर्मा (सं.); सहमत; अंक 40-41, जनवरी-दिसम्बर, 2009; पृ. 114-115

तृतीय अध्याय

हबीब तनवीर के नाटकों की विवेचना

नाटक की कसौटी रंगमंच को माना गया है और ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। भरतमुनि ने भी अपने नाट्यशास्त्र में नाटक की आत्मा रंगमंचीयता को माना है। रंगमंच एक ऐसी प्रदर्शनकारी कला है जो केवल मनोरंजन ही नहीं करती अपितु जीवन के विविध अनुभवों को रूपायित भी करती है। यह एक जीवंत कला है। प्रसिद्ध नाटककार दयाप्रकाश सिन्हा लिखते हैं, *"रंगमंच एक विशिष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह सीमित अर्थों में किसी वर्ग-विशेष का नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज का, अपनी विविधताओं सहित प्रतिनिधित्व करता है। इस अर्थ में वह सम्पूर्ण विश्व है।"* [1] नाटक और रंगमंच के बेहतरीन तालमेल को अगर हम देखना चाहें तो हबीब तनवीर का काम इसकी मिशाल है। विचारधारा से हबीब तनवीर वामपंथी थे, जिसकी नींव इप्टा से पड़ी। यहीं से उन्होंने सामूहिकता में नाटक-निर्माण करना, लोक-शैली का उपयोग करना, राजनीतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करना और अपने रंगकर्म को व्यापक समाज से जोड़ना सीखा। अपने नाटकों में लोक और शहरी रंगशैलियों के तालमेल से जीवन की व्याख्या करना उनका उद्देश्य रहा है।

हबीब तनवीर के नाट्य-लेखन के संदर्भ में विद्वानों के कई मत हैं। कमला प्रसाद हबीब तनवीर को भारतेंदु हरिश्चन्द्र के उत्तराधिकारी मानते हैं। वह लिखते हैं, *"आजाद भारत में भारतेंदु के सच्चे उत्तराधिकारी बने, हबीब तनवीर। कोई पाठक 'अंधेर-नगरी' के बाद 'आगरा बाजार' का पाठ करे तो उसे अनुभव होगा कि जैसे एक शताब्दी की सरिता के ऊपर कोई पुल बन गया है। भारतेंदु की आत्मा विकास कर्म में जैसे हबीब तनवीर की चेतना में उतरी हो। देश काल का रंग*

[1] सिंह, डॉ. केदारनाथ; हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच; विद्या विहार, गांधी नगर, कानपुर; संस्करण 1985; पृ. 47

और अंदाज अलग-अलग पर दोनों में लोक का अनलंकृत स्वभाव।"[2] प्रयाग शुक्ल को हबीब तनवीर के लेखन में 'ब्रेख्त का प्रभाव' दिखाई देता है। वे लिखते हैं, *"हबीब तनवीर को नाटकों के लेखन में ब्रेख्त से बहुत मदद मिली। उन्होंने ब्रेख्त के नाटक द गुड वुमेन ऑफ सेतजुआन को छत्तीसगढ़ी में प्रस्तुत किया।"*[3] वहीं अशोक वाजपेयी हबीब तनवीर के नाटक को 'उत्तर आधुनिक मानते हैं'।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में हबीब तनवीर के कई रूप हमारे सामने हैं। वे नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, शायर, नाट्य-चिन्तक सब एक साथ हैं। *"वह ऐसे विरल प्रगतिशील बुद्धिजीवी रंगकर्मी थे, जिसने अपनी एकात्म-निष्ठा से रंगमंच को व्यवस्था के प्रतिरोध एवं विरोध का सशक्त जन-माध्यम बनाया। संघर्षशीलता और रचनात्मक प्रयोगधर्मिता उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की प्राणशक्ति थी।"*[4] बावजूद इसके एक नाटककार के रूप में नाटक के इतिहास के ग्रंथों में उन्हें जगह तक नहीं दी गई। इसका कारण बताते हुए अमितेश कुमार लिखते हैं, *"हबीब तनवीर के नाट्यालेख स्थिर नहीं है, वह प्रदर्शन के अनुसार उसमें परिवर्तन करते रहे हैं। इसलिए ऐसे अस्थिर आलेखों को नाटक की मान्यता देने में आलोचकों को दिक्कत हुई है, क्योंकि नाटक का मतलब रहा है एक स्थिर पाठ।"*[5]

यह सही है कि हबीब तनवीर के अधिकांश नाटक लिखित रूप में नहीं हैं। इसका मूल कारण उनका इम्प्रोवाईजेशन पद्धति द्वारा नाटक को तैयार करना था जिससे वे अपने नाटकों का लेखन नहीं कर पाये। उन्होंने कभी भी अंतिम रूप से नाटक लिख कर उसे मंचन के लिए नहीं

---

2 प्रसाद, प्रो. कमला (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. सम्पादकीय से

3 शुक्ल, प्रयाग (सं.); रंग प्रसंग; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; जनवरी-जून, 1999; पृ. 115

4 तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 119

5 कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक 58; अप्रैल-जून 2016; पृ. 67

दिया। इसी कारण उनके नाटक स्वतंत्र रूप से भी बहुत बाद में छपे हैं। उनके नाटक की प्रस्तुतियों के बीच में वह स्पेस, जिसे हबीब नाटकीय दृश्य-बिम्बों से भरते हैं, वह नाटक के छपे संस्करण में सामने नहीं आता है। इसीलिए उनकी प्रस्तुतियां उनके निर्देशन के संदर्भ में तो चर्चित होती रहीं, लेकिन नाट्य लेख के स्तर पर कोई गंभीर चिंतन नहीं किया गया।

हबीब तनवीर के नाट्य लेखन की बात करें तो मुख्यत चार रूप सामने आते हैं। पहला रूप बाल नाटक का है। दूसरा रूप मौलिक नाट्य लेखन का है। तीसरा रूप लोककथाओं, शैलियों आदि पर आधारित नाटकों का है। जैसे 'चरनदास चोर', 'बहादुर कलारिन', 'हिरमा की अमर कहानी' आदि। इनमें उन्होंने लोककथाओं की आधुनिक व्याख्या करते हुए उसे नाटक का रूप दिया है। चौथा रूप है- अनुदित या रूपांतरित। इसमें उन्होंने संस्कृत नाटकों एवं पाश्चात्त्य नाटकों को नाट्य रूपांतरण कर प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त हबीब तनवीर ने कुछ कहानियों को भी नाटक का रूप दिया है जिसमें 'शतरंज के मोहरे', 'देख रहे हैं नैन' प्रमुख नाटक हैं।

3.1 बाल नाटक

कम लोग यह जानते हैं कि हबीब तनवीर ने दिल्ली में आकर 1954 से अपने रंग जीवन के शुरूआती दौर में बड़ी गंभीरता, जिम्मेदारी और सर्जनात्मकता के साथ कई बाल नाटक लिखें और निर्देशित किये थे। हबीब के बाल नाटकों के संदर्भ में प्रसिद्ध नाट्य आलोचक जयदेव तनेजा लिखते हैं *"भारी बस्तों के बोझ तले दब रहे मासूम बच्चों की मौलिक कल्पनाशीलता को मारकर उन्हें रट्टतोतों की फौज में बदल रही आज की शिक्षा-पद्धति के लिए भी ये नाटक एक नया और बड़ा रास्ता दिखाते हैं।"* [6] विविध रंग रूप और शैलियों के उनके पांच बाल नाटक अलग-अलग और 'पचरंगी' नाम से एक साथ प्रकाशित हुए हैं। 'पचरंगी' नामक पुस्तक में उनके 'कारतूस',

---

[6] तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन; नई दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 127

'चाँदी का चमचा', 'आग की गेंद', 'परम्परा', 'दूध का गिलास' जैसे बाल नाटकों को शामिल किया है।

कारतूस

हबीब तनवीर द्वारा सन् 1954 में रचित 'कारतूस' वजीर अली माज़ूल शाहे अवध की हिम्मत, वीरता और बुद्धिमत्ता को रेखांकित करने वाला एक ऐतिहासिक यथार्थवादी बाल नाटक है। हबीब तनवीर का यह नाटक सीबीएससी के पाठ्यक्रम का भी हिस्सा रहा। अपने आकार में यह नाटक काफी छोटा है जिसमें केवल चार ही पात्र हैं। इस कारण बच्चों द्वारा यह नाटक आसानी से खेला जा सकता है। नाटक का समय 1799 की एक रात है और यह रात गोरखपुर के जंगल में अंग्रेज कर्नल कॉलिंस के खेमे के अंदरूनी हिस्से पर घटित है।

नाटक की शुरुआत में कर्नल कॉलिंस अपने एक अंग्रेज लेफ्टिनेंट से बातचीत करते हुए उसे बताता है कि भारी फ़ौज के साथ वह वज़ीर अली को गिरफ्तार करने के इरादे से इस जंगल की खाक छान रहे है। कर्नल उसे यह भी बताता कि वज़ीर अली अंग्रेजों से बेपनाह नफरत करता है। उसने कंपनी के वकील का कत्ल कर दिया है और बागी होकर अपने कुछ जांबाज़ सिपाहियों के साथ नेपाल भाग जाने के मकसद से इस जंगल में छिपा हुआ है। वह यह भी बताता है कि उसके सिर पर भारी सरकारी इनाम है। कर्नल कॉलिंस को लगता है अंग्रेजों के दोस्त अवध के नवाब सआदत अली खाँ की फौजें और अंग्रेजी फौजें मिलकर उसे जल्दी ही पकड़ लेंगी। अब वह पूरी तरह घिर गया है और उसे गिरफ्तार कर लेना कोई मुश्किल काम नहीं है। तभी दूर से धूल उड़ती दिखाई देती है। सरपट घोड़ा दौड़ता हुआ एक सवार वहां आ पहुँचता है और कर्नल से तुरंत मिलने की इच्छा प्रकट करता है।[7]

[7] तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 128-129

लेफ्टिनेंट उसे सआदत अली खां का कोई आदमी या वज़ीर अली की खबर देकर ईनाम लेने आया कोई मुखबिर समझता है। सवार एक सिपाही के साथ अंदर आता है और कर्नल से अकेले में कोई गुप्त या गंभीर बात करना चाहता है। कर्नल के इशारे पर सिपाही और लेफ्टिनेंट तम्बू के बाहर चले जाते हैं। सवार वज़ीर अली जैसे चालाक और जांबाज सिपाही को अकेले गिरफ्तार कर लाने का दावा करता है और इस मुश्किल काम के लिए कारतूसों (बंदूक की गोलियां) की मांग करता है। कारतूस देने के बाद कर्नल उससे उसका नाम पूछता है। सवार कर्नल को अपना नाम वज़ीर अली बताते हुए उससे कहता है कि *"आपने मुझे कारतूस दिए इसलिए आपकी जां बख्शी करता हूँ"*[8] फिर वह शान से बाहर निकल जाता है। कर्नल सन्नाटे में हक्का-बक्का उस जांबाज़ को जाते हुए चुपचाप देखता रह जाता है।

इस प्रकार एक लड़ाई के खेमे के अंदरूनी हिस्से के एक साधारण से दृश्य-बंध पर हबीब तनवीर ने एक छोटी सी कहानी लिखी। इस कहानी के माध्यम से उन्होंने आसुफुद्दौला, वजीर अली, सआदत अली, टीपू सुल्तान, शमसुद्दौला, लार्ड क्लाइव और लार्ड वैलाजिली के चरित्रों एवं उनके कामों का उल्लेख करते हुए इतिहास के एक पूरे दौर को नाटकीयता के साथ मंच पर बड़े सादगी से पेश कर दिखाया है। यह कार्य उनकी बिल्कुल गैरमामूली समझ और कला का नमूना है।

गधे

यह नाटक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य करता है। दुर्भाग्य यह है कि आज इस नाटक का कोई मूल पाठ उपलब्ध नहीं है। इस नाटक के माध्यम से यह बताया गया कि बच्चों को सृजनशील बनाने की बजाय उन्हें लगातार अनुकरणशील बनाया जा रहा है और पढ़ाई का बोझ उन पर लादा जा रहा है। *"इस नाटक में इंदिरा गाँधी के बेटों राजीव और संजय ने भी अभिनय*

[8] तनवीर, हबीब; कारतूस; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 12

किया था। इस नाटक में बच्चों के स्वप्नों, कथाओं और उनके बनाये गए चित्रों को संयोजित करके एक बच्चों का शहर ही बनाया गया था।'' [9]

चांदी का चम्मच

'चांदी का चम्मच' नाटक गंभीर अभिप्राय का एक यथार्थवादी हास्य-बाल-नाटक है। इस नाटक के खेलने की अवधि लगभग 10 मिनट है। इसमें बड़े मनोरंजक तरीके से हबीब तनवीर ने स्वास्थ्य और नागरिक चेतना का मुद्दा उठाया है। इस नाटक का कार्य-व्यापार मुंबई शहर में एक सड़क के किनारे तिमंजले मकान की खिड़की और उसी ईमारत के नीचे एक खुली दुकान में घटित होता है। नाटक को खेलने की दृष्टि से इसमें रंग संकेतों का प्रयोग किया गया है। नाटक की शुरुआत में रंग संकेत है, *''मंच ऐसा हो मानो एक सड़क है जो दाएं से बाएँ जाती है। इस सड़क पर चलने वालों के सामने ही एक मकान है जिसकी केवल अगली दीवार और दीवार की अनगिनत खिड़कियाँ दिखाई दे रही हैं। मकान के बीचों बीच एक बड़ा फाटक है जहाँ से ऊपर जाने की सीढिया हैं। इस फाटक के पास ही एक दुकान है जो खुलने पर दीवार से तनिक आगे सड़क तक निकल जाती है।''*[10] इसी तरह नाटक के अंत में भी रंग संकेत है, जैसे *''पड़ोसिन कूड़ा उठा चुकी है। एक केले का छिलका पड़ा रह गया था। जाते समय पैर उस पर पड़ जाता है, फिसल पड़ती है। सब खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।''*[11]

देखा जाए तो इस नाटक में दुकानदार की शराफत और बेचारगी के मुकाबले तिमंजले से कूड़ा फेंकने वाली दबंग पड़ोसिन का मुँहफट चरित्र रोचक ढंग से उभरता है। पड़ोसिन प्रतिदिन अपनी खिड़की से चुपचाप नीचे कूड़ा फेंकती है जो नीचे दुकानदार के सिर पर गिरता

---

[9] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक 58; अप्रैल-जून, 2016; पृ. 90

[10] तनवीर, हबीब; पचरंगी; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2015; पृ. 21

[11] वही, पृ. 27

है और दुकान के अन्दर तक चला जाता है। दुकानदार बड़ी मासूमियत से अपनी यह समस्या महिला को बताता है, तो महिला न केवल उससे साफ मुकर जाती है बल्कि दुकानदार पर बदतमीज, लुच्चा और औरतों से छेड़छाड़ करने वाला जैसे आरोप लगा कर उस पर हावी हो जाती है। कुछ पड़ोसी उस झगड़ालू औरत के सामने दुकानदार को चुप रहने की सलाह देते हैं। तभी दुनियाभर में घुमा टोनी लंदन में देखी एक घटना का जिक्र करके अच्छी नागरिकता का उदाहरण भी पेश करता है। इस तरह से यहाँ मुंबई और इंग्लैंड की संकृति का एक वैषम्य उभरता है। फिर एकदम सबके सामने कूड़ा गिरता है। दुखी दुकानदार शिकायत भरी आवाज में फिर चिल्लाता है। लेकिन ऊपर से कोई जवाब नही आता। तभी दूकानदार का मित्र महिला को सबक सिखाने के लिए खिड़की की ओर देख कर पुकारता है कि कचरे के साथ एक चांदी का चम्मच भी नीचे आ गिरा है। जिसका हो ले जाए, नहीं तो मैं स्वयं ले कर चला जाऊंगा। पड़ोसिन लालच में फंस कर तुरंत चांदी का चम्मच लेने नीचे आ जाती है और सारी भीड़ उसे शर्मिंदा करके उसी से कूड़ा उठवाती है। वह वादा करती है कि फिर कभी कूड़ा नीचे नहीं फेंकेगी। वह व्यक्ति उसे समझाता है कि अपने घर की सफाई के लिए मुहल्ले में गंदगी फैलाना गलत है, कूड़ा-कूड़ेदान में ही डालना चाहिए।[12]

इस तरह यह नाटक सफाई और अपनी जिम्मेदारी के प्रति बच्चों को व्यवहारिक ज्ञान देता है। नाटककार ने अंत में पड़ोसिन को केले के छिलके से फिसलकर गिरने का दृश्य दिखाकर न केवल 'जैसी करनी वैसी भरनी' को सिद्ध कर दिया है, बल्कि समाज को सचेत और जागरूक रहने का भी संदेश दिया है। मुहावरों का बेहद असरदार एवं प्रवाहमय इस्तेमाल भी इस नाटक की ख़ूबी है।

---

[12] तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 130

आग की गेंद

यह नाटक एक खेल और व्यवहारिक प्रयोग के ढंग से सूरज के बारे में बच्चों को जानकारी देने वाला पांच से दस मिनट का एक छोटा-सा बाल नाटक है। इसमें नाटककार ने अलिफ, बे और जीम को चरित्र बनाकर पेश किया है। नाटक का समय सूरज निकलने से पहले का है तथा स्थान जमीन है। नाटक में जीम दादी, सूत्रधार या अध्यापक जैसा वरिष्ठ चरित्र है जो नाटक की शुरुआत में अलिफ़ और बे जैसे जिज्ञासु बच्चों को सितारे और सय्यारा (ग्रह) का फर्क समझाता है। वह बताता है, *''सय्यारा गरम नहीं होता, सितारा गरम होता है- सय्यारा सितारे की रोशनी से तो आईने की तरह चमक सकता है मगर जिस तरह आईना खुद अपनी रोशनी से नहीं चमकता सय्यारा भी नहीं चमक सकता और सितारा इतना गरम होता है कि खुद रोशनी पैदा करता है। सय्यारे सूरज के गिर्द चक्कर लगाते हैं, सितारे नहीं लगाते।''*[13]

इसके बाद जीम एक गेंद के जरिए आग के गोले यानी सूरज की कहानी सुनाता है। अब गेंद नाटक के केंद में आ जाती है। पूरे नाटक में अलिफ और बे की नोकझोक के माध्यम से नाटककार ने बाल मनोविज्ञान की भी झलक पेश की है। अंत में जीम बच्चों को पृथ्वी के अलावा दूसरे आठ ग्रहों के नाम किताब से पढ़ने और याद करके आने पर सूरज की कोई नई कहानी सुनाने के वादे के साथ पर्दा गिरा देता है।

वास्तव में हबीब तनवीर का यह बाल नाटक एक खेल के माध्यम से बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करता है। यह पद्धति बिलकुल बोझिल नहीं है, बल्कि बच्चे रुचि के साथ अपने आसपास की चीजों, वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह नाटक सूरज के महत्त्व को रेखांकित करता है। नाटककार लिखता है, *''सूरज की रोशनी न हो तो न हम जिंदा रह सकते हैं न जानवर, न पेड़, न फल- सूरज न हो पानी-हवा-बिजली-तेल-कोयला कुछ भी न हो- सूरज ही से तो जिंदगी*

[13] तनवीर, हबीब; आग की गेंद; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 7-8

है।*"*[14] एक खास बात यह भी कि नाटक में प्रयुक्त विभिन्न रंग संकेत बच्चों को अभिनय करने में सहायक हैं।

परम्परा

यह नाटक भारतीय इतिहास पर आधारित पच्चीस-तीस मिनट का अपेक्षाकृत बड़ा नाटक है। सूत्रधार, नटी और प्राम्टर को मिलाकर इस नाटक में कुल 20 पात्र हैं। इसमें हबीब ने अपने अन्य बाल नाटकों की तुलना में रंग-संकेतों का काफी प्रयोग किया है। जैसे नाटक के शुरुआत में रंग-संकेत है, *"पीछे के पर्दे पर हिंदुस्तान का नक्शा बना हुआ है। स्टेज के बीच में पर्दे से लगा हुआ एक तख्त बिछा है। आने-जाने के रास्ते तीन हैं-दाएं, बाएँ और बीच में। जब पर्दा उठता है, तो एक तरफ़ से सूत्रधार और दूसरी तरफ़ से नटी दाखिल होती है।"*[15] इसी तरह नाटक के बीच-बीच में भी अन्य रंग-संकेत हैं।

इसमें नाटककार ने आर्यों के आगमन अर्थात वैदिक काल से लेकर महात्मा गाँधी और देश के विभाजन तक का सम्पूर्ण भारतीय इतिहास बहुत संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस नाटक में राजनीति के साथ-साथ सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक पक्षों के इतिहास को भी समेटने की कठिन कोशिश की गई है। जयदेव तनेजा के शब्दों में, *"परम्परा में हबीब ने यथार्थवादी रंग-शिल्प को छोड़कर संस्कृत के शास्त्रीय और लोकनाट्य के पारम्परिक रंग-तत्त्वों के साथ कुछ प्रयोगधर्मी युक्तियाँ भी इस्तेमाल की हैं।"*[16] हिंदू-मुस्लिम एकता की विरासत को रेखांकित करने का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य भी इसके साथ जुड़ा है।

नाटक में सूत्रधार और नटी की नोंकझोक भी मजेदार ढंग से दिखाई गई है। सूत्रधार भारतीय इतिहास को छः भागों में बाँट कर दिखाना चाहता है, परन्तु नटी एक ही बार में एक साथ

---

[14] तनवीर, हबीब; आग की गेंद; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 8

[15] तनवीर, हबीब; परम्परा; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 4

[16] तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 131

कहानी कह देना चाहती है। इस प्रक्रिया में दो-दो, चार-चार संवादों वाले चरित्रों, क्षणिक दृश्यों के बीच किताबों, सूचनाओं, मूर्तियों, तस्वीरों साहित्यकारों इत्यादि की चर्चा द्वारा परिगणन शैली में सारा इतिहास समेटा गया है। सूत्रधार का नटी को यह कहना कि, *"शुरू से तुम यही कर रही हो। सारा इतिहास बिगाड़ के रख दिया"* [17] नाटककार की सहजता, विवशता और स्पष्टता का भी प्रमाण है।

कुल मिलाकर बच्चों द्वारा खेले जाने की दृष्टि से देखें तो यह नाटक भारतीय परम्परा की झलक तो देता है, लेकिन फ़ास्ट फॉरवर्ड स्टाइल में। जल्दबाजी में कहीं-कहीं काल-क्रम भी गड़बड़ा गया है। नाटक बच्चों के हिसाब से थोड़ा लम्बा जरुर है लेकिन इसमें सहूलियत यह है कि प्रत्येक बच्चे को केवल कुछ संवाद बोलने हैं, जिन्हें वह आसानी से याद रख सकता है।

दूध का गिलास

दूध का गिलास नाटक बच्चों को दूध पीने के लिए प्रेरित करता है। इस नाटक में मुख्य रूप से पांच चरित्र हैं तथा नाटक की अवधि है 15 मिनट। इस नाटक में दूध के विभिन्न संघटक विविध चरित्र हैं। जैसे शीरीं (शक्क्कर), बी. प्रोटीन (प्रोटीन), मिक्खू बेगम (चर्बी) और जल्लो आपा (पानी) के रूप में। ये सभी पात्र बिट्टू (छोटी बच्ची) के सपने में आते हैं और उससे बात करते हैं। इस नाटक के बारे में जयदेव तनेजा लिखते हैं, *"दूध का गिलास अत्यंत कल्पनाशील, शिक्षाप्रद, तकनीक–समृद्ध और दिलचस्प नाटक है। ये नाटक निर्देशक की रचनाशीलता को उकसाता है। स्वयं हबीब तनवीर ने इसे प्रस्तुत करते समय दूध के तत्त्वों की एकता और झगड़े को प्रदर्शित करने के लिए दो प्रकार के नृत्यों का सार्थक प्रयोग का किया था।"* [18]

---

[17] तनवीर, हबीब; परम्परा; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 10

[18] तनेजा, जयदेव; 'हबीब तनवीर की रंगचेतना और उनका बालरंग'; प्रयाग शुक्ल (सं.); रंग प्रसंग; अक्तूबर-दिसम्बर 2005; पृ.169-170

नाटक की कथावस्तु यह है कि बिट्टू एक बच्ची है जो दूध पीना बिल्कुल पसंद नहीं करती। माँ ने उसे दूध का गिलास दिया है, जिसे वह बिना पिए मेज पर रख कर सो गई है। सपने में वह दूध नगर पहुंच जाती है जहाँ सब कुछ दुधिया चांदनी-सा सफेद, साफ और शफ्फाक है। दूध के घटक शीरीं, भिक्खू बेगम, बी प्रोटीन और जल्लू आपा वहां मौजूद हैं। शीरीं चुपके से आकर बिट्टू को अहिस्ता से जगती है और दूध के बारे में उसे कई नई और दिलचस्प बातें बताती है। सफोफ, मिठाई, मक्खन और व्हेल मछली, गाय, बकरी आदि के दूध के फर्क के बारे में जानकर बिट्टू सचमुच हैरान रह जाती है। शीरीं और मिक्खू बेगम के बाद वहां जल्लो आपा तूफान आने की खबर लेकर आती है। खबर सुनते ही बी. प्रोटीन सहित सब बहने परस्पर लड़ने-झगड़ने लगती है। कैल्शियम बानो और अन्य नमकों (दूध में पाए जाने वाले विविध साल्ट) चार-पांच छोटी-छोटी लड़कियां तूफान के टल जाने की मुबारक खबर लेकर आती है और सभी बहनों में पुनः प्यार और मेल-मिलाप हो जाता है।[19]

दूध फटने के कई कारणों की चर्चा के बाद जल्लो आपा बताती है कि दूध का फटना *"न धुल की वजह से होती है। न बादल की वजह से...न बिजली की वजह से, न तूफान से पहले...जब जिस ओर गर्मी होती है उससे दूध फट जाता है।"*[20] शीरीं दूध के विभिन्न तत्त्वों की विशेषताएँ और उसके लाभ बताकर सूरज के उगने के साथ ही जाने को होती है कि बिट्टू का ख्वाब टूट जाता है। सभी चरित्र वहीं ज्यों के त्यों स्थिर हो जाते हैं। बिट्टू और दर्शकों को सर्वाधिक आश्चर्य यह जानकर होता है कि नाटक के सभी पात्र और खुद बिट्टू स्वप्न में दूध के गिलास में ही है। फिर बिट्टू अपने बिस्तर से उठती है और स्वप्न के चरित्र को याद करते हुए मुस्करा कर दूध का गिलास उठा कर पी जाती है। यह एक स्वप्न नाटक है। इसमें दूध के विभिन्न संघटक मानवीकरण द्वारा विभिन्न

---

[19] तनेजा,जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 132-133

[20] तनवीर, हबीब; दूध का गिलास; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2009; पृ. 15

चरित्रों के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। चूँकि नाटक बच्चों के लिये लिखा गया है इसलिए हबीब तनवीर ने हिन्दुस्तानी और उर्दू भाषा का प्रयोग किया है। भाषा का ऐसा सरल प्रयोग न बच्चों के लिए कठिन है और न ही दर्शकों के लिए। मूल बात यह है कि यह नाटक बच्चों को दूध पीने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हबीब तनवीर एक सजग बाल नाटककार के रूप में हमारे सामने आते हैं। वह शुरुआत से ही भाषा-संवाद के प्रति भी सचेत और जागरूक रहे हैं। बोली और बोलचाल की सहज ग्रहणशीलता, प्रवाहमयता उन्हें हमेशा आकर्षित करती रही है। इस दृष्टि से देखें तो चाँदी का चम्मच उनका सबसे अच्छा बाल नाटक है। क्योंकि इसमें मुहावरों का बड़ा खूबसूरत इस्तेमाल हुआ है तथा बच्चों के लिए भी शिक्षाप्रद है। टोनी बम्बई का निवासी का है, जहाज पर नौकरी करते हुए दुनिया घूमा है और नाटक में इंग्लैंड की एक घटना का जिक्र कर रहा है। उसके संवाद में हिंदी के साथ अंग्रेजियत और बोलचाल की बम्बइया भाषा के सभी रंग एक साथ संतुलित एवं स्वाभाविक रूप में मौजूद हैं। पात्रानुकूल भाषा का खूबसूरत नमूना इस नाटक में टोनी के संवाद हैं। वहीं दूध का गिलास में *''जाड़ों में हम भी बालाई का मोटा लिहाफ ओढ़कर सो रहते हैं''*[21] जैसे संवाद शायर हबीब तनवीर की याद दिलाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाल नाटकों के लेखन से हबीब तनवीर अपने रंगकर्म की शुरुआत करते हैं। वे बाल मन के बड़े पारखी थे। हबीब तनवीर मानते थे कि 'कहानी कहना ही रंग प्रस्तुति का पूरा खेल है' तथा 'जब तक थियेटर करता रहूँगा हैरतजदा होने और हैरतजदा करने का सिलसिला चलता रहेगा।' हबीब तनवीर के रंगकर्म की ये दोनों बुनियादी विशेषताएँ उनके इस आरंभिक बाल नाटक में भी बड़े साफ और प्रभावशाली रूप में दिखाई देती हैं। आज बच्चों की मौलिक रचनात्मकता को उकसाते हुए उनके साथ मिलकर रंगकर्म करना हमारी शिक्षा नीति का

[21] तनवीर, हबीब; दूध का गिलास; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2009; पृ. 15

अनिवार्य अंग होना चाहिए। ब. व. कारंत, रेखा जैन जैसे मौलिक रंग-दृष्टि सम्पन्न रंग-कर्मियों के साथ-साथ हबीब तनवीर ने भी इसे अपने ढंग से पूरी तरह प्रमाणित किया है।

3.2 मौलिक नाटक

हबीब तनवीर के अधिकांश नाटक उनके मौलिक नाटक थे। दूसरे नाटककारों की कृतियों को भी उन्होंने अपने मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है। शेक्सपीयर तक के नाटकों की प्रस्तुति में उनकी अलग छाप दिखाई पड़ती थी। हबीब तनवीर अपने ढंग से नृत्य और गीतों को मूल नाटक के साथ जोड़ने में सिद्धहस्त थे। दर्शक कथानक में कहीं भी रूकावट महसूस नहीं करते थे। संवाद प्रधान नाटक को घटना प्रधान बना कर वे उसे रोचक बना देते थे। उनके नाटकों में सब कुछ स्वाभाविकता से घटित होता था। वे गीत-संगीत के प्रति खूब सजग थे। हबीब तनवीर ने भारत वर्ष में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में उत्कृष्ट प्रदर्शन किये। उनके मौलिक नाटक इस प्रकार है।

शांतिदूत कामगार

हबीब तनवीर के लेखन का प्रारम्भ स्ट्रीट प्ले नाटकों से हुआ है। स्ट्रीट प्ले, जिसकी रचना किसी तत्कालीन मुद्दे को लेकर की जाती है और मुद्दे के समाप्त होने के साथ उस नाटक का महत्त्व या उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी तरह का एक स्ट्रीट प्ले 'शांतिदूत कामगार' भी है जिसे हबीब तनवीर ने लिखा। यह नाटक उन्होंने तब लिखा जिस वक्त हबीब के हाथों में इप्टा की बागडोर थी। उन दिनों यह मिलों के गेट पर खेला जाता था। इस नाटक में शांति का प्रचार था तथा बेहतर मजदूरी के लिए कामगारों को हड़ताल के लिए प्रतीत करता था। हबीब तनवीर बताते हैं कि *''सरकार वाममार्ग विरोधी थी और मेरा एक नाटक पुलिस द्वारा जाँच पड़ताल के लिए जब्त किया गया और फिर उन्होंने उसे कभी नहीं लौटाया।''*[22] इस नाटक को पहले दीना पाठक ने और

[22] तनवीर, हबीब; 'ए लाइफ इन थियेटर'; कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 17

फिर बाद में खुद हबीब ने निर्देशित किया था। खेद यह है कि आज इस नाटक का आलेख उपलब्ध नहीं है।

आगरा बाज़ार

यह नाटक अठारहवीं सदी के उर्दू शायर नज़ीर अकबराबादी की रचनाओं और समय पर आधारित है। उनकी शायरी में उस समय के आगरा के तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वातावरण का चित्रण मिलता है। नज़ीर की पूरी शायरी हिदुस्तानी आवाम का बारामासी मेला प्रतीत होती है। 'आगरा बाज़ार' में कोई नायक या मुख्य पात्र नहीं है, बस एक ककड़ी बेचने वाले के इर्द-गिर्द ही पूरा वातावरण रचा गया है, जिसकी ककड़ियाँ कोई नहीं खरीद रहा है। अन्य फेरीवाले और दुकानदार भी रोटी के लिए जूझ रहे हैं। इसी ककड़ी वाले को नाटक का केंद्रीय बिन्दु माना जा सकता है। क्योंकि यही तो अंत में नजीर द्वारा लिखी कविता को गा-गाकर आसानी से अपनी ककड़ियाँ बेचने लगता है। उसको देखकर तरबूज वाला और लड्डू वाला भी यही करतें हैं। ककड़ी पर नजीर की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

" क्या प्यारी-प्यारी मीठी और पतली-पतलियाँ हैं

गन्ने की पोरियाँ हैं, रेशम की तकलियाँ हैं

फरहाद की निगाहें, शीरीकी हँसलियाँ हैं

मजनूँ की सर्द आहें, लैला की उँगलियाँ हैं

क्या, खूब नर्मों-नाजुक इस आगरे की ककड़ी

और जिसमें ख़स काफिर इस कंदरे की ककड़ी।"[23]

[23] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 106

इस ककड़ी वाले की नज़्म का अपना प्रतीकात्मक महत्त्व भी है। क्योंकि नज़ीर ने शायरी को घिसे-पिटे सामंती परिवेश, चौरबासी शैली और बिम्बों के स्थान पर आस-पास की ज़िंदगी, उसके उभरते सवालों को भी शायरी मे जगह दी। शायरी को परिवर्तनशील और आधुनिक बनाया।

हबीब तनवीर समाज की नब्ज़ को पकड़ने वाले नाटककार हैं। जिन्होंने इस नाटक में आगरा के बाज़ार को केंद्र में रखते हुए आज के बाजार का यथार्थ चित्रण किया है तथा नज़ीर की शायरी के माध्यम से मानवीय मूल्य, संस्कृति, सामाजिकता को जिन्दा रखने कि कोशिश की गई है। फकीरों के माध्यम से हबीब तनवीर ने कहलवाया भी है-*"हम तो न चाँद समझे, न सूरज हैं जानते/ बाबा, हमें तो ये नज़र आती हैं रोटियाँ।"*[24]

नाटक में आगरा की आम जिन्दगी का पूरा परिदृश्य नज़ीर की कविताओं के माध्यम से खींचा गया है। नाटक में कुछ नहीं घटता, सिर्फ आम आदमी की लीला चलती है। पूरे नाटक में नजीर कहीं नहीं आते। बस दो बार उनकी नन्ही-सी नवासी आती है। परन्तु उनकी शायरी से उनकी अनुपस्थिति का अहसास नहीं हुआ। इस बारे में हबीब ने लिखा है, *"मैं नजीर को रंगमंच पर नहीं लाया क्योंकि मैंने महसूस किया उनकी जिन्दगी के बारे में बहुत ज्यादा जानकारी थी नहीं, सिवाय कुछ घटना-प्रसंगों के, लेकिन उनकी शायरी पूरे देश को आच्छादित किये चलती है इसीलिए उसी को रंगमंच पर भी छाने देना चाहिए। सब जगह वह शायर रहे जिसमें उस शायर की उपस्थिति भी हैं लेकिन वह नहीं हैं। तो मैंने वहां जाकर एक रंगमंच पर एक बाजार प्रस्तुत किया जिसमें दो धुर्वों का निर्माण किया। एक और पतंग बेचने वाले की दुकान और वहां पर पतंगों के बारे में बतियाने की आम भाषा में बातचीत बोली जाने वाली जुबाने और दूसरी तरफ किताबें बेचने वाले की दुकान जहाँ शायर, आलोचक और इतिहासकर इकट्ठे होते हैं और एक साहित्यिक*

[24] तनवीर ,हबीब ;आगरा बाज़ार ;वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली ;2010 संस्करण ;पृ. 52

भाषा बोलतें हैं, नज़ीर की बुराई करते हैं और ग़ालिब, मीर और दूसरे शायरों की तारीफ जबकि सामान बेचने वाले नजीर की कविताएँ गाते हैं क्योंकि उन्होंने वह उनसे लिखवाई है और उनका सामान जो पहले नहीं बिक रहा था फौरन सब बिक जाता है तब वे नज़ीर की शायरी गाना शुरू करते हैं। यही नाटक का क्षोभ है।''[25]

नज़ीर अकबराबादी की कविता जन जीवन के उत्सवों, उल्लासों से भरी हुई है। इस नाटक में भी ऐसे अनेक अवसर आते हैं जहाँ लोक की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। जैसे होली पर उनकी यह नज्म देखें–

''मुँह लाल, गुलाबी आंखे हो, और हाथों में पिचकारी हो
उस रंग-भरी पिचकारी को अंगिया पर तककर मारी हो –
भडवे भी भडवा बकते हों तब देख बहारे होली की..''[26]

इसके साथ ही नाटक में एक तरफ बलदेव, किसन कन्हैया, गुरुनानक देव, गणेश, महादेव और खुद नजीर भी विराजे हैं तो दूसरी तरफ तैराकी का मेला हो रहा है, पतंग उड़ रही है, कहीं रीछ नाच रहा है, तो कहीं ककड़ी, तरबूज, तिल के लड्डू हैं। यहां कुछ भी ऐसा नहीं है जो शायरी काविषय न हो सके या हबीब तनवीर के रंगमंच के मेले में समा न सके।

हबीब तनवीर यहाँ अनेक बोलियों को अपनाते हुए जिस भाषा को गढ़ते हैं वह आम आदमी की जीवन्तता के कई रंग रूप को उभारती है। यहाँ बाजार के बीच आम आदमियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा, ठेठ आंचलिक भाषा है जिसमें कहीं आपसी सौहार्द्र है, तो कहीं गाली-गलौज। कहीं जीवन का उत्सव है, तो कहीं संघर्ष का चित्रण। किताबों की दुकान पर अदीबों और शायरों की जुबान का अंदाज निहायत अदब और कायदे की नफासत लिए हुए है। पतंग की

---

[25] प्रसाद, कमला (सं.); कलावार्ता; अंक 103; 2003; पृ. 21

[26] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; संस्करण 2010; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 96

दुकान या बाई जी के कोठे पर बोली जाने वाली जुबान का मुहावरा उस वक्त के शौकीनों और अय्याशीपरस्त लोगों का मुहावरा है। अलखनंदन को दिए गए एक इंटरव्यू में हबीब तनवीर ने 'आगरा बाज़ार' की भाषा के बारे में बताया कि-

" 'आगरा बाजार' में मैंने उर्दू बड़ी मेहनत से हासिल करके लिखी... मिर्जा फरहतुल्ला बेग की 'दिल्ली की आवाजे' एक किताब है। इसमें ये बेचने वाले, कटोरे वाले, जीरा पानी बेचने वाले किस–किस तरह से बोली लगते हैं तो उसकी भी खूबसूरती, करखनदारी भी उसके अंदर। वह दिल्ली की भाषा के बारे में छोटी–सी किताब है। तो उसमें से मैंने बहुत सारे पैसेज लिए, उनका इस्तेमाल किया। तो बाजार की बोली वह और किताब की दुकान में जो जुबान है, वो है मोहम्मद हुसैन आजाद ने जो किताब 'आबे हयात' लिखी है, उर्दू लिटरेचर की हिस्ट्री। वे बड़े जबर्दस्त स्टाइलिस्ट थे। और उनकी जुबान का बड़ा गहरा असर मुझ पर शुरू से,तालीबे इल्मी के जमाने से था। तो कुछ उस अंदाज की मैंने जुबान लिखी है।"[27]

असल में हबीब तनवीर का थियेटर अपने समकालीन जीवन और समाज में हस्तक्षेप करता है। उनका रंगकर्म मूल धारा से अलग कर दिय गए लोगों की पीड़ा का चितेरा है। साथ ही धर्म-संप्रदाय, जाति-पाति, अमीर-गरीब आदि भेदों को खत्म करके समानता व स्वतंत्रता पर आधारित मनुष्यता का पक्षधर है। ये सभी मूल्य हमारे लोक समाज में मौजूद रहे हैं। पूरे नाटक में क़ुतुबफरोश, तजकिरानवीस, पतंगवाला आदि के माध्यम से कुलीन और जनवादी दृष्टि के बीच एक संघर्ष जारी रहता है और अंत में बाजी लगती है तो जनकवि नज़ीर के हाथों।

इस तरह भारतीय रंगमंच पर हबीब तनवीर का यह नया रंग मुहावरा पहली बार पूरी शिद्दत के साथ उभरता है जो रंगमंच के प्रचलित मुहावरे के सन्दर्भ में बिलकुल भिन्न प्रदर्शन

---

[27] अलखनंदा; अपने दिल की सच्ची बात लिखिये (हबीब तनवीर से बातचीत); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 55

था। फिर भी दर्शकों को बहुत सहज और परिचित लगा। नाट्य आलोचक इकबाल नियाजी ने 'आगरा बाजार' का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, *''आगरा बाज़ार जैसे नाटक की प्रस्तुति ने हिन्दुस्तानी नाटककारों के सामने ये मिसाल पेश की, कि किस तरह यथार्थवादी ढांचों को पसंद करके पश्चिमी और पूर्वी ड्रामा रिवायतों से जुड़कर एक नए तरह की तर्ज पर ड्रामों को प्रस्तुत किया जा सकता है। जिसमें लोक नाटक के फॉर्म को और उसके असर को जान-बूझकर ठूँसा नहीं गया, फिर भी नाटक के डायलाग से लोक नाटक की अदायगी व कारीगरी के रंग फूटते हुए महसूस होते हैं।''*[28]

मेरे बाद

'आगरा बाजार' में कवि नज़ीर के समय और उनकी शायरी को सफलता से प्रस्तुत करने के बाद यह हबीब का दूसरा ऐसा नाटक था जिसमें एक बार फिर से किसी कवि की दस्तक थी। यह नाटक ग़ालिब की जिन्दगी और उनकी नज्मों के ऊपर लिखा गया उनका एक मौलिक प्रयोग था जोकि असफल रहा। इसे ग़ालिब की जन्म शताब्दी के अवसर पर 1968 में किया गया था। हबीब तनवीर ग़ालिब को एक भिन्न रूप में चित्रित करना चाहते थे। उनके मन में ग़ालिब एक ट्रैजिक व्यक्ति के रूप में आते थे, वे उन्हें उसी रूप में चित्रित करना चाहते थे, हिरोइक ग़ालिब के रूप में नहीं। हबीब लिखते हैं, *''नाटक लिखने का कारण यह था कि उनकी जिन्दगी पर किताबों में मुकम्मल ढंग से विचार नहीं किया गया था। उनकी मानवीय भूलों के लिए रक्षात्मक नीति अपनाई गई थी, आलोचना में भी व्यक्तिगत आघात किया गया था... नाटक में उनके समकालीन किरदारों को पेश करने में प्रस्तुतिजन्य छूट ली गई थी। ग़ालिब पर चले मुक़दमे के एक अंश को बिना छेड़-छाड़ के लिया गया था।''*[29]

---

[28] वाजपेयी, अशोक (सं.); नटरंग; अंक 86-87, जुलाई-दिसम्बर, 2010, पृ. 58

[29] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अप्रैल-जून, 2016; पृ. 71

यह नाटक एंटी ग़ालिब तो नहीं था, पर दुखांत जरुर था। कोर्ट में ग़ालिब का अपमान हुआ और उस धक्के से उनकी मृत्यु हो जाती है। एक तो यह कथानक परम्परा से हटकर था फिर जन्मशती वार्षिकी के अवसर पर ग़ालिब के दुखद अंत को दिखलाने वाला नाटक खेला जाना सबको पसंद आयेगा या नहीं यह डर भी हबीब के मन में था। इसलिए अंत तक उन्होंने कमेटी को नाटक का स्क्रिप्ट भेजा ही नहीं। दूसरा यह भी था कि नाटक का लेखन और तैयारी दोनों साथ-साथ चल रहे थे, इसलिए आलेख नहीं भेजा गया। *''नाटक खेलने का दिन आया, नाटक शुरू हुआ पर खत्म होने को ही न आए। आलेख तीन चार घंटे हो गया था, न आलेख को देखने का समय मिला था न उसके खेलने में लगने वाले समय का अंदाजा था। लोग बीच में ही उठ कर चले गए। इस नाटक में हबीब जी ने ग़ालिब की प्रचुर गज़लों का पाठ किया। इस नाटक में उन्होंने बेहतरीन उर्दू का इस्तेमाल किया।''*[30]

'इंद्र लोकसभा'

सन 1971 में हबीब तनवीर के निर्देशन में नया थियेटर द्वारा प्रस्तुत' इंद्र लोकसभा' एक नयी दिशा देने के कारण उल्लेखनीय है। यह लोकसभा के मध्यावधि आम चुनाव में कांग्रेस के समर्थन के लिए पहले सड़कों पर फिर फाइन आर्ट थियेटर में खेला गया। *''संप्रेषण मुख्यतः संगीत द्वारा ही था, पर कुल मिलकर प्रचार–दृष्टि के अनुरूप ही उसमें राजनैतिक स्थिति का सरलीकरण अधिक था, इसलिए कोई कलात्मक आयाम नहीं पैदा हो सका।''*[31] यह पोस्टर प्ले जितना प्रसिद्ध रहा उतना ही विवादित भी। इसका मंचन छत्तीसगढ़ी कलाकारों के साथ एक ट्रक पर किया जाता था और उसी ट्रक पर कलाकार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे। कुछ ही मिनटों में ट्रक को स्टेज में बदलकर लगभग 40 मिनट का नाटक खेलकर आगे बढ़ जाते थे।

---

[30] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 102

[31] जैन, नेमिचंद; तीसरा पाठ; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 1998; पृ. 179

जयदेव तनेजा का इस नाटक के बारे में विचार है, *"हबीब तनवीर के कुछेक नाटकों में लेखक–प्रस्तुतकर्ता की दृष्टि लोक-तत्त्व पर रही है और 'इंदर लोकसभा' तो शहरी संभ्रांत वर्ग के लिए पेश करना था और इनका प्रभाव भी उद्देश्य के अनुकूल ही पड़ा। शहरी दर्शक उसे एक नई-अजीब–सी मजेदार चीज़ के रूप में ही ग्रहण किया। यही कारण है कि एक-दो नाटकों के बाद आम शहरी दर्शक की रूचि उनमें कम होती है।"*[32]

राजा चम्बा और चार भाई

अपने रंगमुहावरे की तलाश में हबीब तनवीर ने कई असफल प्रस्तुतियां दी। यह नाटक भी उनमें से एक था। नाटक में हबीब तनवीर ने अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय एकता, स्थायित्व, और व्यवस्था को बनाए रखने की वकालत की है। *"इस नाटक में एक काल्पनिक देश पलाश की कहानी थी जिसके शासन से वंचित किए गए चार नागराई भाई आततायी राजा चंबा के खिलाफ विद्रोह कर देते हैं। इस विद्रोह के बढ़ने के साथ ही पड़ोस के साम्राज्यवादी राज्य मलख का हमला हो जाता है। इन सबके बीच में पलाश की गद्दी पर पंजाल का डकैत राजा रुजलु बैठ जाता है।"* [33]

इस प्रकार यह नाटक एक रूपकात्मक कथा के माध्यम से राजवंशों और सामंतशाही के पतन की दास्तान को तो कहता ही है, साथ ही यह भी कहता है कि देश के भीतर अंतर्कलह रहने पर विदेशी शक्तियां कैसे अपना कब्ज़ा जमा लेती हैं।

मंगलू दीदी

सन् 1984 में बिलासपुर की कार्यशाला में परिवार नियोजन से सम्बंधित इस नाटक को तैयार किया गया था। नाटक के संदर्भ में हबीब बताते हैं, *"Once I was asked to do*

---

[32] तनेजा, जयदेव; समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2002; पृ. 44

[33] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक-58; अप्रैल-जून, 2016; पृ. 76

something on Family Planing because despite governmental effort, dull plays were coming out. A friend in the Madhya Pradesh government, Ajay Shankar, turned around and said to me that you sit there with your archair criticism every time we get together, but what do we get? We get only secondgrade writers to help us. Anyone like you only sits comfortably and criticizes; make yourselves available and we'll show you better results. He put it in such a nice manner and I accepted and I went. I produced Manglu Didi, a hilarious comedy about family planning."[34] इसमें माँ और बच्चे के स्वास्थ्य से सम्बंधित बातों को भी रखा गया था।

इस नाटक में एक परिवार है जिसमें पांच बच्चे हैं। पति को बड़ा खाने की इच्छा होती है। तय होता है कि रात में बच्चों के सौ जाने के बाद बनेगा। बच्चों में से किसी ने सुन लिया और बड़ा बनाने की सामग्री ले–लेकर सो जाते हैं। पति-पत्नी में झगड़ा होता है। पत्नी-पति से कहती है कि बच्चा होगा तो अब छठवां तुम्हारे ही पेट से होगा। नाटक में भगवान जी के सौजन्य से यह काम हो जाता है। पति गर्भधारण करता है और उसका नाम मंगलू दीदी पड़ जाता है। गर्भपात कराने की बात को पत्नी मना कर देती है। मंगलू डाक्टर के पास जाता है। भगवान ग्रामीणों को बच्चों के बीच में अंतर रखने और सही समय पर गर्भ धारण करने की चेतना देता है।[35]

हबीब तनवीरने ने एक सामान्य मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए स्त्री जीवन की जटिलताओं को बड़े ढंग से पेश किया है। विशेष रूप से एक पुरुष के गर्भधारण करने की हास्यकर स्थिति ने विषय को बड़े रोचक ढंग से पेश किया।

---

[34] तिवारी, अशोक (सं.); नुक्कड़ जन्म संवाद; अंक 23-26, अप्रैल 2004 - मार्च 2005; पृ. 215

[35] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक-58; अप्रैल-जून 2016; पृ. 84

सड़क

यह लघु नाटक आदिवासी क्षेत्रों में विकास-समस्या पर केन्द्रित है। उदारीकरण के बाद उससे हुए विकास के खोखले दावों की हकीकत बताने के लिए हबीब तनवीर ने 'सड़क' नामक नाटक तैयार किया था। नाटक में दिखाया गया है कैसे इस आधुनिक विकास से न केवल सामान्य जीवन अपितु उनकी संस्कृति भी प्रभावित हुई है।

इस नाटक की शुरुआत में एक जज के यहां एक मुकदमा आता है जिसमें उद्योगपतियों, व्यापारियों और नेताओं ने ग्रामीणों पर मुकदमा किया है कि उन्होंने वह सड़क तोड़ दी जो उनके विकास के लिए बनाई गई थी। सड़क खोदने के मुक़दमे के चलने के दौरान ही दोनों पक्षों के तर्कों से उस क्षेत्र के विकास से जुड़े पहलू सामने आते जाते हैं। ग्रामीणों का कहना है कि सड़क उनके विकास के लिए नहीं, बल्कि उद्योगपतियों के विकास के लिए बनी हैं। सड़क के आगमन से उनके जंगली जानवर, पेड़, फल इत्यादि समाप्त होते जा रहे हैं।

इस आधुनिक विकास से केवल सामान्य जीवन ही नहीं उनकी संस्कृति भी प्रभावित होती है। हबीब बताते हैं, *"... they came up with a wealth of details about why the road should be broken. Like: the weekly village market coming and disturbing our culture, foresters using the road and taking our rice or forest produce, our wealth going out because of the road, we getting exploited, deprived, our wildlife getting destroyed and killed by the road through which city tourists and foresters come and poach, and a millon reasons, what happens to the animals, the birds, the wildlife, the trees and environment, to agriculture, to things of daily usages-hard liquor comes through the road. We don't want it, we brew our own wines and they're nourishing etc.- therefore break the*

road. So it became a satire on development"[36] इस प्रकार नाटक में हबीब तनवीर भोले-भाले ग्रामीण लोग विकास की अवधारणा को ही सवालों के घेरे में ला देते हैं। इनके इन्हीं सब तर्कों के जाल में आगे बढ़ता यह नाटक अपनी बात कहने में सफल रहा है।

नाटक के माध्यम से हबीब कहना चाहते थे कि *"वस्तुतः आधुनिकता विविधता को प्रश्रय नहीं देती। वह एकरूपता को प्रोत्साहन देती है और एक ही वृतांत में सब को ढालना चाहती है। यह दरअसल उपभोक्ता-निर्माण की प्रक्रिया है...इस उपभोक्तावाद और विकास से जो हानि हो रही है उसकी चिंता बराबर हबीब तनवीर के साक्षात्कारों में देखी जा सकती है।"* [37]

इस नाटक में प्रयुक्त गीत भी विषय की संवेदना से जुड़े हुए हैं। यह नाटक आज भी सफलतापूर्वक खेला किया जा रहा है। अपने शुरुआत से लेकर अंत तक यह नाटक प्रफुल्लित करता है। हबीब तनवीर ने इस नाटक को भी इम्प्रोवाइजेशन के माध्यम से तैयार किया था। यह नाटक जितना उनका है, उतना ही उनके अभिनेताओं का है।

डैडी का घर

यह नाटक उन्होंने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए 1995 में लिखा था। उस समय हबीब तनवीर दिल्ली के बेर सराय के मकान में अपने साथियों के साथ रह रहे थे कि तभी डीडीए ने उसे खाली करने का नोटिस दे दिया। हबीब ने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण साल इसी मकान में गुजारे थे और अब उनसे जबरन यह घर खाली करवाया जा रहा था। इस कारण वे दिल्ली छोड़कर भोपाल चले गए। इस स्थिति की अभिव्यक्ति के लिए ही उन्होंने यह लघु नाटक तैयार किया। *"इसमें डैडी नाम डीडीए के आधार पर ही रखा गया था। यह नाटक नौकरशाही के रवैये पर*

---

[36] तिवारी, अशोक (सं.); नुक्कड़ जन्म संवाद; अंक 23-26, अप्रैल 2004 - मार्च 2005; पृ. 214

[37] कुमार, अमितेश; 'गाती-झूमती मज़े लेती वैकल्पिक आधुनिकता'; अभय कुमार दुबे (सं.); प्रतिमान; प्रवेशांक; जनवरी-जून, 2013; पृ. 279

आघात करता था, साथ ही उन्हें पिघलाने का भी उपक्रम था ताकि उन्हें और उनके छत्तीसगढ़ी अभिनेताओं को प्रदर्शन करने की जगह मिले या वह कायम रहे।''[38]

एक औरत हिपेशिया भी थी

हबीब तनवीर ने यह नाटक 'जन नाट्य मंच' के लिए नब्बे के दशक में लिखा और निर्देशित किया। यह नाटक समाज में बढ़ते कट्टरवाद के खिलाफ उनका एक वक्तव्य था। इस नाटक में एक ऐतिहासिक पात्र हिपेशिया के माध्यम से कट्टरता के परिणाम को दिखाया है जिसमें हिपेशिया को ईसाईयों के हमले का शिकार होना पड़ा था। वे उस खतरे के प्रति सचेत थे जिसमें किसी एक विचार या धर्म को ही सबसे उपयुक्त मान कर दूसरे के लिए जगह समाप्त कर दी जाएगी और इस स्थिति से एक अंधकार का युग आ जाएगा। जैसा कि हिपेशिया के मर जाने से यूरोप में गणित ख़त्म हो गया था। आज समकालीन परिप्रेक्ष्य में यह नाटक और भी प्रसांगिक हो गया है।

इस नाटक की कथा योजना दो स्तरों पर की गई है। एक स्तर पर कथा कहने वाले दो रावी हैं जो हिपेशिया की कथा कहते हैं और उस कथा को वर्तमान के संदर्भों से जोड़ भी रहे हैं। दूसरे स्तर पर हिपेशिया की भी कथा चल रही है। नाटक में दृश्यों को जोड़ने के लिए गीतों का प्रयोग किया गया है। इस नाटक की एक खास बात यह है कि इसमें हबीब तनवीर की शैली के विपरीत क्लिष्ट उर्दू का प्रयोग हुआ है जिससे दर्शकों को अर्थ समझने में कठिनाई हुई। *''हिपेशिया से पहले हबीब साहब के नाटकों की जबान किस कदर सादा और आम फहम हुआ करती थीं हिपेशिया में वो इस कदर मुश्किल और सकील हो गई कि नाजरीन नाटक देखने के साथ अपने सरों को खुजला-खुजला कर मतलब समझने की कोशिश करते नज़र आये।''* [39]

---

[38] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक-58; अप्रैल-जून, 2016; पृ. 74

[39] आजमी, अनीस; 'हबीब तनवीर : एक मुख़्तसर तआर्रुफ़'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103 (2003); पृ. 138

सुन बहरी

यह बी.बी. सी. का प्रोजेक्ट था जिसके तहत कुष्ठ उन्मूलन चेतना फैलाने के लिए एक नाटक तैयार करना था। उन्होंने एक नाटकीय कथा के जरिये लोगों को कुष्ठ की चेतना से अवगत कराया। *''इसमें बाबूलाल नाम के एक व्यक्ति के जिन्दा दफन होने की सूचना का पता लगाने के लिए पुलिस आती है। समाजसेवी गोरखनाथ हैं और एक चेतना है जो कुष्ठ रोगियों को शराब की भट्टी में मुफ्त दवा देता है। चेतना गाँव में आकर कुष्ठ रोग के बारे में फैली भ्रांति दूर करता है, बाद में पता लगता है कि चेतना ही बाबूलाल है। यह एक तरह का पोस्टर प्ले था। हबीब तनवीर ने ऐसे बहुत से छोटे-छोटे नाटक किये जो किसी मंत्रालय या फंडेड परियोजना का अंग थे।...चूँकि वे और उनका नाट्य दल पूरी तरह से रंगमंच पर ही आश्रित थे, उनके पास एक बड़ी टीम थी। उनको चलाने के लिए उन्हें पैसा चाहिए था और वह पैसा उन्हें इस तरह की प्रस्तुतियों से मिलता था। खास बात यह थी कि ऐसी प्रस्तुतियों में भी वह शैली, समाज और राजनीति को छोड़ते नही थे।''*[40]

उपरोक्त विवेचन के उपरांत कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर के मौलिक नाटक विषय वस्तु की दृष्टि से उनके अन्य नाटकों से अलग नहीं दिखते हैं। क्योंकि यहां भी अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को छोड़ते नहीं हैं। समाज की समस्याओं को उठाते नजर आते हैं। ये नाटक न तो किसी अन्य भाषा के नाटकों के अनुवाद है और न ही किसी विशेष लोक कथा या शैली को आधार बना कर रचे गए हैं। यह तो हबीब के दिलो दिमाग में अंकुरित होते विभिन्न भावों की उपज भर हैं।

---

[40] कुमार, अमितेश; 'हबीब तनवीर की रंगमंचीय प्रयोगशीलता'; अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक 58, अप्रैल-जून 2016; पृ. 74

3.3 लोक कथाओं आदि से संबंधित नाटक

हबीब तनवीर का विचार था कि लोक रंगमंच और बोलियों का रंगमंच ही सबसे सशक्त है। उनकी रंग चेतना उस सोच पर आधारित है जहाँ लोक परम्पराओं की सृजनात्मक क्षमताओं और ऊर्जा का स्वीकार्य है। यही कारण है कि वे इन परम्पराओं से गीत-संगीत, शैली कुछ भी लेने में जरा भी हिचकते नहीं। *''हिंदी रंगमंच में लोक शैली, परम्पराशील नाट्य का आधुनिक मुहावरा उन्होंने सृजित किया। इस नवाचारी रंग उपक्रम से हिंदी रंगमंच को नई शैली, नया आकार, नया विस्तार मिला।''*[41]

जाहिद खान का मत है कि *''लोक अदब और लोक रियायतों से हबीब तनवीर को बेहद लगाव था। उन्होंने कई लोक कथाओं को विकसित कर नाटक में तब्दील किया। मसलन जालीदार पर्दे- एक रुसी लोक कथा पर आधारित है तो सात पैसे- चेकोस्लोवाकिया की लोक कथा। अर्जुन का सारथी- छत्तीसगढ़ी कहानी, गाँव के नांव ससुराल मोर नांव दामाद-छत्तीसगढ़ी लोक कथा, ठाकुर पृथ्वी पाल सिंग- राजस्थानी लोक कथा, बहादुर कलारिन – आदिवासी लोक कथा पर आधारित नाटक है। इस नाटकों की खासियत ये है कि तनवीर ने इन लोक कथाओं को सीधे-सीधे ड्रामा रूप में तब्दील नहीं किया है बल्कि लोक कथा के केंद्रीय विचार को अपने हिसाब से विस्तारित किया इम्प्रोवाईज किया। यही नही, इन नाटकों को उन्होंने मौजूदा परिवेश से भी जोड़ा जो लोगों को खूब पसंद आया।''*[42]

'गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद', 'अर्जुन का सारथी', 'राजा चंबा और चार भाई', 'चरनदास चोर', 'शाही लकड़हारा','जानी चोर', 'प्रह्लाद नाटक','भारतलीला', 'चंदैनी', 'जमादारिन', 'बहादुर क्लारिन', 'देवी का वरदान', 'सोन सागर', 'मंगलु दीदी', 'हिरमा की

---

41 शर्मा, डॉ. कुंज बिहारी; छत्तीसगढ़ : हिंदी रंगमंच; वैभव प्रकाशन, रायपुर, छत्तीसगढ़; संस्करण 2008; पृ. 36

42 खान, जाहिद; 'एक लोक धर्मी आधुनिक'; अशोक वाजपेयी (सं.); नटरंग, 86-87, जुलाई-दिसम्बर, 2010; पृ. 55

अमर कहानी' आदि उनके ऐसे नाटक हैं जहाँ उनकी शैली की छाप देखी जा सकती है।

गाँव का नाम ससुराल, मोर नाम दामाद

इस नाटक का निर्माण रायपुर में आयोजित 'नाचा' की एक कार्यशाला के दौरान किया गया था। इसमें छत्तीसगढ़ के तीन लोकनाट्यों 'छेर-छेरी', 'बुढवा विवाह' और 'देवार-देवारिन' के चुनिंदा प्रसंगों को एक नाटक में पिरोया गया। कई प्रसंगों को मिलाने से उनके जोड़ दिखाई देने के बावजूद भी इस नाटक में रोचकता और विनोदपूर्व स्थितियां व चरित्र हैं, जिनसे सामाजिक विषमताओं और देहाती जीवन की कुरीतियों पर हल्का-सा व्यंग्य उभरता है।

इस नाटक के कथा के बारे में हबीब तनवीर ने लिखा है, *''छत्तीसगढ़ में शरद पूर्णिमा के दिन एक त्यौहार मनाया जाता है जिसे 'छेर-छेरा' कहते हैं। इस त्यौहार के दिन नौजवान लड़के अनाज और सब्जी लोगों से मांगकर जमा करते हैं और बाद में पूरा युवक समाज त्यौहार के मौक़े पर पिकनिक मनाता है। त्यौहार के दिन झंगलू और मंगलू गाँव के दो लड़के शांति और मानती के साथ छेड़छाड़ करते हैं। इसी बीच झंगलू को मानती से प्रेम हो जाता है। मानती का पिता इस निर्धन लड़के के बजाए एक बूढ़े मालदार सरपंच से मानती की शादी कर देता है। झंगलू अपने मित्र के साथ लड़की की तलाश में निकल जाता है। लड़के देवार जाति के लोगों का वेश बदलकर सरपंच के गाँव पहुँच जाते हैं। उसे छेड़ते और तरह-तरह से बेवकूफ़ बनाते हैं। इस समय गाँव में शंकर पार्वती की पूजा हो रही है जिसे 'गौरी-गौरा' कहते हैं। इस संस्कार में मानती भी शामिल है। झंगलू इस दौरान किसी तरकीब से अपनी प्रेमिका को भगा ले जाता है। नाटक प्रेम की जीत के गीतों पर समाप्त होता है।''* [43]

इस प्रकार नाटक को बहुत बनावटी रूप दिए बिना ही सार्थक बनाने की बेहतर कोशिश

[43] तनवीर, हबीब; गाँव के नांव ससुरार मोर नांव दमाद; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. भूमिका से.

की गई है। *''नाटक की सार्थकता एक तो इस बात में है कि पारंपरिक और लोक जीवन की कथा–सामग्री को नये ढंग से काम में लाने की कोशिश करता है। दूसरे, उसमें गीत, संगीत, नृत्य, प्रहसन, अभिनय, सामाजिक-धार्मिक अनुष्ठान तथा समसामयिक जीवन पर चुटीली टिप्पणी के कल्पनाशील संयोजन द्वारा एक प्रामाणिक और कलात्मक दृष्टि से आत्मसंगत नाट्य रूप का आधार दिखाई पड़ता है। इसलिए अपने आप में किसी बहुत महत्त्वपूर्ण, सूक्ष्म या गहरे अनुभव के अभाव में भी, वह नाटक लेखन के लिए नयी दिशाओं का सूचक है।''*[44]

इस नाटक की निर्माण प्रक्रिया के माध्यम से वे पहली बार लोककथाओं और लोकशैलियों में छिपी नाटकीय सम्भावना की शक्ति से परिचित होते हैं। नेमिचंद जैन का इस नाटक के बारे में विचार है *''प्रदर्शन में कथ्य और नाट्यरूप की आत्मा को बनाए रख कर एक तरह की सूक्ष्म कलात्मकता मौजूद थी, जो संरचनाओं, समूहनों,अभिनय क्षेत्र के भरपूर उपयोग में, तथा कार्य-व्यापार की निरंतरता के लिए इस्तेमाल की गई युक्तियों में दिखाई पड़ती है। संगीत और नृत्य का उपयोग भी बड़ा आकर्षक था। साथ ही छत्तीसगढ़ देहातों के शौकिया और पेशेवर गायक-अभिनेताओं की मिली-जुली मण्डली ने अभिनय भी बड़ी सहजता और आत्मविश्वस से किया।''*[45]

चरनदास चोर

'गाँव के नाम ससुराल, मोर नाम दमाद' के प्रयोग की सफलता ने इस नाटक के लिए रास्ता बनाया। इस नाटक की पृष्ठभूमि में राजस्थान के बोरुंदा में हुई ख्याल की एक कार्यशाला थी। इस कार्यशाला में प्रस्तुति के लिए हबीब ने विजयदान देथा की एक कहानी 'ठाकुर रो रूसनो' को चुना। मंचन के दौरान इसका नाम 'ठाकुर पृथिपाल सिंह' रखा गया था। इसी कार्यशाला में

---

[44] जैन, नेमिचंद; तीसरा पाठ; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1998; पृ. 223

[45] वही, पृ. 223-224

हबीब ने देथा की एक दूसरी कहानी 'सच्चाई की बिसात' को भी प्रस्तुत करना चाहते थे। लेकिन तब बात बनी नहीं। बाद में इन्होंने भिलाई कार्यशाला में पहले 'चोर चोर' नाम से इसे खेला। बाद में इस नाटक का नाम 'चरनदास चोर' हुआ। हबीब ने *''इस राजस्थानी कथा को सत्यनामी बना दिया और उसका नाम सत्यनामी सम्प्रदाय के अनुसार 'चरनदास' रख दिया।''*[46]

हबीब तनवीर का यह नाटक देश-विदेश में सबसे ज्यादा लोकप्रिय नाटक रहा है। इसकी लोकप्रियता के सम्बन्ध में हबीब ने लिखा है, *''यह नाटक भारतवर्ष के कई बड़े- छोटे शहरों में खेला जा चुका है, साथ ही यूरोप के कई देशों में भी। हर जगह इसकी सराहना हुई है और नाटक के पहले प्रदर्शन से लेकर अब तक, अब जबकि यह नाटक प्रेस में जा रहा है, इस नाटक के लगभग पांच सौ शो ओ चुके हैं।''*[47]

हबीब ने नाटक में चोर की इस लोक कथा को दो अंकों में प्रस्तुत किया है। पहले अंक में चार दृश्य और दूसरे अंक में पांच दृश्य है। नाटक में छत्तीसगढ़ के लोक गीत, संगीत, नृत्य, आदि का प्रयोग भी आकर्षक है। देखा जाए तो यह नाटक एक सामान्य लोक कथा है जिसमें वे आधुनिक और सामाजिक विसंगतियों को उभरने के साथ-साथ एक बेहद रचनात्मक लोकनाट्य रूप देने में सफल रहे हैं।

यह प्रशासन के खिलाफ नाटक है जिसमें सिस्टम की बुराइयों को उजागर किया गया है तथा यह बताया गया है कि किस तरह से प्रशासन का खोखलापन और अन्य बुराइयाँ समाज में अच्छाइयों को पनपने नहीं देती। पुरे सड़े-गले सिस्टम में सच बोलने वाला एक व्यक्ति किस तरह फंसा हुआ है, यह इसके कथानक से स्पष्ट हो जाता है। नाटक में मानवीय संवेदनाएं, धर्म, संस्कृति, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, वेशभूषा, गीत-संगीत तथा नृत्य सब कुछ मिल कर एकलोक रंगमंच का

---

[46] सहाय, डॉ. लक्ष्मण; रंगकर्म और नाटकार; तरुण प्रकाशन, गाजियाबाद; संस्करण 2016; पृ. 165

[47] वही, पृ. 164

निर्माण करते हैं। इसमें दिखाया गया है कि नाटक को किस तहर से एक जनपद की संस्कृति से जोड़ने की प्रक्रिया में छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य 'नाचा' और प्रचलित 'सतनामी सम्प्रदाय' से जोड़ा गया है। साथ ही इसमें ब्रेख्त के प्रभाव को भी देखा जा सकता है।

पोंगा पंडित

छत्तीसगढ़ी में नाचा के एक लोकप्रिय प्रहसन पर आधारित 'पोंगा पंडित' (जिसे 'जमादारिन' के नाम से भी खेला गया है) को हबीब तनवीर ने कई बार प्रस्तुत किया है। यह हिंदू धर्म में व्याप्त कुरीतियों और पोंगा पंथी पर प्रहार करते हुए पुरोहितवाद की खुली आलोचना करता है। नाटक के सन्दर्भ में हबीब तनवीर बताते हैं, *''राजनांद गांव के ग्रामीणों ने 1935 में जब इस नाटक की कल्पना की थी तो इसका नाम 'पोंगा पंडित' ही रखा था। मैंने इसे 1960 में पहली बार देखा। नाटक मुझे बहुत पसंद आया और जब दो एक साल बाद मैंने इसे लोगों को दिखाना शुरू किया तो इस नाटक का नाम जमादारिन रख दिया, क्योंकि नाटक का धार्मिक विषय उसी पात्र के माध्यम से विकसित होता है।''*[48] इसमें जमादारिन को मुख्य रूप से केन्द्रित करते हुए पंडित के लालची चरित्र को भी दिखाया गया है।

नाटक की कथा में भकला अपने पिता की मृत्यु के बाद सत्यनारायण की कथा कहलवाने के लिए एक पंडित को घर लाता है। यहाँ भकला और पंडित के आपसी संवाद और क्रियाकलाप हास्य-व्यंग्य की स्थिति पैदा करते थे। इसी बीच जमादारिन का प्रवेश होता है। पंडित को जमादारिन के छूने से परहेज है लेकिन आरती में उसके द्वारा चढ़ाए गए पैसे से नहीं। धीरे-धीरे छूते हुए जमादारिन भगवान और आखिर में पंडित को भी छू लेती है। 'स्वर्ण कुमार साहू द्वारा लिखी गई जमादारिन में जमादारिन द्वारा गाए गए गीतों में वाल्मीकि, व्यास, कर्ण और अन्य लोगों का

---

[48] पोंगा पंडित और हबीब तनवीर; प्रगतिशील लेखक संघ का प्रकाशन; महावीर प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2012; पृ. 12

उल्लेख है जिन्होंने जन्म से नहीं बल्कि कर्मों से महानता हासिल की।'

कुल मिलकर *''जमादारिन जाति व्यवस्था पर हास्य के साथ धर्म के विचलित कर देने वाले रूप की भर्तसना करता है।''*[49] इस प्रहसन के माध्यम से छुआ-छूत जैसी कुरीतियों का विरोध भी हबीब तनवीर करना चाहते थे। इस नाटक के चलते हबीब तनवीर का हिंदूवादी सांप्रदायिक शक्तियों ने कड़ा विरोध किया था। लेकिन हबीब ने भी हिम्मत नहीं हारी, वह बार-बार इसका प्रदर्शन करते चले जा रहे थे।

बहादुर कलारिन

बहादुर कलारिन नाटक का सृजन छत्तीसगढ़ की लोक-कथा के आधार पर हुआ है। इस नाटक की मूल कथा बहुत छोटी है किन्तु वह जीवन में व्याप्त अंतर्विरोधों की छानबीन के मामले में हमें बहुत अर्थमूलक और बुनियादी प्रश्नों तक ले जाती है। इसमें छोटे तबके के लोगों की नियति के साथ ही सुख के लिए मनुष्य की खोज की मार्मिक पड़ताल की गई है। नाटक में बीस पात्र हैं, जिसमें बारह पुरुष और आठ महिला पात्र हैं। हबीब ने इस कथा को कल्पना के माध्यम से दस दृश्यों में नियोजित किया है। उन्होंने अंक और उसके दृश्यों के सिद्धांतों का प्रयोग वस्तु-विन्यास में नहीं किया है। पुरानी परिपाटी अंक-दृश्य को तोड़कर नये दृश्य-सिद्धान्त का अनुगमन किया गया है।[50]

नाटक में एक कलार यानी शराब बेचने वाली औरत, जिसका नाम बहादुर है, उसे कथानक में उभारा है। इस मिथक से सम्बंधित कुछ साक्ष्य उस इलाके में बिखरे पड़े हैं जिसका विवरण नाटक की भूमिका में विस्तार से दिया गया है। 'बहादुर कलारिन' का मिथक छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के तहसील बालोद के सोरर और चिरचारी गाँव से सम्बन्ध है। हबीब तनवीर लिखते

---

[49] अग्रवाल, महावीर; छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य : नाचा; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 1997; पृ. 199

[50] सहाय, डॉ. लक्ष्मण; रंगकर्म और नाटककार; तरुण प्रकाशन, गाजियाबाद; संस्करण 2016; पृ. 167-168

हैं, *"सन 1975-76 में इन देहातों का चक्कर मैंने पहली बार लगाया। उस समय तक गाँव के कुछ सयाने थे जो बहादुर और उसके बेटे का किस्सा जानते थे। 'दुर्ग परिचय' शीर्षक से एक छोटी-सी किताब मेरे हाथ आ गई थी जिसे राजनांदगांव के हिंदी साहित्यकार बलदेव प्रसाद मिश्र ने लिखा था।... इसी किताब में एक- दो पृष्ठ में बहादुर कलारिन का मिथक भी दर्ज था।"*[51]

बहादुर की इस कथा को हबीब ने छत्तीसगढ़ के देहाती लोगों की जुबानी सुना था। इस मिथक के अनुसार बहादुर एक खूबसूरत औरत थी जो शराब बेचने का काम करती थी। उसके बेटे छछन छडू ने एक सौ छब्बीस शादियाँ की थीं। लेकिन अंततः उसने अपनी माँ को ही वासना की नजर से देखा। माँ यह जानकर हैरान थी और उसने अपने ही बेटे को मारने का फैसला लिया। उसने जानबूझ कर उसे ज्यादा मिर्च मसाले वाला खाना खिलाया और घर के सारे बर्तन खाली कर दिए। उसने गाँव वालों को पानी देने से मना पहले ही कर दिया था। अब बहादुर ने उसे ही कुएं से पानी लाने को कहा और मौका पाते ही उसे कुएं में धकेल दिया। इसके बाद उसने अपने सीने में कटार भोंककर आत्महत्या कर ली।[52]

इस छोटी सी कथा पर नाटक लिखने के लिए हबीब तनवीर ने नाटक की भूमिका में तर्क भी दिए हैं। वे लिखते हैं, *"दरअसल लोक-कथा तो केवल माँ-बेटे के बारे में थी। प्रेमी, जिसके माध्यम से छाछन छाडू ने जन्म लिया, उसका न कोई जिक्र था और न उसका व्यक्तित्व कथा के अंदर दिखाया गया था। यह मेरी अपनी कल्पना की चीज़ थी। मेरे ज़ेहन में राजा इडिपस (Oedious Rex) का मिथक भी था। हमारे शास्त्रों में भाई-बहन के यौन-सम्बन्धों की ओर इशारा तो मिलता ही है, लेकिन एक लोककथा में 'इडिपस कॉम्प्लेक्स' जैसी मनोवैज्ञानिक बात की*

---

[51] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 5

[52] सहाय, डॉ. लक्ष्मण; रंगकर्म और नाटककार; तरुण प्रकाशन, गाजियाबाद; संस्करण 2016; पृ. 167

गहराई देखकर मुझे अचम्भा हुआ था और एक प्रकार का गौरव भी महसूस हुआ था।''[53]

देखा जाए तो यह नाटक एक ट्रेजडी है। निर्देशक ने छछांक की अतृप्ति को अधिक नहीं उभारकर इस प्रसंग के जरिए स्त्री की घुटन और गुलामी को प्रस्तुत किया है। एक- के- बाद-एक सद्य परिणिता स्त्री धान कूटने का मूसल थाम कर विवश और चुपचाप गृहस्थी में खटती जा रही है। इसी अवसर पर पिरोया गया लोक नृत्य तमाम स्त्रियों के दुःख की तीखी अभिव्यंजना करता है। छछांक की हत्या एक अत्याचारी की हत्या है, जिसको हबीब ने बहुत ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया।

नाटक में राजा और छछांक की हत्याओं के प्रसंग भी जबर्दस्त प्रभाव रचते हैं। पहले प्रसंग में छछांक द्वारा की गयी राजा की हत्या अन्यायी और आतंककारी के प्रतीक की हत्या न होकर एक पिता की हत्या है, चूँकि यह हत्या व्यक्तिगत प्रसंग से ऊपर नहीं उठ पायी है। इसलिए आप राजा की हत्या को मंच पर रूपायित होते नहीं देखते हैं, आपको केवल युक्तियों से बता दिया जाता है कि राजा मार दिया जाता है, लेकिन बहादुर कलारिन द्वारा की गयी छछांक की हत्या का पूरा रूपायन हमारे सामने होता है। हम एक-एक क्षण में छछांक को तड़प-पड़पकर मरते हुए देखते हैं, क्योंकि यह एक व्यक्तिगत प्रसंग न होकर अत्याचारी के प्रतीक के हत्या के प्रसंग में बदल गया है।

भाव-वस्तु के रूप में, माँ के प्रति बेटे की आसक्ति, विस्फोटक और त्रासद नाटकीय संभावनाओं से भरपूर होते हुए भी भारतीय जन-मानस के लिए असामान्य और अभूतपूर्व है।

हबीब तनवीर ने इस नाटक के माध्यम से छत्तीसगढ़ी भाषा से सम्पूर्ण देश-विदेश को परिचित करा दिया है। नाटक के रंग-संकेत अभिनेताओं की मनोदशा और मनोदशानुरूप अंग-

---

[53] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 8-9

संचालन को दिशा प्रदान करते हैं। चूंकि इस नाटक की लोक-कथा, भाषा, लोक-नाचा और लोकगीत छत्तीसगढ़ के ही हैं। इसलिए कह सकते हैं कि 'बहादुर कलारिन' का शरीर और आत्मा छत्तीसगढ़ के ही हैं तथा कथा की समस्या मात्र छत्तीसगढ़ की न होकर देशव्यापी है।

हिरमा की अमर कहानी

यह नाटक आदिवासी जनजीवन के इतिहास में उनकी परम्परा और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए आदिवासियों पर होने वाले अत्याचार की एक गाथा है। इस नाटक में तितुर बसना के आदिवासी राजा के माध्यम से आजादी के बाद राजघरानों को मिलाने और इससे जुड़ी समस्याओं को दिखाया है। साथ ही राजनीति के दांवपेंच पर भी इसमें जमकर प्रहार किया है। नाटककार आदिवासी क्षेत्रों में विकास की नीतियों में परिवर्तन का पक्षधर है। *"सरकारी तंत्र में अधिकारियों की शोषण प्रवृति ने यहां के स्वच्छंद विचरण करने वाले आदिवासियों को जंगल अब कारागार की तरह प्रतीत होते हैं। इन्हीं विसंगतियों के विरुद्ध आवाज उठाने वाले 'हिरमा' की निर्मम हत्या को राजनैतिक स्वरूप दिया गया। वास्तविकता इससे भिन्न है। यह जनजातियों के अपने नैसर्गिक जीवन के लिए संघर्ष के साथ ही साथ सरकारी कर्मचारियों, व्यापारियों, एवं अन्य मुनाफाखोरों के विरुद्ध बगावत है।"* [54] आदिवासियों के विकास प्रश्न को उनकी कठिनाइयों और अंतर्विरोध के साथ पूरे तथ्यों को सामने रखते हुए नाटककार ने अपना दृष्टिकोण सामने रखा है।

नाटक की शुरुआत कलेक्टर (सूत्रधार) के प्रवेश से होती है। नाटक की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, *"ये कहानी आदिवासी रियासत तितुरबसना की है। वहां के महाराज हिरमादेव सिंह गंगबंसी हैं।... मैंने आदिवासी राज में सामंतवाद देखा है। सामंतवाद को ख़त्म करके लोकतंत्र को कैसे स्थापित किया जाये। मैं इस संघर्ष में लग गया। संघर्ष के रास्ते में बहुत*

[54] अग्रवाल, महावीर; छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य: श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 1997; पृ. 130

ऊँच-नीच देखी और यही हमारे नाटक का विषय है।" [55]

हिरमा की अमर कहानी एक दुखांत नाटक है, जिसमें आदिवासी जीवन के सामाजिक पहलू हैं। 'हिरमा की अमर कहानी' बेहद पिछड़े इलाकों के आदिवासी लोगों के तथाकथित सरकारी विकास की विसंगतियों तथा सामंतवाद एवं लोकतंत्र के संघर्ष की त्रासदी को दिलचस्प लोक रंग शैली में प्रस्तुत करता है।

इस तरह निर्देशक ने बढ़ी गहराई से इस विषय को समझते हुए एक साथ कई सवाल उठाए गए हैं। *"राजनेता हो या जमींदार या भ्रष्ट अधिकारी वर्ग किस तरफ ये लोग कभी न्याय और व्यवस्था के नाम पर कभी विकास के नाम पर मानवीय मूल्यों की बलि देते हैं इसका सजीव चित्रण हिरमा की अमर कहानी में दिखलाई पड़ता है।"* [56] नाटक में कथानक और भाषा का परस्पर तालमेल बहुत बढ़िया हुआ है। इसमें महत्त्वपूर्ण दृश्यों और घटनाक्रमों के बाद गीत या नृत्य का प्रयोग भी जमकर हुआ है। सम्पूर्ण नाटक में आदिवासी गीतों, नृत्यों की छटा निराली है। इन नृत्यों में मोखपाल (दंतेवाड़ा), रेमाबांड (नारायणपुर), करिहा (कांकेर) दल प्रमुख हैं जिन्होंने रेलो, गौरा, पाटा, विज्जा और बिहाव नृत्य प्रस्तुत किये।

सोन सागर

'बहादुर कलारिन' के बाद हबीब तनवीर ने 'सोन सागर' में छत्तीसगढ़ की लोक शैली चंदैनी की काल्पनिक नायिका चंदा के रूप में फिर एक सशक्त महिला चरित्र को प्रस्तुत किया। पंडवानी शैली के कथा गायक के महाभारत की कथा गाने की तरह चंदैनी का कथा गायक भी कई रातों में अपनी कथा पूरी करता है। मुख्य कलाकार गाता है, कथा सुनाता है और नाचता है। इसके चार-पांच साथी होते हैं, जो विभिन्न वाद्य बजाते हैं तथा गायन में भी मुख्य कलाकार का

---

[55] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्रीप्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 150

[56] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 70

साथ देते हीं। पंडवानी की तरह यह शैली उतनी लोकप्रिय नहीं है। क्योंकि इसमें महाभारत की कथा नहीं है।

चंदैनी की कथा लौकिक है, मौखिक है और उतनी परिचित नहीं अतः इसमें नाच, गान और संगीत कहानी से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते है। सोन सागर लोरिक और चंदा की कहानी है जो छत्तीसगढ़ में चंदैनी और बिहार में लोरिकायन के नाम से प्रसिद्ध है। पहला नाम नायिका चंदा को और दूसरा नाम नायक लोरिक को महत्त्व देता है। अतः एक ही कथा दो क्षेत्रों में भिन्न रूप प्राप्त करती है। छत्तीसगढ़ी चंदैनी में नायिका अधिक शक्तिशाली होकर उभरती है। चंदैनी में नायिका अधिक शक्तिशाली होकर उभरती है।

'सोन सागर' में चंदा यानी नारी द्वारा स्वयं जीवन साथी के अधिकार की बात उठाकर उसे समकालीनता से जोड़ा गया है। चंदा अपने पिता के निर्णय को स्वीकार नहीं करती वरन विद्रोही होती हुई एक स्वतंत्र चेता नारी के रूप में सामने आती है। *"लोरिक के माध्यम से हबीब तनवीर ने यह संकेत दिया है कि जमीन उसकी होनी चाहिए जो उसे जोतता है। सोन सागर के सारे संवाद और गीत हबीब तनवीर जी ने लिखे।"*[57] इस नाटक को हबीब तनवीर अपनी ख्याति के अनुरूप नहीं ढाल पाए। उनके कल्पनाशील मंच-विधान,समृद्ध सांगीतिक शैली, प्रभावी रंग प्रस्तुति और भरपूर मनोरंजन क्षमता का स्वर धीमा पड़ गया। लोरिक चंदा का पुनर्सृजन करते हुए हबीब ने अनेक गीतों के माध्यम से कथा को कसने का प्रयास ज़रूर किया है। समूची प्रस्तुति मे दूसरे सूत्र और स्थितियों का प्रयोग तो उन्होंने शानदार तरीके से किया है परन्तु ये स्थितियां लोरिक-चंदा की प्रेमगाथा पर हावी हो गई।

हबीब तनवीर का मुख्य आधार चंदैनी था तथापि उन्होंने उसमें बहुत अधिक संपादन किया था। उन्होंने कहानी के ग्राम्य तत्त्वों को प्रमुखत दी थी। इसमें जादू तथा अलौकिक कथाओं

---

[57] अग्रवाल, महावीर; छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य: नाचा; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 1997; पृ. 199

को छोड़ दिया था। सोन सागर गौरा के राजा मौहर की भैंस है जो सुनहले बछड़ों को जन्म देती है। एक बार बारह भैंस चोरी करके ले जाया जाता है और कथैल का लड़का बछड़ों को छुड़ाता है। राजा मौहर बदले में कथैल और खुलना की संतान से अपनी संतान का विवाह करने का वचन देते हैं। कथैल और खुलना का एक बेटा है लोरिक और मौहर के एक बेटी है चंदा, लेकिन मौहर अपना वचन भांग करके अपनी बेटी का विवाह कथैल और खुलना के एक अमीर रिश्तेदार गढ़रेओना के राजा बौरेया के बेटे बावन के साथ करना तय करते हैं। चंदा इस विवाह को अस्वीकार करती है और जब एक शाप के कारण बावन के कोढ़ी हो जाने पर उसकी जगह लोरिक गौना करने आता है तो वह लोरिक के साथ भाग जाने का निर्णय लेती है। बावन शाप से मुक्त होकर ठीक हो जाता है और तब जंगल-जंगल, शहर-शहर प्रेमी युगल को मार डालने के इरादे से ढूंढता फिरता है। लेकिन चंदा की लगन और लोरिक के सौतेले भाई की बहू की सहायता के फलस्वरूप दोनों बच जाते हैं और सुख से जीवन बिताते हैं।

हबीब तनवीर ने अपना यह नाटक श्रीराम सेंटर के तलकक्ष में खेला जो उनके अधिकांश अन्य नाटकों की तरह छत्तीसगढ़ी बोली में ही था। नेमिचंद जैन लिखते हैं, *''नाटक का कथानक उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश में लोकप्रिय लोरिक और चंदा की प्रेमगाथा से लिया गया था, जिसके गीतों में टिप्पणी द्वारा अथवा कथा या चरित्रों में किसी विशेष पक्ष पर ज़ोर देकर समकालीन प्रासंगिकता लाने की कोशिश भी की गई है। कथा अपने में बड़ी आकर्षक है और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उसका बड़ा ही मनोहारी और प्रभावपूर्ण उपयोग अपने उपन्यास पुनर्नवा में किया है। हबीब तनवीर ने अपना नाट्यालेख छत्तीसगढ़ी क्षेत्र में लोकप्रिय गाथा-गायन चंदैनी के आधार पर तैयार किया है। बल्कि बीच-बीच में कथा को जोड़ने या टिप्पणी के लिए चंदैनी गाथा-गायन के ही कुछ टुकड़ों का इस्तेमाल किया गया है और कुछेक गीतों की धुनें भी चंदैनी की ही है।''* [58]

[58] जैन, नेमिचंद; तीसरा पाठ; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 1998; पृ. 25

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर की ख्याति का मुख्य आधार लोक शैलियों, लोक कथाओं से जुड़े हुए ये तमाम नाटक रहे हैं। हबीब तनवीर की इस पहल के कारण ही हिंदी रंगमंच पर लोक की इस नई प्रवृति ने कदम रहा। अपने रंगकर्म की शुरुआत से लेकर अंत तक हबीब तनवीर लगातार लोक शैलियों के माध्यम से विभिन्न प्रयोग करते रहें।

3.4 अनुदित / रूपांतरित नाटक

हबीब तनवीर के मौलिक और आधारित नाटकों के बाद उनके अनुदित या रूपांतरित नाटकों का स्थान आता है। रूसी नाटक 'दी फेमिनिन टच' का भारतीय रूपांतर 'जालीदार पर्दे' उनका पहला रूपांतर है, जो सन 1952 में बंबई में खेला था। एक अंग्रेजी एकांकी पर आधारित 'फांसी', मोरियर के 'बुर्जुआ जेंटलमैन' पर आधारित 'मिर्जा शोहरत बेग' (1959) जो बाद में 'लाला शोहरत राय' के नाम से छत्तीसगढ़ी बोली में रूपांतरित किया गया। बर्तोल्ट ब्रेख्त के 'दी गुड परसन ऑफ सेतजुआन' का रूपान्तर 'शाजापुर की शांतिबाई' (1978) और गोगोल के 'दी गवर्नमेंट इंसपेक्टर' का रूपांतर 'शाह बादशाह' (1980) आदि उल्लेखनीय है। यद्यपि ये सभी रचनाएँ नाटक थीं पर हबीब ने अनुवाद न करके उनका भारतीय रूपान्तर किया। *"ये रूपान्तर अनुवाद के निकट होते हुए भी अनुवाद नहीं हैं, क्योंकि इनमें थोडा हेर-फेर किया गया, ऐसा करने में ही हबीब का मौलिक योगदान था।"* [59] हबीब तनवीर ने प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का रूपान्तर 'शतरंज के मोहरे' के नाम से किया। यह उनके द्वारा रूपांतरित और निर्देशित पहला रंगमंचीय नाटक था, जिसमें उन्होंने सूत्रधार की भूमिका निभाई। यह उनके अंतर्मन के प्रशिक्षण का दौर कहा जा सकता है, *"जिससे गुजरने पर उनके मन में एक निजी मुहावरे की तलाश की भूख जागी।"* [60]

---

[59] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 105

[60] शुक्ल, प्रयाग (सं.); रंग प्रसंग; जुलाई-सितम्बर, 2004; पृ. 16

संस्कृत नाटकों के रूपांतर, अनुवाद और प्रयोगात्मक प्रदर्शनों द्वारा प्राचीन नाट्य-परम्परा का पुनरुथान बहुत ही उपयोगी था। समसामयिक रंगमंच कलाओं का प्राचीन परम्परा के साथ पुनः नया सम्पर्क स्थापित होने पर हमारे नए रंगमंचीय नवोत्थान आन्दोलन को बहुत बड़ी शक्ति मिली।... हबीब ने संस्कृत नाटक मृच्छकटिक का अनुवाद हिंदी में 'मिट्टी की गाड़ी' के नाम से किया। इसके अतिरिक्त भवभूति का 'उत्तररामचरित' तथा भास के तीन नाटक 'दुतवाक्यम्', 'पंचरात्रम्' और 'उरूभंगम्' को मिलकर एक साथ भासत्रयी को छत्तीसगढ़ी में रूपांतर कर उसे प्रस्तुत किया। *'' संस्कृत के नाटक ने हबीब जी को शुरू से ही आकृष्ट करते रहे, क्योंकि संस्कृत नाटकों की नाट्यधर्मी शैली और लोकनाट्य शैली में उन्हें अद्भुत समानता दिखलाई दी।''*[61]

आज भी संस्कृत नाटकों के मंचन की समस्या का समाधान लोकनाट्य-रूढ़ियों के माध्यम से सहज ही हो सकता है। इस दृष्टि से हबीब का 'मिट्टी का गाड़ी' इसका सशक्त उदाहरण है।

मिट्टी की गाड़ी

सन् 1958 में हिन्दुस्तानी थियेटर के लिए प्रस्तुत किया गया यह नाटक संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' का नाट्य रूपांतर था। इसमें "निर्देशक के वक्तव्य के अनुसार पश्चिम की नाट्य-प्रदर्शन की अनेक रुढियों और लोकनाट्य–परम्पराओं से आने वाली रूढ़ियों और रंगमंच–व्यवहारों का सामंजस्य प्रस्तुत किया गया था।"62 जब हबीब अपनी यूरोप की यात्रा पर थे तब भी उन्होंने इस नाटक को विदेशी भाषाओं में प्रस्तुत करने के लिए काफी प्रयास किये जिसमें सफलता नहीं मिली। यूरोप की यात्रा से लौटने के बाद हबीब ने अपनी इस पहली प्रस्तुति में अनेक प्रयोग किए। चूँकि आंचलिक कलाकारों की सहजता और अभिनय क्षमता

---

[61] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 83

[62] अवस्थी, सुरेश; हे सामाजिक; वाणी प्रकाशन, संस्करण- 2002; नई दिल्ली; पृ. 122-123

का आस्वाद तो उन्हें 'आगरा बाज़ार' में ही मिल चुका था, इसीलिए अपने उस अनुभव के आधार पर हबीब ने इस नाटक में छत्तीसगढ़ के छह लोक कलाकारों को पहली बार मंच पर उतरा था। इस नाटक के लिए उन्होंने गाने नियाज हैदर से लिखवाये और धुनें अधिकतर छत्तीसगढ़ी लोक की इस्तेमाल की थी। परन्तु अभिजात्य वर्ग और संस्कृत रंगकर्मी और आलोचकों द्वारा नाटक पर कई कटाक्ष किये गए हैं।

'मिट्टी की गाड़ी' के प्रथम प्रदर्शन से तनवीर ने यह सबक लिया कि प्रचलित रंग-पद्धतियों के मिश्रित स्वरूपों के समन्वय का प्रयोग कैसे नहीं किया जाना चाहिए। अपने यूरोपीय रंगनुभावों को वे साथ लेकर आए थे। उनके मन में यह तो निश्चित था कि अपने मुहावरे के लिए उनकी अपनी जमींन ही उन्हें शक्ति देगी, लेकिन इसके बावजूद भी आधुनिक रंग-तकनीकों का उनके मानस पर कुछ तो प्रभाव पड़ा ही था। रंग-पद्धतियों के मिश्रित रूपों के प्रयोग से यह नाटक किसी एक निश्चित शैली का समन्वित आस्वाद देने में विफल हो गया। लेकिन अपनी विफलताओं का वे स्वयं मूल्यांकन करते रहे, बार-बार उन कारणों को खोजते रहे जो दर्शकों और अभिनेताओं की दृष्टि से उनकी प्रस्तुतियों की सफलता में बाधक रहे।

इस नाटक के कलाकारों के चयन की प्रक्रिया भी बड़ी रोचक रही। हबीब तनवीर जब 1958 में यूरोप से वापस आये तो 'मृच्छकटिक' शुरू करने से पहले वह अपने परिवार से मिलने के लिए रायपुर गए थे। वहां हाईस्कूल (जहाँ से उन्होंने शिक्षा पाई थी) के मैदान में 'नाचा' होने वाला था। उन्होंने पूरी रात नाचा देखा जो कि सामान्यतः नाचा की प्रस्तुति की अवधि है। उन्होंने अपने दल के छह सदस्यों के रूप में लोक कलाकारों को भर्ती कर लिया। ये छह लोग दिल्ली आए और इन्होंने 'मिट्टी की गाड़ी' में भाग लिया।

नाट्य पाठ के संदर्भ में बात करें तो संस्कृत नाटककार शूद्रक ने भास के 'दरिद्र चारुदत्त' की मूल कथा में शर्विलक की दिलचस्प कहानी जोड़कर इस नाटक को एक नया रूप प्रदान किया

था। अब इसमें एक तरफ चारुदत्त और बसंत सेना की प्रेम कथा है और दूसरी तरफ अत्याचारी राजा पालक के विरुद्ध शर्विलक का राजनैतिक आन्दोलन। नाटक के आखिर में दोनों ही कामयाब होते हैं। नाटक में घटनाएँ सहज रूप से आगे बढ़ती जाती है तथा संवेदनशील आदमी को आज के हालत की सच्चाइयों की भी झलक प्रत्येक दृश्य में मिलती है।

'मिट्टी की गाड़ी' के सभी प्रदर्शन पक्षों को यदि अलग-अलग ले तो हम देखते हैं कि नाट्यधर्मी और लोकधर्मी दोनों ही प्रकार की परम्पराओं की बहुत बड़ी अवहेलना इसमें की गई है। पात्र तरह-तरह की विचित्र वेशभूषा में प्रस्तुत किए गए हैं। वे घाघरे, लहंगे, धोतियों में आते हैं। सूत्रधार तो ओवरकोट पहने हुए पाईप पीता हुआ नाट्य प्रदर्शन की सूचना देता है। वेशभूषा के चुनाव और उसके प्रयोग में किसी तरह का विवेक और व्यवस्था नहीं है। अनेक शैलियों का यह मिला जुला रूप निर्देशन के सभी पक्षों में व्यक्त हुआ है, जिससे पूरे प्रदर्शन में किसी प्रकार की रूप और शैलीगत एकता नहीं आ सकी।

इस नाटक को देखने के बाद जयदेव तनेजा का विचार भी कुछ ऐसा ही है। वे लिखते हैं, *''बात लगभग मन से उतर गई थी और शायद किसी भी नाटक के अनुवाद का उत्साह फिर मन में न आता, यदि कुछ वर्ष पहले दिल्ली के रंगमंच पर मिट्टी की गाड़ी नाम से मृच्छकटिक का अभिनय न केवल देखा होता। हबीब द्वारा प्रस्तुत उस नाटक में जहाँ प्रयोग और शिल्प की दृष्टि से कई विशेषताएँ थीं, वहां उसकी सबसे बड़ी सीमा थी- अनुवाद की पांडुलिपि, जो शायद एक अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर तैयार की गई थी।''*[63] यह सही है कि इस नाटक की प्रथम प्रस्तति असफल रही क्योंकि हिंदी के संवाद अनपढ़ ग्रामीणों कलाकारों की जबान से कुछ अच्छा नहीं लगा। लेकिन बाद में तो हबीब तनवीर ने अपने अनुभवों के आधार पर इस नाटक में अनेकानेक परिवर्तन किए।

---

[63] तनेजा, जयदेव; नाट्य-विमर्श; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2017; पृ. 80

बाद के प्रदर्शनों में पूरा का पूरा नाट्य दल ही छत्तीसगढ़ी कलाकारों का था। वसंतसेना जैसी राज नर्तकी की भूमिका के लिए भी किसी शास्त्रीय नृत्यांगना की बजाय फ़िदा बाई को लिया गया। नाटक की भाषा को भी हिंदी के स्थान पर छत्तीसगढ़ी कर दिया गया, जिसमें आंचलिक अभिनेता पूरी सहजता और क्षमता के साथ अभिनय करने लगे। इस प्रकार यह नाटक जीवंत हो उठा। दर्शक वर्ग ही नहीं देश के वरिष्ठतम संस्कृत रंगकर्मियों ने भी इस प्रस्तुति की काफी प्रशंसा की। जैसे डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी ने कहा कि-

"संभवतः हिंदी भाषी क्षेत्र में पहली बार ऐसा प्रयोग रंग-निर्देशक हबीब तनवीर ने किया। सन 1957-58 में 'मृच्छकटिक' के रूपान्तर को लोक रंगशैली के मुहावरे में ढाल कर की गई उनकी प्रस्तुति संस्कृत नाटक और पारम्परिक रंगशैली के सामंजस्य का नया प्रयोग था। तनवीर का 'मृच्छकटिक' पर आधारित यह प्रयोग बाद के दशकों में भी जारी रहा और छत्तीसगढ़ी में 'मृच्छकटिक' का यह रूपांतर छत्तीसगढ़ की नाचा लोक रंगशैली तथा लोक संगीत के उपयोग से, संस्कृत नाटक के पुनराविष्कार का एक अत्यंत सार्थक समकालीन प्रयास रहा है।"[64]

कुल मिलकर कह सकते हैं कि नाटक 'मिट्टी की गाड़ी' से हबीब तनवीर का बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध हुआ। संस्कृत नाटकों को मंचित करने की जिस प्रणाली को उन्होंने अन्ततः खोज निकाला, यह प्रस्तुति उनकी पहली सीढ़ी थी।

मुद्राराक्षस

'मिट्टी की गाड़ी' के बाद हबीब को बेगम जैदी ने अपने नाटक कंपनी से निकाल दिया था। बेगम जैदी मिट्टी की गाड़ी के बाद विशाखदत्त के संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस की प्रस्तुति चाहती थी। लेकिन हबीब का मानना था कि यह एक कठिन नाटक है और उसको करने के लिए

---

[64] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 68

निर्देशक के रूप में और आगे के 5 साल का अनुभव चाहिए। बाद में हबीब ने इस नाटक को किया। 'मुद्राराक्षस' का पी. लाल द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद 'द सिग्नेट रिंग ऑफ मुद्राराक्षस' को हबीब तनवीर ने सबसे पहले 1965में अंग्रेजी भाषा में निर्देशन किया। 1968 में इस नाटक की फिर पुनर्प्रस्तुति की गई थी। हबीब तनवीर ने फिर काफी बाद में (1998) इसे हिंदी में अनुदित कर खेला और सफल हुए।

देख जाए तो यह नाटक पूरे तौर पर न दुखांत है और न ही सुखांत। इस नाटक की मूल कथा में यह है कि महानन्द भरे दरबार में चाणक्य का अपमान करता है और चाणक्य सम्पूर्ण नन्द वंश के विनाश का प्रण करता है। अपना प्रण पूरा करने के बाद चाणक्य चंद्रगुप्त मौर्य को मगध के राज्य सिंहासन पर स्थापित कर देता है। लेकिन राक्षस, जो महानंद का वफादार मंत्री रह चुका था, आसपास के राजा महाराजाओं से मिलकर पाटलीपुत्र पर चढ़ायी कर देने की ठान लेता है। चाणक्य यह नहीं चाहता कि राक्षस हाथ से निकल जाए वो उसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाकर खुद इस पदवी से हट जाना चाहता है। क्योंकि उसकी नजर में चन्द्रगुप्त को राज्य के संचालन के लिए राक्षस से बेहतर मंत्री नहीं मिल सकता था। उसके सामने मसला यह था कि राक्षस को चन्द्रगुप्त से मिला भी दें और उसे अपमानित भी महसूस न होने दें। वो युद्ध की भूमिका बनाये रखता है और अपने जासूसों के माध्यम से इस कठिन मुहीम में सफल होता है।

'मुद्राराक्षस' राज्य निर्माण जैसे विशुद्ध राजनीतक विषय पर लिखे इस नाटक का कथानक गुप्तचर और उनकी साजिशों पर आधारित है। भेदियों की डबल क्रासिंग को सहजतापूर्वक समझाने के लिए हबीब तनवीर ने जो पद्धति अपनायी है वह बड़ी दिलचस्प है। एक राज्य का गुप्तचर जब दूसरे राज्य में अपने ही राज्य का भेद बताते लगता है तो उस समय अपने चोगे को उलट कर पहनता है। हबीब लिखते हैं कि *''मैंने जब नाटक को पढ़ा तो मैं सम्मोहित हो गया। एक अद्वितीय राजनैतिक नाटक मैं पहले पाठ में उसकी कथावस्तु को समझ नहीं सक। मैंने गुप्तचरों को*

अलग-अलग करके समझने के लिए उसे दुबारा पढ़ा, क्योंकि इस बात को जान लेना कठिन है कि कौन किसकी जासूसी कर रहा है, यह बहुत उलझन भरा है। यह पूरे नाटक में चलता रहता है।... मैंने जब उसे प्रस्तुत किया तो क्या चल रहा है उसको समझाने के लिए एक पद्धति सोच निकाली। मैने दो प्रतीक चुने एक चाणक्य के लिए, एक राक्षस के लिए और दो रंग भी और मैंने जासूसों को दो रंग के परिधान दिए। तो वे खास रंग के पहनावे और खास प्रतीक के साथ आएंगे और आप देख लेंगे कि यह चाणक्य का आदमी है और ठीक आपके सामने वह अपने चोंगे को उलट देगा और उस दूसरे रंग को पहन कर दिखाने से आप समझ जाएंगे कि उसने अपना पाला बदल लिया है। तो यह युक्ति थी जो मैंने उसे सुबोध बनाने के लिए निकाली।'' [65]

लाला सोहरत राय

यह नाटक प्रख्यात फ्रांसीसी लेखक मौलियर के 'बुर्जुआ जेंटलमैन' का छत्तीसगढ़ी रूपांतरण था जिसे हबीब तनवीर ने पहले 'मिर्जा शोहरत बेग के नाम' से मंचित किया गया था। जमाने की अंधी दौड़ में शामिल व्यक्ति की हास्यास्पद स्थिति को बिंबित करता हुआ यह नाटक ऐसे वर्ग पर व्यंग्य करता है जो निपट धनी होने के कारण सब कुछ सीख या पा लेना चाहता है।

नाटक का कथानक लाला के इर्द-गिर्द घूमता है। नाटक में शोहरत राय एक कपड़े बेचने वाला छत्तीसगढ़ी बनिया है जो शहर के बड़े लोगों की नकल में छत्तीसगढ़ी भाषा छोड़कर हिंदी की खड़ी बोली और अंग्रेजी सीखता है। साथ ही संगीत, नृत्य और मार्शल आर्ट्स भी सीखने का प्रयत्न करता है। धोती कुर्ता छोड़कर सूट पहनता है और बेटी की शादी शहर के किसी ऊँचे क्लास के लड़के से करना चाहता है। मिस्टर खन्ना एक चलता पुरजा आदमी है। वह लाला शोहरत राय की इन कमजोरियों से फायदा उठाकर उनसे पैसा भी लूटता है और शहर की एक चालू औरत को कांकेर की राजकुमारी बताकर उसे उनके लिए भिड़ाने का भी वादा करता है।

---

[65] तनवीर, हबीब; 'ए लाइफ इन थियेटर'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 38-39

साथ ही यह भी वादा करता है कि मुख्यमंत्री से कहकर उन्हें पद्मश्री की पदवी दिलवा देगा।

इन सब चीजों को देखकर लाला शोहरत राय की पत्नी भी परेशान है और उनकी बेटी विमला भी, जो गाँव के एक लड़के कामता प्रसाद से प्रेम करती है। तख्ता पलटता है घनऊ, जो शोहरत राय की नौकरानी कचरी को चाहता है, वह एक नाटक रचाता है जिसमें गाँव के दूसरे एक्टरों के साथ मिलकर शोहत राय को एक अजीबों गरीब तुर्की पदवी 'मामा मोशी' पेश करता है। इसके साथ-साथ कामता प्रसाद को एक तुर्की शहजादे के भेष में और अपने आप को शहजादे के नौकर के भेष में शादी के लिए प्रस्तुत करता है। लालाजी विमला और कचरी का ये प्रस्ताव मंजूर कर लेते हैं। उसी मजिस्ट्रेट से मिस्टर खन्ना राजकुमार के साथ अपना ब्याह रचा लेते हैं। अंत में ऐसा कोई नहीं रह जाता जिसके दिल में कोई मलाल हो, सब ख़ुशी से फूल उठते हैं।

हबीब तनवीर ने इस विषय को भी अपने संस्कारों में ढाल लिया। उन्होंने यह नाटक भी लोक कलाकारों के माध्यम से छत्तीसगढ़ी बोली में प्रस्तुत किया। वास्तव में यह नाटक नवधनाढ्य वर्ग की बौद्धिक दरिद्रता, अहंकार और छिछलेपन पर तीव्र प्रहार करता है।

रुस्तम सोहराब

यह नाटक उर्दू के प्रख्यात नाटक लेखक आगा हश्र कश्मीरी ने लिखा है। आगा हश्र कश्मीरी कला के प्रति शास्त्रीय दृष्टिकोण रखने वाली संवाद अदायगी तथा पात्रों के निपुण चित्रण शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं और यह शैली उन्होंने विलियम शेक्सपीयर से सीखी। देखा जाए तो यह नाटक ईरान और तुरान की दुश्मनी पर आधारित है। इसमें ईरान का मशहूर सरदार रुस्तम शिकार खेलते हुए तूरानी की सीमा पर पहुँच जाता है और तूरानी के सिपाही रुस्तम के घोड़े को चुरा लेते हैं। घोड़े की खोज में रुस्तम तूरानी के राज दरबार में पहुँचता है और दरबार में तूरानी के बादशाह को ललकारता है।

रुस्तम की बहादुरी पर शाहे समनगान की लड़की तहमीना फिदा हो जाती है। शाहे समनगान चुपके से दोनों का विवाह कर देता है। विदा होते समय रुस्तम तहमीना को एक मोहर देता है कि अगर लड़का पैदा हो तो उसके बाजु पर बांध कर ईरान भेज देना। रुस्तम के लड़का सोहराब पैदा होता है, लेकिन तहमीना उसे ईरान नहीं भेजती है। सोहराब का पिता ईरान का सरदार है। यह बात जब तूरानी के बादशाह को पता चलती है तो बादशाह सोहराब को मारने की कोशिश करता है। इस नाटक कि प्रस्तुति में हबीब ने पारसी शैली का प्रयोग किया था। *"निर्देशक हबीब तनवीर द्वारा ही कहानी की प्रस्तुति अपने आप में उनकी प्रखर प्रतिभा थी जो अनेक नकचढ़े दर्शकों को भी खुश कर गयी।"*[66]

शतरंज के मोहरे

प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' का नाट्य रूपांतर 'शतरंज के मोहरे' नाम से हबीब तनवीर ने किया और दिल्ली में इसका प्रदर्शन किया। *"शतरंज के मोहरे (1948) एक मात्र ऐसा नाटक है जो मुंशी प्रेमचंद जैसे कुशल कथाकार की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर आधारित है।"*[67] इस नाटक में हबीब तनवीर ने उर्दू भाषा का प्रयोग किया। हबीब लिखते हैं, *"पहले मैं जैसे शतरंज के मोहरे कर रहा था तो न सिर्फ लखनवी जबान लिखने की मैंने कोशिश की बल्कि लखनवी एक्टरों को पकड़ने की कोशिश की, चुनांचे लखनवी एक्टर मुझे मिला और उनका लंबा-लहजा मुझे उनको सिखाना नहीं पड़ा। ... तो वह लुफ्त मुझे इसलिए अब नहीं आ सकता है कि अब मुझे वैसे एक्टर नहीं मिलते हैं। एक तरफ तो उर्दू जबान को जो नुकसान पहुंचा है उसकी वजह से आज के बच्चे अगर उर्दू बोल भी रहे हैं तो वो वह लिटरेरी उर्दू नहीं है। उनके भाव नहीं जानते हैं, तेवर नहीं समझते हैं। उसके नुकात से वाकिफ नहीं हैं और लहजे में फर्क आ गया है।"* [68]

---

[66] प्रसाद, प्रो. कमला (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 265

[67] अग्रवल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 103

[68] अलखनंदन; 'अपने दिल से सच्ची बात लिखिये'; प्रो.कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 69

देख रहे हैं नैन

यह नाटक स्टीफन ज्वाइंग की कहानी 'द आईज ऑफ एन अनडाइंग ब्रदर' पर आधारित है। इस कहानी ने नायक के अंदरूनी नैतिक संघर्ष की वजह से तनवीर को खींचा। नायक महान योद्धा है और उसे अपने ही भाई की हत्या करनी है, लेकिन हबीब जी नाटक लिखते समय मूल कथा से परे गए। उन्होंने बहुत सी घटनाएँ, पात्र, स्थितियां जोड़ी जो नाटक को अधिक सम्पन्न बनाते हैं। *''इस प्रक्रिया का ही नतीजा है कि पूरा नाटक एक जटिल रचना संसार रचता है जिसमें एक तरफ भीतरी शांति की लगभग दार्शनिक खोज है तो दूसरी तरफ रोज की भौतिक समस्याएँ भी हैं... एक तरफ इन सभी तुच्छ चीजों को छोड़ने की इच्छा है तो दूसरी तरफ इनके विरुद्ध लड़कर आम आदमी की जिंदगी बेहतर बनाने की अभिलाषा भी है।''*[69]

इस नाटक की कथा में चन्दनपुर का वफादार नागरिक विराट राजा विजय देव के राज को कठिन समय में दुश्मनों के हमले से बचा लेता है। लेकिन इस युद्ध में अनजाने में वह अपने भाई की हत्या कर देता है। इस भाई की आँखें सारी जिन्दगी विराट का पीछा करती रहती हैं। नाटक की कहानी में राजा उसे सेनापति बनाना चाहता है लेकिन विराट तलवार को दोबारा हाथ लगाने से मना कर देता है। फिर राजा उसे देश का प्रधान न्यायाधीश बना देता है। छह साल बाद एक कातिल को ग्यारह साल की सजा देते वक्त वह देखता है कि कातिल की आँखें उसके भाई ही की आँखों की तरह विराट पर कत्ल का इल्जाम लगा रही हैं। वह राजा से विनती करता है कि उसे इजाजत दी जाए कि वो आइन्दा कोई काम न करे।

राजा उसे इजाजत दे देता है लेकिन फिर छह वर्ष बाद जब उसका बड़ा बेटा अपने एक दास को मार-मारकर लहुलुहान कर देता है तो विराट फिर देखता है उस दास की आँखें भाई की

---

[69] मलिक, जावेद; 'हबीब तनवीर एक गाथा पुरुष'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता, अंक 103, 2003; पृ. 146-147

आँखों की तरह शिकायत कर रही हैं। वह दुनिया त्याग कर साधु बन जाता है। यहां भी वह उन आँखों से मुक्त नहीं हो पाता है और राजा से एक अदना से अदना काम मांगता है। उसका मानना है कि सेवा से ही मुक्ति है, बाकि सब कामों का अंजाम दूसरों के लिए बुरा होता है। तब राजा गुस्से में आकर उसे चांडालों का काम करने को कहता है। विराट ख़ुशी ख़ुशी श्मशान में चिताएं जलाने का काम करता है। तभी कुछ दिनों बाद शहर में प्लेग फैल जाती है और साथ ही जनता राजा के खिलाफ बगावत कर उसे मार देती है। विराट जो खुद प्लेग का शिकार हो चुका था राजा की लाश श्मशाम भूमि में ले जाते वक्त खुद ढेर हो जाता है। इस तरह नाटक का अंत होता है। देखा जाए तो देख रहे हैं नैन भी एक ट्रेजडी है।

कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना

शेक्सपीयर के अंग्रेजी नाटक 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' का हबीब तनवीर द्वारा भारतीय शैली में किया गया यह नाट्य रूपांतरण है। सपना नाटक का कथानक अभिनय की रम्य शैली और मधुर गीतों के साथ विकसित होता है। हबीब ने इसके लिए जो गीत गीत लिखे थे, उनमें वे शेक्सपियर की कविता की जटिल चित्रात्मकता और ब्रेख्त के अति यथार्थवादी विचारों को पूरी तरह साकार करते हैं। इन गीतों में आधुनिक चेतना का नयापन है तो दूसरी ओर लोक परम्परा और शैली का ठेठपन है। गीतों की अधिकांश धुनें लोक संगीत पर आधारित हैं। छत्तीसगढ़ में एक विशेष प्रकार का बांस होता है जिसका वाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। कथा बांस और गीत के साथ-साथ चलती है जिसे बांस गीत कहते हैं। इसका प्रयोग हबीब ने इस नाटक में किया था।

इस नाटक में ड्यूक थिसियस की हिपोलाइटा से होने वाली शादी के अवसर पर कुछ मजदूर और कारीगर एक नाटक करने की ठान लेते हैं। नाटक की रिहर्सल करने के लिए वे सब एक जंगल में पहुँच जाते हैं और यहां एक दूसरी कहानी शुरू होती है। जंगल का राजा ऑबरान, जो अपनी पत्नी टाइटानिया से एक बच्चे के विवाद को लेकर खिन्न है, अपने सेवक से एक फूल

मंगवाकर उसका रस टाइटानिया की आँखों में सोते वक्त छिड़क देता है। इसके असर से वो जागने पर सबसे पहले जिसे देखेगी उस पर मोहित हो जायेगी।

इस बीच वह सेवक रिहर्सल के दौरान नाटक के नायक बॉटम का सर गधे के सर से बदल देता है। इस जादू से डर कर बाकी सब कलाकार भाग जाते हैं। टाइटानिया जागने पर सबसे पहले इसी गधे को देखती है और उस पर मोहित हो जाती है। इस तरह जंगल का राजा रानी से वह बच्चा ले लेता है। फिर टाइटानिया की आँखों से यह असर दूर किया जाता है और बॉटम के सर से गधे का सर। इस तरह आखिर में ड्यूक के दरबार में प्रेमस और थिसवी की ट्रेजडी कारीगर कलाकार कुछ इस अंदाज से पेश करते हैं कि शायद इससे बेहतर कोई कॉमेडी हो ही नहीं सकती थी।

सात पैसे

यूरोप महाद्वीप के एक देश चेक कि कहानी का नाट्य-रूपांतर हबीब तनवीर ने 'सात पैसे' नाम से किया। इसमें एक अन्यंत निर्धन बालक द्वारा साबुन की बट्टी खरीदने के लिए सात पैसे जुटाने का कथानक दिखाया गया है। *''बच्चा एक रेल कामगार का लड़का था और वह साबुन की बट्टी खरीदने के लिए सात पैसे इकट्ठे करने की कोशिश कर रहा है। माँ बच्चे के साथ खेलती है और बड़े काव्यात्मक रूप में पैसे की बातें करते हुए पैसे को एक तितली के रूप में वर्णित करती है जिसे वे पकड़ेंगे और उन्होंने सारे कोनों में यहाँ वहां झाँका और एक-एक करके पैसे इकट्ठे करते गए। अंत में माँ को खून की उल्टियाँ हो रही हैं और वह मर जाती है। उस भुरभुरे एकांकी में पुराने थियेटर उस्ताद मास्टर चम्पालाल ने अभिनय किया था।''*[70]

[70] तनवीर, हबीब; 'ए लाइफ इन थियेटर'; प्रो.कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 39

भारत रत्न भार्गव इस नाटक के बारे में लिखते हैं, *''तितलियों को पकड़ने की कोशिश को एक-एक पैसा जमा करने की मश्क्कत के रूप में प्रदर्शित करने में कल्पनाशीलता और भाव-प्रवणता की अधिकता है।''* [71]

दुश्मन (दी एनेमीज)

सन् 1906 में मैक्सिम गोर्की द्वारा लिखित 'दी एनेमीज' का 'दुश्मन' नाम से रूपांतरण सफ़दर हाशमी ने किया। सफ़दर का यह नाटक उनकी मृत्यु के बाद उनके कागजों में मिला। इस नाटक में न केवल मजदूर और मालिक के बीच के संघर्ष को चित्रित किया गया है वरन स्वयं मालिकों के बीच दिखलाई पड़ने वाले मत-मतान्तरों को भी उभारा गया है। एनएसडी रंगमंडल के प्रशिक्षित कलाकारों और नया थियेटर के लोक कलाकारों को एक साथ मंच पर उतारकर हबीब ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वैसे देखा जाए तो इस नाटक में दोनों तरह के कलाकारों का समन्वय आसान था। शहरी पात्रों की भूमिका में एनएसडी के कलाकारों ने तथा मजदूरों और कोरस के रूप में लोक कलाकारों ने अभिनय किया। इस नाटक की *''प्रस्तुति में मंच-सज्जा सामान्य थी। सारा क्रियाकलाप कुँवर शीतपाल सिंह के घर में घटित होता है, केवल अंत में कचहरी के दृश्य में परिवर्तन होता है।''*[72]

सौ साल से भी पहले लिखा गया यह नाटक आज भी प्रासंगिक लगता है। गोर्की के इस कथ्य को कि मालिक चाहे कठोर हो या नम्र सुधारवादी, परिणाम एक ही होगा। दोनों ही मजदूरों के अधिकारों को दबाना चाहेंगे। चूँकि मजदूर और मालिकों के स्वार्थ भिन्न-भिन्न हैं। अतः वे कभी एक नहीं हो सकते' को सफ़दर हाशमी ने रूपांतर में बड़ी खूबसूरती से समाहित किया है। नाटक के कथ्य और घटनाओं को भारतीय परिवेश में सफदर मूल नाटक के निकट बने रहे।

---

[71] भार्गव, भारत रत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 214

[72] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1997; पृ. 76

भारतीय स्थितियों और घटनाओं के माध्यम से उन्होंने मूल नाटक की आत्मा को प्रस्तुत किया। *"निर्देशक हबीब तनवीर ने आलेख में विशेष परिवर्तन नहीं किये सिवाय इसके कि उन्होंने उसमें पांच गीत जोड़े। स्वरचित गीतों को उन्होंने रवीन्द्र संगीत, नजरुल गीति और रूस की अक्तूबर क्रांति के गीत के स्वरों पर गवाया। तथापि मूल आलेख अपने आप में बरकरार रहा।"*[73]

बाघ

नाटक 'बाघ' एक बंगाली वन एक्ट प्ले है जिसे कवि-नाटकार सिसिर कुमार दास ने लिखा है। इन नाटक को हिंदी में हबीब तनवीर, श्रीमति विजया चौबे और डॉ. रंजीत साह द्वारा अनुवादित किया गया हैं। देखा जाए तो यह नाटक एक संगीत कथा है। इन दोनों तत्त्वों के माध्यम से यह नाटक साम्प्रदायिकता के खिलाफ अपना सन्देश देता है। बाघ को 'विकल्प' (ऐसा समूह जो राजस्थान में बंगाली थियेटर को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय है) द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इसकी गतिविधि को चलाते हुए आयोजकों ने नाटक के वाचन के लिए हबीब तनवीर को आमंत्रित किया था।[74]

नाटक के बारे में लिखा गया है, *"The dramatic portion is rather dense with overlapping images and metaphors. Two women caught in communal riots take shelter in a dark house. One of them is wearing a burkha. The other is a labourer from pirpur village. They are both fleeing from the 'Bagh' whichis described as a tiger that has escaped from the circus, as a black and yellow leather jacketed motorcyclist who has been chasing the woman and awaits her beneath the window, as the goonda who raped the burkha clad woman in*

---

[73] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर: एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1907; पृ. 75-76

[74] तिवारी, अशोक; नुक्कड़ जन्म संवाद; अंक 23-26, अप्रैल 2004 - मार्च 2005; पृ. 202

the temple where she took refuge, as the tiger of the village woman's dark memories, as the rabble rousers whoo desecrate holy places."[75]

नाटक जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे हम कोरस और आतंक से त्रस्त महिलओं के माध्यम से बारी-बारी साम्प्रदायिकता के एक काले परिदृश्य से अवगत होते हैं। नाटककार दो महिलाओं के व्यक्तित्वों को बारी-बारी से एक-दूसरे की अस्तित्वगत समस्याओं को साझा करते हुए आतंक के शिकार की अभिव्यक्तिपूर्ण छवि बनाता है। जब तक हममें से हर एक के द्वारा कार्यवाई नहीं की जाती है, तब तक हम साम्प्रदायिकता के इस उन्माद के अतीत, वर्तमान और भविष्य की धमकी के काले परिदृश से आहत होते रहेंगे।

वेणी संहार

भट्टनारायण की केवल एक ही रचना उपलब्ध होती है और वह है 'वेणीसंहार' नामक नाटक। यह नाटक महाभारत की एक महत्त्वपूर्ण घटना द्रौपदी के द्वारा वेणी बांधने पर आधारित है। द्रौपदी की यह गाथा घर-घर में जानी जाती है। राजसभा में सबके सामने दुशासन के चीर-हरण के कृत्य से संतप्त द्रौपदी यह प्रण करती है कि दुशासन और दुर्योधन के मारे जाने के बाद ही वह अपनी वेणी बांधेगी। इसी घटना की पूर्ति में महाभारत का पूरा कथानक यहां विन्यस्त किया गया है। उनका यह कठोर प्रण वेणी बांधने के साथ जब पूरा होता है, तो मानवता थर्रा उठती है। नाटक अनेक बड़े मानवीय प्रश्न छोड़ जाता है। युद्ध के परिणाम से उपजा क्षोभ हमसे पूछता है कि हथियारों की होड़ में मनुष्य जाति के अस्तित्व की रक्षा कैसे हो? हमारे समय में जो आंतकवाद है, युद्ध की भूमिका है उसे महाभारत की कथा द्वारा दिखाने की कोशिश की है। अब यह महाभारत की कथा ही नहीं वरन राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्थितियों के रेखांकन की कोशिश भी है।

---

[75] तिवारी, अशोक; नुक्कड़ जन्म संवाद; अंक 23-26, अप्रैल 2004 - मार्च 2005; पृ. 202

'वेणी संहार' रूपक में कुल छह अंक हैं। छह अंकों में महाभारत की लगभग सारी कथा कह जाना अपने आप में एक कमाल है। हबीब तनवीर ने इस नाटक को खेलने से पहले अपनी जरुरत के अनुसार इसमें काट-छांट की थी। खास तौर से सुन्दरक के संवाद को बहुत कम कर दिया था। निर्देशक जब किसी नाटक के संवाद काटकर कम कर देता है, तो उसके बहुत से कारण होते हैं। हबीब के इस नाटक में यही बात है।

महावीर अग्रवाल जी का इस नाटक के बारे में विचार है कि एक पौराणिक कथा के साथ संस्कृत और लोकमंच के तत्त्वों का सुन्दर और लचीला समन्वय हबीब तनवीर जी ने किया है। यह नाटक शांति के लिए है। निर्देशक ने प्रत्येक दृश्य बद्ध के प्रारम्भ और समापन के पश्चात् आहत कबूतर (शांतिदूत) दिखाकर नाटक को एक अर्थ विस्तार दिया तथा अपने उद्देश्य को सतत प्रतिध्वनित भी किया।

ज़हरीली हवा

'ज़हरीली हवा' नाम से भोपाल गैस त्रासदी पर आधारित राहुल वर्मा के अंग्रेजी नाटक 'भोपाल' का हिंदी में रूपांतर एवं निर्देशन हबीब साहब ने किया था। इस त्रासदी में कई हजारों लोगों की मौत हुई और असंख्य लोग आज भी इस त्रासदी से आहत है। *''ज़हरीली हवा में हिन्दुस्तान की आर्थिक, राजनैतिक पॉलिसी पर कम और विदेशी ताकतों पर हमला ज्यादा है, और ये मुनासिब भी ही इसीलिए कि भोपाल के लोग, जो यूनियन कार्बाइड की बेहिसी का खामियाजा अभी तक भुगत रहे है, उनके लिए अमरीका के वारेन एंडरसन के प्रति इंसाफ तलब करना और उन हजारों गैस-पीड़ित लोगों के लिए मुआवजा मांगना ज्यादा जरूरी है बनिस्बत इसके कि हम अपनी निंदा आप करने में लगे रहें।''*[76]

[76] तनवीर, हबीब (अनु.); ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 9

नाटक का कथानक एक झोपड़पट्टी में रहने वाली औरत इज्जत पर केन्द्रित है। मूल विषय तो गैस और गैस के प्रति वो लापरवाही है जिसके खतरनाक प्रभाव की जाँच कनाडा की डॉ. सोनिया लेबानते कर रही हैं। इस नाटक में डॉ. सोनिया, जो एक विदेशी फैक्टरी की लापरवाही के बुरे नतीजे मालूम करने में लगी है, के रिसर्च को कैसे दबाने की कोशिश की जाती है यह सब दिखाया गया है।

राज-रक्त

'राज-रक्त' नाटक रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा एक ही कथा पर लिखी दो कृतियों 'विसर्जन' तथा 'राजार्षि' पर आधारित है। हबीब तनवीर ने इस नाटक का मंचन 6 अगस्त 2006 को राज-रक्त के नाम से कोलकाता में किया था। छत्तीसगढ़ी गीतों के साथ ही पूर्वी बंगाल के गीतों ने नाटक में जान डाल दी थी। यह नाटक धार्मिक वृत्ति एवं धर्म निरपेक्षता के बीच शाश्वत द्वंद्व को रेखांकित करता है। साथ ही राजसत्ता और धार्मिक सत्ता के बीच टकराव की बात करता है। बकरे की बलि का दृश्य देखकर गहरे अवसाद में पहुंचे बालक की गंभीर स्थिति से द्रवित हो राजा गोविन्द माणिक्य देवी के सामने बलि देने की प्रथा पर रोक लगा देते हैं। लेकिन मंदिर का धर्मभीरु पुजारी इस पाबंदी को हटाने के लिए जी-जान लगा देता है। जबकि पुजारी के दत्तक पुत्र के लिए धर्म संकट यह है कि देवी भक्ति और राजा से वफादारी के बीच किसे चुने? वह राजा का सम्मान करता है। उसकी प्रेमिका अपर्णा भी उसे इन सारी चीजों से दूर ले जाना चाहती है। वास्तव में यह नाटक ट्रेडिशन और माइथालॉजी के माध्यम से बलिप्रथा के खिलाफ है।

अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि हबीब तनवीर बाल नाटककार के रूप में अपने लेखन की शुरुआत करते हैं। उन्होंने कुछ मौलिक नाटक लिखें तथा कुछ पाश्चात्य एवं संस्कृत नाटकों को अनुदित या रूपांतरित कर प्रस्तुत किया। लेकिन लोक शैलियों, कथाओं से संबंधित नाटक उनके सबसे सफल नाटक रहे।

चतुर्थ अध्याय

हबीब तनवीर के नाटक : रंगमंचीय आयाम

4.1 लोक शैलियों और लोक तत्त्वों का प्रयोग

'लोक' शब्द का एक लम्बा इतिहास रहा है। प्राचीन काल से लेकर अब तक हम 'लोक' का अर्थ सामान्य जन के रूप में देखते हैं। 'ऋग्वेद' के पुरुषसूक्त में 'लोक' शब्द जीव और स्थान दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी', पतंजलि कृत 'महाभाष्य' तथा भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में 'लोक' शब्द का प्रयोग शास्त्रोत्तर, वेदोत्तर तथा सामान्यजन के सन्दर्भ में किया गया है। हम देखते हैं कि पाणिनी काल में वेद परिपाटी एवं लोक परम्परा का एक पृथक रूप मुखरित हो चुका था। 'श्रीमद्भागवतगीता' में प्रयुक्त 'लोक समूह' शब्द का अर्थ भी साधारण जन के आचरण तथा आदर्श से ही है। प्राकृत, अपभ्रंश और भक्ति साहित्य काल में भी लोक शब्द वेद के प्रतिकूल जनसाधारण की परम्परा की ओर संकेत करता है।[1] इस प्रकार भारत के प्राचीन (संस्कृत) साहित्य में 'लोक' की प्रयोग परम्परा इन्हीं अर्थ छायाओं से अनुशासित है। 'लोक' का ही विकसित रूप बोलचाल में 'लोग' है। *''सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में लोक की स्थिति देखने पर स्पष्ट होगा कि यह शब्द (लोक) उस मानव समूह का बोध कराता है जो आदिम समाजों, ग्रामीण समाजों तथा नागरिक समाजों में एक समान रूप से निवास करने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है।''*[2]

देखा जाए तो 'लोक' में समाज की सामूहिक संवेदना, अनुभूति तथा सृजनात्मकता

---

1 भारती, ओमप्रकाश; बिहार के पारंपरिक नाट्य; उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, इलाहबाद; संस्करण 2007; पृ. 17

2 दईया, पीयूष (सं.); लोक : भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर (राज.), संस्करण 2002, पृ. 374

निहित है। इसमें व्यक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि सभी के सहयोग और संघर्ष से उत्पन्न रागात्मकता, लयात्मकता और रसात्मकता महत्त्वपूर्ण है। कृषि जीवन, लोकशास्त्र ज्ञान, साहित्य कला के नाना रूप, भाषाएँ और शब्दों के भंडार, जीवन के आनंदमय पर्वोत्सव, गीत-संगीत, नृत्य, आचार-विचार आदि सभी कुछ 'लोक' में समाहित है। स्थूल रूप में 'लोक' का संकेत साधारण जन के एक ऐसे समूह की ओर होता है जो केंद्र या मुख्यधारा में नहीं रहा।

सामान्यतः हिंदी का 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' का रूपांतरण है। विभिन्न विद्वानों द्वारा इस शब्द के कई अर्थ प्रस्तुत किये गए हैं। किसी ने इसे 'जन' का पर्याय माना है, किसी ने 'ग्राम' या 'नगरी' की सीमित परिधि के अंतर्गत इसे परिभाषित किया। किसी ने तो अशिक्षित और अल्प सभ्य व्यक्तियों के वर्ग को 'लोक'(फोक) के अंतर्गत समाहित कर दिया। यहां कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ इस प्रकार हैं।

लोक साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार *"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"*[3] इस कथन की अंतिम पंक्तियों में हम सम्पूर्ण लोक शब्द की व्याख्या को देख सकते हैं। यहां लोक को जीवित संज्ञा से अभिहित किया है। इसमें परम्परा का योग करने से लोक का अर्थ परम्परागत जीवित संसार हो गया है, जो कहीं अधिक व्यापक और मूल्यवान हो उठा है।

संस्कृति की विशेषता को प्रतिपादित करते समय 'लोक' शब्द ग्राम्य माना जाता रहा। लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी 'लोक' के इस अर्थ से सहमत नहीं दिखते। वे लिखते हैं कि, *"'लोक' शब्द का अर्थ ग्राम्य नहीं बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत,रूचि संपन्न तथा*

[3] निरगुणे, वसंत; लोक संस्कृति; मध्य प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश; संस्करण 2012, पृ. 31

सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उन्हें उत्पन्न करते हैं।''[4] रामविलास शर्मा के शब्दों में *''लोक' विशेष रूप से हमारे इस विश्व की जड़चेतन पदार्थ-सत्ता और विशेषकर समग्र सामान्य मनुष्य जाति का बोधक है, जिससे कालकर्म से परिष्कृत अभिजात्य, विशेष धन सम्पन्न और अर्जित बौद्धिक सामर्थ्यशाली लघुतर वर्ग कुछ अलग पड़ जाता है।''*[5]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस सन्दर्भ में कथन है, *''जो लोक संस्कृत या परिष्कृत वर्ग से प्रभावित न होकर अपनी पुरातन स्थितियों में रहते हैं, वे लोक होते हैं।''*[6]

डॉ.श्याम परमार का मानना है कि *''लोक साधारण जन-समाज है जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं, श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता-संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है किन्तु लोक दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।''*[7]

'लोक' शब्द को परिभाषित करने वाले उक्त विचारों का मूल्यांकन करने पर हम पाते हैं कि जो अविच्छिन प्रवाह में रह कर आचार–विचार को पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा से प्राप्त करता है, आधुनिकता से थोड़ा दूर है, प्रकृति से आत्मीय सम्बन्ध रखने वाला, अपनी अभिव्यक्ति में अकृत्रिम, सहज और सरल है, शास्त्रीय ज्ञान, वैयक्तिकता से बिल्कुल भिन्न जन-समुदाय है, वह

---

4 देसाई, डॉ . बापूराम; लोक साहित्यशास्त्र; विकासन प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2004, पृ. 14

5 तिवारी, कपिल (सं.); चौमासा; अंक 85, मार्च-जून 2011; पृ. 77

6 देसाई, डॉ. बापूराम; लोक साहित्यशास्त्र, विकाशन प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2004, पृ. 14

7 कौड़ा, डॉ. स्वामी प्यारी; हिंदी नाटक और रंगमंच में लोकतत्त्व; सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली; संस्करण 2013, पृ. 7

'लोक' है। इसमें जन-सामान्य की समस्त व्यावहारिक और कलात्मक गतिविधियां शामिल हैं। ये गतिविधियाँ परम्परागत और संस्कारनिष्ठ तो हैं ही साथ में अलिखित भी हैं। इनमें युगानुरूप बदलाव लाने की भी अद्भुत क्षमता होती है।

सामान्यतया किसी भी देश की लोक संस्कृति, उसकी शैलियाँ एक जीवंत संस्कृति होती हैं जो लोगों को जोड़ने में विश्वास रखती हैं। यह संस्कृति सदियों से श्रमशील समाज के संवेगात्मक आवेगों, उनकी अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है। उनके गीत, नृत्य दिल को छू लेते हैं। इसमें पर्व-त्यौहार, उत्सव, विश्वास, मान्यताएं सभी कुछ सम्मिलित हैं। लोक संस्कृति के ये विविध अंगोपांग ही, जो लोकजीवन में परम्परागत आदिम संस्कारों के रूप में वर्तमान रहते हैं, 'लोकतत्त्व' कहलाते हैं। ये लोकतत्व शास्त्रीयता से दूर सहज और कोमल मनोभावों को अभिव्यक्त करने का साधन हैं। जिसके माध्यम से मानव चित्त में उमड़ रहे भावों को नवीन गति व दिशा प्रदान कर अभिव्यंजित किया जा सकता है।

यही कारण है कि आधुनिक हिंदी नाटकों में लोकतत्त्वों का भरपूर प्रयोग अपनी युग संवेदना के सन्दर्भ में किया गया। वास्तव में सामूहिक रूप की छाया में अंकुरित-उल्लसित होती लोक संस्कृति के द्योतक लोकतत्त्वों में सामान्य जन की आशाओं का स्वर है तथा आत्म भावों से सम्बंधित सामग्री भी। इसमें गंभीर सामूहिक प्रभाव डालने की शक्ति विद्यमान है। लोकतत्व का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है जिसे विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार वर्गीकृत किया है। डॉ. सत्येन्द्र ने 'लोकतत्व' के विषय को तीन भागों में वर्गीकृत किया है।

- **विश्वास और आचरण** : पृथ्वी और आकाश से, वनस्पति जगत से, पशु जगत से, मानव से, मानव निर्मित वस्तुओं से, आत्मा तथा दूसरे जीवन से, परामानवी, शक्तियों से, शकुनों, अपशकुनों, भविष्यवाणी, आकाशवाणी से, जादू-टोनों से, स्थानों की कला से।

- **रीति-रिवाज** : सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं, व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय धंधे, तिथियाँ, व्रत तथा त्यौहार , खेलकूद तथा मनोरंज, कहानियां गीत तथा कहावतें।
- **कहावतें** : जो सच्ची मानकर कही जाती हैं, जो मनोरंजन के लिए होती हैं, गीत सभी प्रकार के, कहावतें तथा पहेलियाँ, पदबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।[8]

डॉ. श्याम परमार ने 'लोकतत्व' के विषय का वर्गीकरण निम्न रूप में किया है-

- लोक गीत, पहेलियाँ, कहावतें, लोककथाएँ
- रीति-रिवाज, त्यौहार, पूजा, अनुष्ठान, व्रत
- जादू-टोना, टोटके, भूत-प्रेत सम्बन्धी विश्वास
- लोकनृत्य, लोकनाटक तथा आंगिक अभिव्यक्ति
- बालक-बालिकाओं के विभिन्न खेल
- ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल आदि। [9]

देखा जाए तो विद्वानों ने लोकतत्त्वों को समान रूप से वर्गीकृत किया है, अंतर केवल कथन की प्रणाली का ही है। ये लोकतत्त्व जीवन व्यापी है और प्रत्येक व्यक्ति में उसके जन्म से ही बद्धमूल है अर्थात् ये उसकी प्रकृति के ही अंग हो गए हैं। इस अध्ययन के बाद हम लोकतत्त्व के प्रमुख विधायक अंगों को निम्न रूपों से देख सकते हैं- लोककथा, लोकगाथा, लोक रूढ़ि, लोक विश्वास, लोक गीत, लोकनाट्य, लोक भाषा आदि।

---

[8] कौड़ा, डॉ. स्वामी प्यारी; हिंदी नाटक और रंगमंच में लोकतत्त्व; सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली; संस्करण 2013, पृ. 17

[9] शर्मा, श्रीराम; लोकसाहित्य स्वरूप और मूल्यांकन; निर्मल प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 1997; पृ. 49

लोक कथा

किसी भी देश के लोक सांस्कृतिक परिदृश्य को जानने-समझने के लिए कथाएं अन्यतम मानक हैं। लोक जीवन की समस्त उपलब्धियां और त्रासदियाँ इन कथाओं में मिलती हैं। जीवन की पूर्णता को समेटे इन कथाओं में जनमानस का हर्ष-विषाद, आस्था-वैराग्य, कर्म-आलस्य, पर्व-उत्सव, ईर्ष्या-द्वेष, आनंदमूलक क्षण सभी कुछ समाहित हैं। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि *"लोककथा मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता है, जो मौखिक या लिखित परम्परा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी को प्राप्त होते रहे हैं।"*[10] इसमें व्याप्त मनोरंजनात्मक और कल्पनात्मक तत्त्व मनोविज्ञान की देन हैं जिसके फलस्वरूप इन कथाओं में देवी देवताओं, राक्षसों, दानवों आदि का एक विशेष स्थान है।

लोक गाथा

हमारे देश में गाथा गायन की परम्परा बहुत प्राचीन है। लोकगाथा में ऐसे उदात्त चरित्रों को आधार बनाया जाता है जो लोक आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ लोकगाथाओं में चरित नायक के जीवन की एक घटना ही होती है तो कुछ में नायक का सम्पूर्ण जीवन। लोकगाथा उस स्थान की, जहाँ वह गाई जाती है, सांस्कृतिक परम्पराओं का दिग्दर्शन कराती है। लोकगाथा जनसम्पति है। इसमें सामूहिक भावभूमि का महत्त्व है। वास्तव में लोकगाथा अभिजात्य प्रबंध काव्य का आधार है। यह जीवंत साहित्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

लोक विश्वास

लोकतत्त्व के अंतर्गत लोक-विश्वासों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब कोई विश्वास व्यष्टिगत रूप से निकलकर समष्टिगत हो जाता है, तब वह लोक विश्वास बन जाता है। लोक विश्वास

---

[10] रंजन; अंगिका लोक-साहित्य; शब्दसृष्टि प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 2009, पृ. अनुवादकीय से

अच्छे और बुरे दोनों तरह के होते हैं। लोक में व्याप्त शकुन-अपशकुन, रीति-रिवाज, जादू-टोना, तंत्र-मन्त्र, अन्धविश्वास, झाड़-फूंक, भूत-प्रेत, देवी-देवता आदि लोक विश्वासों की सीमा में आते हैं। इन विश्वासों को तर्क और बुद्धि की तुला पर तौला नहीं जा सकता। ये सदैव मान्य और प्रचलित रहे हैं।

लोक गीत

लोकगीत भी लोकतत्त्व का एक अभिन्न हिस्सा है। मानव जब भाव विभोर होकर अपने हृदययोद्गारों को छंदोबंध शब्दों में अभिव्यक्त करता है, तब उसे गीत की संज्ञा दी जाती है। लोकगीतों में प्रायः जीवन का प्रत्येक क्षण मुखरित होता हैं। इन गीतों में किसी देश-जाति की सभ्यता एवं संस्कृति अन्तर्निहित रहती है। ये लोक गीत सर्वसाधारण में लोकप्रिय होकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा से हस्तांतरित होते रहे हैं। शांति अवस्थी के अनुसार *''लोक गीतों में मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है।''*[11] जबकि राहुल सांस्कृत्यायन के मत में *''लोक गीतों का बीज हमारे प्राचीन एवं पवित्र ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में पाया जाता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर पाया जाता है वे ही लोक गीतों के पूर्व प्रतिनिधि हैं।''*[12]

लोकनाट्य

'लोकनाट्य' का सामान्य अर्थ जनसमूह की उस कृति से है, जब नाट्य-रूप में कथोपकथन के माध्यम से किसी कथावृत्त को प्रस्तुत किया जाए। लोक नाटक शास्त्रीयता से इतर लोक मानस की सहज अभिव्यक्ति है। इसकी विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में ही निहित है।

---

[11] शरीफ, मोहम्मद; मध्यप्रदेश का लोक संगीत; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश; पृ. 196

[12] वही, पृ. 196

लोकनाट्य के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है, *"लोकनाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोककथानकों, लोकविश्वासों और लोकतत्त्वों को समेटे चलता है और लोक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।"*[13] देखा जाए तो लोकनाट्य परम्परा बहुत प्राचीन और समृद्ध रही है। *"अत्यंत विकसित लोकनाटकों-रामलीला और रासलीला के साथ-साथ नितांत सरल प्रहसनमूलक नक़ल और भड़ैती है और इन दोनों के बीच गेय नाट्य-रूप, नौटंकी, स्वांग, ख्याल और माच हैं। प्रदर्शन की दृष्टि से भी लोकनाट्य में बड़ी विविधता है और उसके व्यवहार और रूढ़ियाँ बहुत रोचक हैं। उसमें कथानक की गरिमा और रोचकता है, काव्य का सौन्दर्य है, नृत्य और संगीत का बड़ा ही नाटकीय प्रौढ़ रूप है और सज्जा तथा वेशभूषा का भी आकर्षक सौन्दर्य है।"*[14] कुल मिलकर लोकनाट्य का सम्बन्ध लोकजीवन, उसकी रूचि और संवेदना से है।

उपरोक्त विवेचन के बाद हम कह सकते हैं कि 'लोकतत्व' मानव के आदिम विश्वासों और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति लोककथाओं, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, उत्सवों–पर्वों, आचार-विचार, गीतों, संस्कारों, विश्वासों आदि में मिलती है। इनमें गंभीर सामूहिक प्रभाव डालने की शक्ति विद्यमान है। अपनी व्यापकता में लोकसंस्कृति, परम्पराएँ, प्रथाएं, मिथक आदि सभी कुछ लोकतत्व हैं।

लोक जीवन में प्रचलित प्रायः सभी लोक रूपों, शैलियों आदि में स्थानीय संस्कृति के रंग छुपे हुए हैं। उसमें मानव की अनुभूतियाँ और जीवन का सौन्दर्य है। इसलिए ये शैलियाँ अत्यंत समृद्ध हैं और जब ये अपनी स्थानीयता से उठ कर मंच पर आती हैं तो एक अलग ही रोमांच,

---

[13] रंजन; आंगिक लोक साहित्य; शब्दसृष्टि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. अनुवादकीय से

[14] अवस्थी, सुरेश; हे सामाजिक : भारतीय रंग परम्परा पर संवाद; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2002; पृ. 62

आनंद विकसित करती हैं। देखा जाए तो लोकनाट्य करना तथा हिंदी या अन्य भाषा के नाटकों में लोक शैलियों का प्रयोग करना दोनों ही अलग-अलग बातें हैं। क्योंकि लोकनाट्य में लगने वाली सूझबूझ, बिना नाट्यालेख के संवादों को गढ़ लेने की कला, पात्रों में लगातार संयोजन और संतुलन बनाये रखना, क्षेत्रीय नृत्य-गायन प्रकारों से परिचित होना जितना आवश्यक है, उतना ही उस लोक जीवन का अभिन्न अंग होना भी आवश्यक है। इन विशेषताओं को ग्रहण करने वाला कलाकार ही सही मायने में लोकनाट्य का कलाकार हो सकता है।

दूसरा पहलू लोकतत्त्वों या लोक शैली को ग्रहण करना है। किसी विशेष क्षेत्र की परम्परा, लोक जीवन एवं लोक संस्कृति का अध्ययन कर उनके सकारात्मक, विकासशील तथा प्रेरणादायक तत्त्वों को लेकर नाटक तथा रंगमंच पर उनका उपयोग किया जाता है। इसके लिए कलाकारों का उसी लोक जीवन का अभिन्न अंग होना अनिवार्य नहीं है। इन नाटकों में लोक तत्त्वों का प्रयोग सायास दिखाई देता है। फिर भी इसका असर नकारात्मक नहीं रहा। यही वजह है कि भारतीय लोक शैली के तत्त्वों की जनाधारित शक्ति को पहचान कर हिंदी रंगकर्म में पिछले कई दशकों से इनके आत्मसातकरण की प्रक्रिया लगातार नए-नए आयामों को रच रही है और इसी संदर्भ में सबसे बड़ा नाम हबीब तनवीर का है।

देखा जाए तो हबीब तनवीर ने जब अपना रंगमंचीय काम शुरू किया तब तक लोक सामयिक रंगमंचीय गतिविधियों की केंद्रीय चिंता में नहीं था। इस लिहाज से उन्हें लोक रूपों, लोक संस्कृति और प्रदर्शन में दिलचस्पी पैदा करने वाले पुरोधा के रूप में देखा जा सकता है। इसके बावजूद लोक संस्कृति को लेकर उनका नजरिया आज के समकालीनों से बिलकुल अलग है। हबीब तनवीर ने लोक तत्त्वों को लोकसंस्कृति से सम्बंधित मानते हुए कहा है कि *"लोक हमारे बीच प्रमाण के रूप में स्वीकृत होता है। इस लोक की संस्कृति का अपना समाजशास्त्र है। साथ ही*

संस्कृति को आप लोकतत्त्वों से अलग नहीं कर सकते। हमारा लोक साहित्य संस्कृति और विश्व दर्शन से गहरे जुड़ा हुआ है, परस्पर अनुस्यूत है। शब्दों से परे जाकर भाव और संवेदन की जो अदृश्य दुनिया है, लोक उसे थाती की तरह संभालकर रखता है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए उपलब्ध कराता है।''[15]

हबीब तनवीर का विचार था कि हमें अवश्य ही महान नाटककारों की अच्छी शैलियों व तकनीक को जहाँ तक संभव हो ग्रहण करना चाहिए, परन्तु हमें इन तकनीकों की अंधी नकल नहीं करनी चाहिए। इसलिए आधुनिक रंगकर्म का सम्पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् ही उन्होंने अपने नाटक देशज रंग-पद्धतियों में प्रस्तुत किये। इस सम्बन्ध में सुविख्यात रंग-समीक्षक मुद्राराक्षस का कहना है, *''हबीब तनवीर ने न तो कभी हिंदी में नाटक होने की रुदाली की और न ही अपनी जमीन अपनी मिट्टी के रिश्ते को छोड़ा। हबीब ने हिंदी क्षेत्र में काम किया पर अपनी सांस्कृतिक विरासत को लेकर। इस तरफ उन्होंने जो कुछ भी किया वह रंग जगत को स्थायी रूप से समृद्ध करता रहा।''*[16]

हबीब तनवीर एक ऐसे लोक धर्मी नाटककार थे जिन्होंने संस्कृत एवं अंग्रेजी के नाटकों के निर्देशन में लोक परम्परा को नहीं छोड़ा। वे नाटकों के मंचन के समय लोक-शैली पर विशेष ध्यान रखते थे। जावेद मलिक के शब्दों में, *''तनवीर उन अग्रणी रंगकर्मियों में थे, जिन्होंने लोक प्रदर्शनकारी परम्पराओं में लोगों की रूचि को दोबारा जागृत किया और इन्हें एक विशिष्ट और प्रभावी दर्जा प्रदान किया। जब उन्होंने अपना कार्य आरम्भ किया तो भारत के रंग-व्यवहार में लोक न तो फैशन में था और न जूनून में। सबमें प्रेरणा जगाने वाला एक शब्द एक नारा बनकर रह गया था और बाद में धिक्कारा जाकर एक बेजानखाने में डाल दिया गया था। वर्ष 1958 के*

---

[15] अपूर्वानंद (सं.); आलोचना; अंक 36, जनवरी-मार्च 2010; पृ. 63

[16] मुद्राराक्षस; रंग भूमिकाएँ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 142

आरम्भ में जब तनवीर इंग्लैण्ड में प्रशिक्षण प्राप्त कर और यूरोप की यात्रा कर भारत लौटे तो उन्होंने कई वर्षों तक लोक परम्पराओं में नाटक, कथा-वाचन, संगीत और नृत्य पर शोध और अध्ययन किया। वह लगातार छत्तीसगढ़ के अन्दरूनी क्षेत्रों तक घूम-घूम कर स्थानीय अदाकारों से मिलते रहे और उनके साथ समय बिताते रहे और अक्सर रात–रात भर चलने वाले प्रदर्शन भी देखते रहे।''[17]

रंगमंच का नया रंग मुहावरा लोकनाट्य धर्मी प्रदर्शन-शैली हबीब की पहचान है। इसका स्रोत नए सामाजिक और सांस्कृतिक स्पंदनों में है, वह मात्र एक भाषागत प्रवृति नहीं है। रंगमंच का यह नया रंग मुहावरा हिंदी में भारतेंदु युगीन रंगमंच की दृष्टि और उसका नवीकरण करके समकालीनता प्रदान करता है। कला तत्त्व में आधुनिकता के तत्त्वों और मूल्यों के आग्रही यह भूल जाते हैं कि अत्यंत समृद्ध और जीवन, लोक और मौखिक परम्परा हमारी कलाओं और संस्कृति का अभिन्न अंग और उसकी विशिष्टता है। परम्परा की ऊर्जा ने आधुनिक कला-धर्म को नया उन्मेष, नया मुहावरा दिया है। हबीब तनवीर ने उस नए मुहावरे को गढ़ा। ध्यान देने की बात यह है कि लोकधर्मी होते हुए भी उनका रंगकर्म आधुनिक रंगकर्म है। समाज की कुरीतियों, समस्याओं को उठाते रहे हैं। इस बीच उनके कुछ प्रदर्शनों का विरोध भी किया गया, लेकिन वे इससे घबराए नहीं।

सुरेश अवस्थी का मानना है कि *''रंगकर्मियों का रंगमंचीय भूगोल अपने क्षेत्र तक सीमित है और इतिहास उन्नीसवी शताब्दी से आरंभ होता है। दूसरे, यथार्थवादी परम्परा से भिन्न कुछ भी स्वीकार करने में हम डरते हैं। हम दो परम्परा में रंगकर्म कर रहे हैं- एक तो हमारी अपनी दो हजार वर्ष पुरानी परम्परा है और एक आयातित सवा सौ वर्ष की आधुनिक परम्परा है। उसकी बहुत ही कटु आलोचना इसी दृष्टि का फल है। इस आधुनिक परम्परा का आग्रह इतना बड़ा है, वह*

---

[17] खान,जाहिर; 'हबीब तनवीर'; अशोक वाजपेयी (सं.); नटरंग; अंक 86-87, जुलाई-दिसम्बर, 2010; पृ. 49

स्वीकार नहीं है, चाहे वह कितना भी कलात्मक एवं सशक्त हो। रंगकर्मियों का बहुत बड़ा वर्ग इसी मान्यता के कारण हबीब तनवीर के प्रदर्शनों की अवहेलना करते रहे।"[18]

लेकिन हबीब तनवीर इन अवहेलनाओं, चुनौतियों से कभी नहीं डरे और लगातार अपना काम करते रहे। अपने मुहावरे की तलाश में नए-नए प्रयोग कर रहे थे। लेकिन उन्होंने परम्परा को कभी खंडित नहीं किया। उन्होंने मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति, गीत-संगीत, को अपने नाटकों से जोड़ा। उनके नाटकों में विशेष रूप से लोकनाट्य 'नाचा' के तत्त्वों का समावेश है। इसके अतिरिक्त पंथी नृत्य, सुआ गीत, करमा, ददरिया, बिहाव, सोहर, पंडवानी, बांसगीत, राउत नाच तथा विभिन्न लोककथाओं, लोकगीतों का समावेश हुआ है।

नाचा

'नाचा' नौटंकी, तमाशा, स्वांग की ही तरह विकसित छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य विधा है। यह नृत्य, नाटक और संगीत की त्रिवेणी बहाने वाला नाट्य रूप है जो ग्रामीण संस्कृति एवं परिवेश में पला-बढ़ा। 'नाचा' लोकनाट्य की परम्परा का वह रूप है जिसे हम सामाजिक रंगपरम्परा का प्रहसनात्मक रूप कह सकते हैं। यह जीवन के यथार्थ में मौजूद विसंगतियों और विरोधों की तीखी आलोचना का लोक रंगमंच है। बाल-विवाह, सर्वहारा वर्ग के शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने तथा छुआछूत, विधवा विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के प्रति सजग रूप से मंच पर आवाज उठाता है।

देखा जाए तो इसकी कोई निश्चित स्क्रिप्ट नहीं होती और न ही इसमें कलाकार पूर्वाभ्यास के साथ नाटक प्रस्तुत करते हैं। इसका कथानक तात्कालिक परिस्थितियों के अनुसार तय होता है जिसे इसके लोक अभिनेता अपने आशुकवित्त, हाजिरजवाबी, स्मृति और सहज

---

[18] अवस्थी, सुरेश; हे सामाजिक : भारतीय रंग परम्परा पर संवाद; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2002; पृ. 119

अभिनय द्वारा मंच पर प्रस्तुत करते हैं। पहले पुरुष ही नारी का वेश बनाकर और कभी-कभी बीड़ी पीते हुए भी मंच पर प्रस्तुत होते थे। अब भी नारी वेशधारी पुरुष पात्रों की प्रचुरता है। लेकिन यायावरी वृत्ति से बचने के लिए भटकने वाली देवार जाति की स्त्रियाँ इसमें सम्मिलित होने लगी हैं। ये स्त्रियाँ गायन, नृत्य कला में पारंगत होती हैं। उनको देखकर अन्य जातियों की स्त्रियाँ भी अब इसमें दिखने लगी हैं।

'नाचा' के बारे में महावीर अग्रवाल लिखते हैं, *''छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य की परम्परा छत्तीसगढ़ के गाँवों में, यहाँ के जन-जन में बहुत गहरी रही है। जनरंजन और लोक शिक्षण का सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली स्वरूप लोकनाट्य में समाया हुआ है। लोकनाट्य का मूल आधार 'नाचा' है। हास्य और व्यंग्य की प्रबल धारा के साथ प्रचुर सांगीतिक वैभव नाचा की विशेषता है। नाचा को छत्तीसगढ़ की जनता रात-रात भर उतावली और भावली होकर देखती है।''*[19]

श्रीमती शांति यदु लिखती हैं, *''छत्तीसगढ़ी नाचा का यदि हम कोई पृथक स्वरूप या कोई लिपिबद्ध पाण्डुलिपि खोजना चाहें तो शायद हमें ये सब न मिल सके, क्योंकि नाचा परम्परागत लोकगीतों, लोकनृत्यों, लोकवाद्यों, लोककलाकारों एवं लोक अभिनयकारों का कुछ ऐसा गुम्फन है कि इसे सबसे अलग करके नहीं देखा जा सकता।... छत्तीसगढ़ी नाचा में पारंपरिक लोकगीतों के साथ-साथ कुछ ऐसी तुकबंदी भी जोड़ दी जाती हैं, जिसका सृजन आशुकवियों की तरह तात्कालिक होता है। लोकगीतों, लोक नृत्यों एवं लोकवाद्यों के साथ जब शारीरिक हलचलों, हावभावों एवं हास्यविनोद के व्यंग्यपरक, कथोपकथनों को जोड़ दिया जाता है तो इससे कुछ ऐसी मनोरंजक रसानुभूति होती है कि छत्तीसगढ़ी नाचा अर्थात् छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य 'नाचा' नृत्य के*

---

[19] अग्रवाल, महावीर; छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य: नाचा; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 1999; पृ. भूमिका से

साथ जुड़ने के बाद भी अपना नाट्य– स्वरूप स्थापित कर देता है।''[20]

नाच-गाना और छोटे–छोटे प्रहसन, जिसे गम्मत कहा जाता है, नाचा के मंच पर रात भर प्रस्तुत किए जाते हैं। यह रात्रि 9-10 से शुरू होकर भोर होने तक चलता रहता है। नाचा की ग्रामीण लोगों के बीच इतनी गहरी पैठ है कि लोग 20-20 मील से चलकर देखने आते थे और सारी-सारी रात नाचा देखते। छत्तीसगढ़ में नाचा दो प्रकार से प्रचलित हैं- खड़े साज का नाचा, दूसरा बैठे साज का नाचा। खड़े साज में वादक वाद्यों को कमर में बांध कर मंच पर घूमते हुए बजाते-गाते हैं और संगत करते हैं। खड़े साज का मुख्य वाद्य चिकारा है। बैठे साज में वादक मंच के एक तरफ बैठते हैं और रात भर नाचा की संगत करते हैं। नाचा के बीच में वादक भी कभी-कभी अभिनय करते हैं और दोहरी भूमिका निभाते हैं। वर्तमान समय में नाचा प्रस्तुत करने वाली अनेक मण्डलियाँ हैं। लेकिन इनमें चल-चित्र के हाव-भाव और आधुनिकता का दबाव अधिक है।

आज नाचा छत्तीसगढ़ की पहचान बन गया है। क्योंकि नाचा के कलाकार और नाचा की विशिष्ट लोक शैली अपने अंचल की सीमाओं को लांघकर अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक मंचों तक पहुच गई है। हबीब तनवीर जैसे निर्देशक ने इसे अपने नाटकों में प्रयोग कर करके इसकी प्रासंगिकता बनाई है। देखा जाए तो इम्प्रोवाइजेशन नाचा की जान है। इसकी इसी शक्ति के कारण हबीब तनवीर ने भी अपने नाटकों में इस इम्प्रोवाइजेशन पद्धति के माध्यम से लोक कलाकारों द्वारा सफलता प्राप्त की। उन्होंने 'आगरा बाजार', 'मिट्टी की गाड़ी', 'चरनदास चोर', 'बहादुर कलारिन' आदि नाटकों में नाचा शैली का इस्तेमाल किया।

सन 1973 में हबीब तनवीर ने रायपुर में एक महीने की एक नाचा वर्कशॉप आयोजित की थी। इस वर्कशॉप में रायपुर, दिल्ली, कलकत्ता के शहरी कलाकारों के अलावा सौ से अधिक लोक कलाकारों ने भाग लिया था। *''इस कार्यशाला में तीन पारम्परिक हास्य नाटिकाएँ , 'गम्मद'*

[20] तिवारी, कपिल (सं.); चौमासा; अंक 40, पृ. 75

को लिया गया जो आपस में मिलकर एक पूरा नाटक बनी। कुछ दृश्यों को वहीं रचा गया जो इन तीन हास्य कथाओं को एक कहानी बनाने में मददगार हुए। कुछ गीतों को जोड़ा गया जो पहले कभी मंच पर नहीं आए थे। इस प्रयोग से जो नाटक बना उसका नाम हुआ 'गाँव का नांव ससुराल मोर नांव दामाद'।" [21] यह नाटक हबीब तनवीर की रंगयात्रा का एक अहम मोड़ बना। इस प्रयोग को छत्तीसगढ़ में ही नहीं बल्कि दिल्ली में भी सराहा गया। इस वर्कशॉप के बाद उनके लिए नाटकों के निर्माण और प्रस्तुति में तुरंत रचना का प्रयोग करना आसान हो गया। यही से इन्प्रोवाइजेशन पद्धति का इक्का उनके हाथ लगा जो उनके बाकि अन्य नाटकों की भी बुनियाद है।

देखा जाए तो हबीब तनवीर का रंगमंच अपनी शुद्धता में किसी एक शैली या परम्परा का रंगमंच नहीं है। जैसा कि हबीब तनवीर कहते थे वे किसी लोक शैली की खोज में नहीं लगे, बल्कि वे उन कलाकारों को खोजते रहे जो अपनी शैली मंच तक लाए। इसमें शक नहीं है उनके कलाकारों की पृष्ठभूमि नाचा की है। लेकिन उनके नाटकों की प्रस्तुतियां परम्परागत नाचा नहीं है। *"तनवीर के नाटकों में कलाकारों की पूरी टीम काम करती है। जिसमें कुछ नाचते-गाते हैं। इसके अलावा उनके नाटकों में एक रूपगठनात्मक-बुनावट होती है जो नाचा में नहीं होती। यह बुनावट खासी जटिल होती है। नाचा में गायन और नृत्य का स्वायत्त अस्तित्व होता है जबकि तनवीर के नाटकों में इनका प्रयोग न सजावट के लिए है, न दो नायिकाओं को जोड़ने के लिए। वे नाटक की बुनियाद में बुने आवश्यक तत्व होते हैं जो नाटक के विषय और रूप को निश्चित आकार देते हैं।"*[22] अतः हबीब को नाचा शैली के प्रयोग में काफी सफलता मिली। लेकिन यह शैली नाचा की कोई परम्परागत शैली नहीं थी।

हबीब तनवीर ने 1973 में नाचा वर्कशॉप से 'गाँव के नांव ससुराल मोर नांव दामाद'

---

[21] मलिक, जावेद; 'एक गाथा पुरुष का बनना'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 144

[22] वही, पृ. 145

नाटक को तैयार किया था। इसमें छत्तीसगढ़ी विवाह गीत के साथ ददरिया, सोहर का प्रयोग पहली बार किया तो उन गीतों का महत्त्व अधिक बढ़ गया। हास्य के भीतर से निकलता व्यंग लोगों को खूब पसंद आया। इस प्रयोग से नाचा में भी खेतों के गाने मंच पर गाए जाने लगे। मतलब ठेठ लोकगीतों का चलन नाचा में बढ़ गया। हबीब तनवीर ने संस्कृत के कुछ नाटकों का प्रस्तुतिकरण नाचा शैली में ही किया है, जिसमें शूद्रक का नाटक 'मिट्टी की गाड़ी' अत्यंत सफल रहा है। उन्होंने ब्रेख्त का नाटक 'शाजापुर की शांति बाई' के नाम से और बैकेट का नाटक 'गोडोला अगौरत हौं' के नाम से भी नाचा-शैली में प्रस्तुत किए हैं।

देखा जाए तो नाचा के प्रचार-प्रसार में नया थियेटर से जुड़े गोविंदराम, फिदाबाई, माला बाई, भुलवाराम आदि लोककलाकारों ने विशेष भूमिका निभाई है। देश, विदेश में नाचा को प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन कलाकारों को है। कुछ नाचा कलाकार नाचा शैली से बाहर जाकर बड़े एवं समर्थ कलाकारों के रूप में अपनी प्रतिभा को प्रतिष्ठित कर सके हैं। इस कड़ी से सबसे सृजनात्मक और मूल्यवान काम हबीब तनवीर ने किया।

पंथी नृत्य

पंथी नृत्य छत्तीसगढ़ के सतनामी समाज की एक प्रमुख सामूहिक नृत्य परम्परा है। इस समाज में गुरु घासीदास का बड़ा सम्मान है तथा इसके गीतों में गुरु घासीदास के वाणी-वचनों, उनके जीवन चरित्र तथा उनके प्रति अपनी भावनाओं का गायन किया जाता है। इसमें आध्यात्मिक संदेश के साथ मानव जीवन की महत्ता होती है। कबीर, रैदास, दादू आदि संतों का वैराग्य-युक्त आध्यात्मिक सन्देश भी इसमें पाया जाता है। वास्तव में पंथी नृत्य धर्म, जाति, रंग-रूप आदि के आधार पर भेदभाव, आडम्बरों और मानवता के विरोधी विचारों को बढ़ाने वाली व्यवस्था पर हजारों वर्षों से शोषित लोगों और दलितों का करारा किन्तु सुमधुर प्रहार है।

इस समाज में सत्य को ईश्वर माना जाता है। सत्य का बड़ा महत्त्व है। इसलिए भी इसे सतनामी समाज कहा जाता है। इसमें सतनाम के प्रतीक स्तम्भ 'जैतखाम' पर सफेद ध्वज फहराया जाता है। पंथी नृत्य सामान्यतः माघ माह की पूर्णिमा (गुरु घासीदास की जयंती) या किसी त्यौहार पर जैतखंभ की स्थापना कर अनुयायियों द्वारा पारम्परिक तरीके से गीत-संगीत के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

इसका मुख्य वाद्य यंत्र मंदार एवं झांझ है। नृत्य में एक मुख्य नर्तक होता है जो पहले गीत की कड़ी उठाता है जिसे समूह के अन्य नर्तक सहयोगी दोहराते हैं और नाचते हैं। शुरुआत में यह नृत्य धीमी गति के साथ शुरू होता है। इसमें गीत और मृदंग की लय के साथ गति बढती है। यह द्रुत गति का नृत्य है इसलिए इसमें मुख्य रूप से शारीरिक कौशल, चपलता, स्फूर्ति देखने को मिलती है। गीत के बोल और अंतरा के साथ ही नृत्य की मुद्राएँ बदलती जाती हैं। बीच-बीच में मानव मीनारों की रचना और हैरतअंगेज कारना में भी दिखाए जाते हैं। नृत्य का समापन तीव्र गति के साथ चरम पर होता है। वेशभूषा की बात करें तो ये नृतक सफेद धोती, कमरबंध तथा घुंघरू पहने, गले में जनेऊ पहने नृत्य करते हैं। इस नृत्य में जितनी सादगी है उतना ही आकर्षण और मनोरंजन भी है।

पंथी नृत्य की ख्याति के सन्दर्भ में देवदास बंजारे का नाम हमेशा याद रहेगा। उन्होंने इस नृत्य के लिए काफी संघर्ष किया था। एक खास बात यह कि हबीब तनवीर ने देवदास बंजारे को अपने प्रसिद्ध नाटक चरनदास चोर में ब्रेक दिया था। यही से उनकी कला ने देश, विदेशों के कई शहरों में अपना कीर्तिमान रचा और पंथी को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक प्रसिद्ध किया। चूँकि 'चरनदास चोर' नाटक में एक चोर द्वारा सत्य के आग्रह का सन्देश दिया गया है। इसलिए हबीब तनवीर ने सतनामी समाज से इस नाटक को जोड़ते हुए पंथी नृत्य को नाटक का हिस्सा बना लिया। पूरे नाटक में यह नृत्य दो बार प्रस्तुत किया गया है। पहली बार नाटक की शुरुआत में जहाँ देवदास

बंजारे द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला एक पारम्परिक पंथी गीत प्रस्तुत किया गया है। यह गीत इस प्रकार है-

"सत्यनाम, सत्यनाम, सत्यनाम सार

गुरु महिमा अपार, अमृत धार बहाई दे,

हो जाई बेड़ा पार, सतगुरु ज्ञान बताई दे ...

गुरु महिमा अपार, अमृत धार बहाई दे।"[23]

दूसरी बार पंथी नृत्य तब आता है जब रानी मंत्री से चोर को हाथी पर बैठकर जुलुस के साथ लाने को कहती है। वहां भी बड़ा सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किया गया है। नाटक के समापन से पूर्ण चोर की मृत्यु के बाद सतनामी समाज के प्रतीक जैतखाम की स्थापना भी जाती है। पंथी नृत्य एवं जैतखाम को चित्र क्रमांक 1, 2, 3 में देखा जा सकता है।

चित्र -1

('चरनदास चोर' की शुरुआत में सत्यनाम... गीत पर पंथी नृत्य करते कलाकार)

[23] तनवीर, हबीब; चरनदास चोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2008; पृष्ट- 19.

चित्र -2

('चरनदास चोर' में रानी द्वारा भेजे गए जुलुस में पंथी नृत्य करते कलाकार)

चित्र - 3

('चरनदास चोर' में चोर की मृत्यु के उपरांत जैतखाम की स्थापना करते कलाकार)

राउत नाच

छत्तीसगढ़ में राउत नाच राउत जाति (यादव, अहीर) द्वारा गाया जाने वाला सामूहिक नृत्य है। यह वीर रस से युक्त पुरुष प्रधान नृत्य है जिसमें लाठियों द्वारा युद्ध करते हुए दोहों को बोला जाता है। इसमें तुरंत दोहे बनाकर गाए जाते हैं जो इस शैली की ऊर्जा का स्रोत है। इन दोहों के अंतर्गत वीर, हास्य, व्यंग्य, श्रृंगार की प्रस्तुति होती है। राउत समाज कृष्ण को श्रृंगार कला का नायक मानता है तथा श्रृंगार में एक मर्यादा का ध्यान रखा जाता है। साथ ही इसमें यह सन्देश है कि जीवन में प्रेम कितना आवश्यक है।

प्रायः राउत समाज द्वारा वर्ष में एक बार मड़ई का आयोजन किया जाता है जिसमें बाजा-गाजा के साथ घर-घर जाकर राउत नृत्य एवं दोहों की प्रस्तुति दी जाती है। इसी तरह यह दीवाली, गोबर्धनपूजा के दिन भी प्रस्तुत किया जाता है। राउत नाच के अवसर पर नर्तक दल बढ़िया किस्म के रंग-बिरंगे वस्त्र आभूषण पहनते हैं जिसमें उनकी स्थानीय छाप होती है। आँखों में काजल लगाए, धोती पहने, कमर पर पट्टे बंधे हुए, सिर पर कसी पगड़ी के ऊपर सुशोभित मोर पंख की कलगी, पैरों में घुंघरू बंधे हुए, एक हाथ में सजी हुए लाठी, दूसरे में ढाल सँभालते हुए नृत्य करते हैं। इस नृत्य में ढोल, दफड़ा, टिमकी, झुनझुना, झाँझ, मादर, मंजीरा आदि विभिन्न वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।

हबीब तनवीर ने इस लोक शैली का भी प्रयोग अपने नाटक 'चरनदास चोर' में प्रयोग किया। नाटक में चोर और एक गरीब सेतुवाले द्वारा मालगुजार के गोदाम से अनाज की चोरी करने के उद्देश्य से ये दोनों राउतों का वेश धारण कर राउत मण्डली से मिल जाते हैं और नृत्य प्रस्तुत करते-करते अनाज की चोरी कर लेते हैं। देखें चित्र क्रमांक 4, 5 में।

चित्र - 4
(चरन दास चोर तथा सेतुवाला अनाज चोरी करते हुए)

चित्र - 5
('चरनदास चोर' में मालगुजार के यहां राउत नाच करते कलाकार)

सुआ नृत्य

छत्तीसगढ़ में सुआ गीत महिलाओं द्वारा नृत्य करते हुए सामूहिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें छत्तीसगढ़ी नारी का जीवन दर्शन प्रमुखता से दिखता है जिसमें उनके श्रम, सुख-दुख, वियोग आदि की भावधारा समाहित है। परम्परा के अनुसार बांस की बनी टोकरी में धान

रखकर उस पर मिट्टी का बना, सजाया हुआ सुआ (तोता) रखा जाता है। कुछ महिलाएं जलता हुआ दीपक भी रखती है। लोक मान्यता है कि टोकरी में विराजित सुआ की यह जोड़ी शंकर और पार्वती के प्रतीक होते हैं। स्त्रियाँ इन्हीं जोड़ी को संबोधित करके सुआ गीत गाती हैं।

सुआ गीत छत्तीसगढ़ी लोक में इतना प्रिय है इसमें जाति बंधन नहीं है। हर वर्ग, हर जाति की महिलाओं ने इसे अपनाया है। महिलाएं कमर से झुककर गोल-गोल घूमते हुए इस गीत को गाती हैं। वर्ष में दीपावली के आसपास इसका आरंभ होता है जो अगहन माह (दिसम्बर- जनवरी) के अंत तक चलता है। महिलाओं, बालिकाओं की टोली खरीफ फसल के तैयार होने की ख़ुशी में घर-घर, गाँव-गाँव जाकर सुआ गीत, नृत्य प्रस्तुत करती हैं। इस दौरान दुकानदार, घर का मालिक अपनी इच्छानुसार नगद राशि या अनाज देता है। यह परम्परा का ही हिस्सा है।

इस गीत की एक खासियत यह है कि इसमें कोई वाद्ययंत्र उपयोग में नहीं लाया जाता। इसमें महिलाओं द्वारा गीत में तालियों से ताल दिया जाता है। कुछ जगह ताली से स्वर को तेज करने के लिए हाथों में लकड़ी का गुटका भी रख लिया जाता है।

सुआ-गीत-नृत्य का प्रयोग हबीब तनवीर ने अपने कई नाटकों में किया है। 'चरनदास चोर' में मंदिर में चोरी के दृश्य के बाद गीत गाते हुए इस नृत्य को कलाकार करते देखते हैं। वहीं 'आगरा बाज़ार' में मेले के एक दृश्य में महिलाएं मंच के दाएं ओर खड़े होकर गीत गाते हुए इस नृत्य को करते हुए नजर आती हैं। नाटक 'गाँव के नांव ससुराल मोर नाम दामाद' में भी सुआ नृत्य की प्रस्तुति की गई है। नाटक की शुरुआत में जब झंगलू, मंगलू तथा शांति मानती आपस में हास -परिहास करते है तब शांति और मानती नाचते हुए बीच-बीच में सुआ नृत्य भी करती है। फिर अगले ही दृश्य में महिलाओं का एक समूह मंच पर गाते हुए सुआ नृत्य करती है। सुआ नृत्य की इन विभिन्न नाटकों में प्रस्तुति को चित्र क्रमांक 6, 7 तथा 8 में देखें।

चित्र - 6
('चरनदास चोर' में सुआ नृत्य करते कलाकार)

चित्र - 7
('आगरा बाज़ार' में सुआ नृत्य करते कलाकार)

चित्र - 8
('गाँव के नाम ससुराल...' में सुआ नृत्य करते हुए मानती और शांति)

बांस गीत

छत्तीसगढ़ में बांस गीत राउत जाति की गायन की एक और प्रमुख लोक शैली है। इसलिए इस गीत के अधिकतर पात्र, नायक-नायिका रावत, अहीर ही होते हैं। गायन की शैली में गाय, भैस पर आधारित कथाओं की संख्य अधिक है। इसकी प्रमुख लोक कथाओं में शीत बसंत, भैंस सोन सागर, चंदा ग्वालिन की कहानी, अहिरा रूपईचंद, महाभारत के पात्र कर्ण और मोरध्वज का भी वर्णन है। बांस गीत में कहानी होने के कारण एक ही कहानी पूरी रात तक चलती है। कभी-कभी कई रातों तक चलती है। परम्परागत बांस गीत में एक गायक होता है। उसके साथ दो बांस बजने वाले होते हैं। गायक के साथ और दो व्यक्ति होते हैं, जिन्हें रागी और डेही कहते हैं।

गीत में सबसे पहले वादक बांस को बजाता है और जहाँ पर वह रुकता है वहीं से दूसरा वादक उस स्वर को आगे बढ़ाता है। इसके बाद ही गायक का स्वर सुनाई पड़ता है। वह कथा को गीत के माध्यम से आगे बढ़ाता जाता है। रागी गायक के स्वर में साथ देता है और डेही गायक और रागी को वाह-वाह, अच्छा, हो जैसे शब्दों से प्रोत्साहित करता रहता है। इसमें गाथा गायन के साथ मोटे बांस के लगभग एक मीटर लम्बे सजे धजे बांस नामक वाद्य का प्रयोग होता है। इसलिए इसे बांस गीत कहते हैं। छत्तीसगढ़ के हर उस गाँव में जहाँ यादव हैं, बांस गीत जरुर होता रहा है।

हबीब तनवीर ने अपने नाटक ‘कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना’ में इस शैली का प्रयोग किया। नाटक का प्रारम्भ ही बांस गीत की धुन से होता है। वादक परम्परागत वेशभूषा में मंच पर बैठकर कुछ देर तक बांस बजाता है और फिर खड़े होकर बांस को बजाता हुआ नेपथ्य में चला जाता है। देखें चित्र क्रमांक 9 में।

चित्र - 9

('कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' में बांस बजाते हुए कलाकार)

हबीब तनवीर ने नाटकों का यदि गौर से अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि उनके नाटक में एक से ज्यादा लोक शैलियों का प्रयोग हुआ है। इस कड़ी में यह नाटक भी अपवाद नहीं हैं। इसमें केवल बांस गीत शैली का ही प्रयोग नहीं किया है, अपितु अन्य शैलियों का भी प्रयोग हुआ है। नाटक में पारम्परिक लोक नाटक यक्षगान और पारसी शैली के पर्दे की योजना को भी देखा जा सकता है। देखें चित्र क्रमांक 10 में।

चित्र 10

('कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' नाटक में पंक का पर्दे के माध्यम से प्रवेश)

गौर माडिया नृत्य

गौर माडिया नृत्य बस्तर जिले में गौर माडिया जनजाति द्वारा किया जाता है। यह नृत्य प्रायः विवाह आदि के अवसरों पर किया जाता है। इस नृत्य का नामकरण गौर भैंस के नाम पर हुआ है। पुरुष नर्तक रंगीन और विशिष्ट वेशभूषा धारण करते हैं, जिसमें भैस की दो सींग और उन पर मोर का एक लम्बा पंख-गुच्छ और पक्षी के पंख लगे होते हैं। इसके किनारे पर कौड़ी की सीप से बनी झालर झूलती हैं, जिससे उनका चेहरा थोड़ा-सा ढका रहता है। महिलाएं पंखों की जड़ी की हुई एक लोग चपटी टोपी पहनती है। इसमें नर्तकियां अपने साधारण सफ़ेद या लाल रंग के वस्त्र के साथ अनेक प्रकार के आभूषणों को धारण करती है। ये महिलाएं एक आन्तरिक गोला बनाकर ज़मीन पर लय के साथ डंडे बजाती, पैर पटकती, झूमती, घुमती हुई गोले में चक्कर लगाती रहती है। वहीं पुरुष नर्तक एक बड़ा बाहरी गोला बनाते हैं और तीव्र गति से अपने क़दम घुमाते और बदलते हुए जोर-जोर से ढोल पीटते हैं। बस्तर क्षेत्र के इस नृत्य शैली को भी हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में प्रयोग किया है। पहला नाटक 'कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' और दूसरा नाटक 'राजरक्त' है। इस नृत्य शैली की झलक देखें चित्र क्रमांक 11,12 में।

चित्र - 11

('कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' में गौर नृत्य करे कलाकार)

चित्र- 12

('राजरक्त' नाटक में गौर नृत्य करते हुए लोक कलाकार)

पंडवानी

इसके विकास की एक लम्बी यात्रा है। यह प्रधान गौड़ गाथा गायकों से गुमंतु समुदाय 'देवार' के पास आया और उनके माध्यम से छत्तीसगढ़ी लोक में। कलात्मक दृष्टि से इसका बड़ा मूल्य है क्योंकि देश में किसी और जनजाति ने महाभारत का आख्यान स्थानीय प्रकृति और स्मृति के भीतर पूर्ण रचित नहीं किया है। 'अर्जुन का सारथी' और 'वेणी संहार' नाटक में पंडवानी का प्रयोग किया है।

चंदैनी

प्रेम-प्रधान गाथाओं के अंतर्गत 'लोरिक-चंदा' की गाथा, जिससे छत्तीसगढ़ में 'चंदैनी' के नाम से जाना जाता है, अधिक प्रचलित है। *"छत्तीसगढ़ी गद्य में इसकी कथा को सर्वप्रथम सन 1890 में श्री हीरालाल काव्योपाध्याय ने चंदा के कहानी के नाम से प्रकाशित किया था। वही बेरियर एल्विन ने सन 1946 में लोकगाथा के छत्तीसगढ़ी रूप को अंग्रेजी में अनुवाद करके अपने*

ग्रंथ फोक सांग्स ऑफ छत्तीसगढ़ में अद्भुत किया है।''[24] इसकी कथा एक विवाहित राजकुमारी चंदा और वीर नायक लोरिक के प्रेम संबंधों के कारण पारिवारिक विरोध, सामाजिक तिरस्कार, संघर्षों और चुनौतियों का सामना करते हुए बच निकालने की घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमती है।

छत्तीसगढ़ में इसे प्रायः दो लोग मिलकर गाते हैं। एक प्रमुख गायक होता है और दूसरा उसके स्वर (राग) में स्वर मिलाने वाला रागी कहलाता है। इसका कार्य लोकगाथा में हुकृति देने वाले की तरह होता है। अंतर बस यह है कि इस लोकगाथा का रागी पूरी गाथा जानने के कारण एक ओर जहाँ प्रमुख गायक के आधे भाग 'अर्धाली' को उठाता है, वहीं हुकृति और उत्सुकता के द्वारा श्रोता वर्ग को भाव और कथा समझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है।

लोक में रचे बसे कलाकार ही महान परम्पराओं को जीवन्त बनाये रखने में सक्षम है। चंदैनी के लोक कलाकारों ने आज भी इसे जीवित रखा है। इस क्षेत्र में दाऊ रामचंद्र देशमुख, चिंतादास बंजारे, खुमान साव का नाम सबसे पहले आता है। इन सभी लोगों की मेहनत और समर्पण ने चंदैनी को बनाये रखा। चंदैनी को आधार बनाकर उनको नाटक के रूप में खेलने वाले हबीब तनवीर साहब को भूलना संभव नहीं। उन्होंने इसे सोन-सागर नाम से प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति में चंदैनी के प्रसिद्ध गायक रमई की विशेष भूमिका रही। *''चंदा अउ लोरिक के है ये प्रेम कहानी/हमर देश के चंदैनी...''*[25] जैसे चंदैनी के गीतों द्वारा रमई कथा को आगे बढ़ाते हैं। वास्तव में यह प्रयोग किसी रंगकर्मी द्वारा इससे पहले नहीं देखा गया था। लोक से कथासूत्र उठाते हुए तनवीर ने इस गाथा में एक बार फिर प्राण फूंक दिए।

इसके अतिरिक्त हबीब तनवीर छत्तीसगढ़ की लोक रीतियों, अनुष्ठानों और परम्पराओं

---

[24] यादव, डॉ. सोमनाथ; ' छत्तीसगढ़ की लोकगाथा-लोरिक चंदा'; http://www.Suhai-bilasa.blogspot.com

[25] महावीर अग्रवाल , हबीब तनवीर का रंग- संसार, श्री प्रकशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 163

को भी अपनी रंगदृष्टि में पूरा स्थान देते हैं। 'छेर–छेरा' एक पर्व है। उस पर्व को वो ले आए थे। वे कोई भी चीज छत्तीसगढ़ की छोड़ना नहीं चाहते थे। वे कहते थे कि लोक में हो रहा है न। लोग कर रहे थे। वह लोक की जीवंत परम्परा है। उस रीति को देखों, उसे समझते थे वे। उनके पास में लोक की चीजें सजावटी नहीं थी। वे सारे छत्तीसगढ़ को जीते थे। छत्तीसगढ़ के लोक को जीते थे। उसे समझते थे। उसकी एक-एक रीति को उसके संगीत को, उसकी वेशभूषा को, उसकी भाषा को, उसकी कला को, उसके नृत्य को, उसकी गायन को, सब ले आये। एक जनपद जो है उसको अपनी सम्पूर्णता में संसार के सामने रख दिया तनवीर ने।

देखा जाए तो लोक मंचन की परम्परा तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है तथा इसके विविध रूप स्वाभाविक परिवर्तन के साथ लोक जीवन में आज भी देखे जा सकते हैं। वे अपने नाटकों में लोक और शास्त्र दोनों का समन्वय करते हैं, एक तरह से परम्परा में रचनात्मक हस्तक्षेप। इस सन्दर्भ में वे लिखते हैं कि *"मैंने विचार किया कि आप ऐसा कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं कर सकते जब तक आप अपनी जड़ों से न जुड़े और अपनी परम्पराओं की पुनर्व्याख्या न करें। साथ ही, परम्पराओं का उपयोग एक ऐसे माध्यम के रूप में करें जो आज के आधुनिक सन्दर्भों और समकालीन संदर्भों को अंतरित कर सके।"*[26]

हबीब तनवीर के नाटकों में लोक की स्थानीयता का बहुत विराट स्वरूप है। लेकिन उनके नाटक लोक नाटक नहीं है, वैज्ञानिक सोच के साथ परिमार्जित आधुनिक नाटक है। अपनी शैली के संदर्भ में स्वयं बताते हैं, *"...जब लोग मुझसे लोक शैली के बारे में बात करते हैं तो वहां एक गलतफहमी यह है कि गोया मैं सब कुछ छत्तीसगढ़ी नाचा शैली में कर रहा हूँ, महज़ इसीलिए कि मेरे कलाकार छत्तीसगढ़ी लोक शैली के हैं। मेरे नाटकों में छत्तीसगढ़ी भाषा अक्सर होती है। शैली*

[26] वाजपेयी, अशोक (स.); नटरंग; अंक 86-87; जुलाई-दिसंबर 2010; पृ. 51

को निश्चित करने में कई चीजें शामिल होती है। शैली का मतलब सिर्फ भाषा नहीं होती।''[27]

वास्तव में एक जनपदीय लोकनृत्य, गाथा और गीत-गायन अथवा लोक की नाट्य परम्पराओं के विभिन्न रूप एक स्थानिक संस्कृति की सदियों में निर्मित हुई परम्परा का एक भाग है। वे एक सामुदायिक जीवन के उत्सव का गान है जिसमें समुदाय के सभी लोग भागीदार होते हैं। जीवन के विभिन्न अवसरों और अनुष्ठानों को समारोहित करते है। इन स्थानिक लोकरंग की छाया से हमारा हिंदी रंगमंच भी समृद्ध हो रहा है। इस दिशा में रंगकर्मी हबीब तनवीर की विशेष भूमिका रही। उन्होंने छत्तीसगढ़ी लोक शैली के तत्त्वों और लोक कलाकारों के साथ एक नयारंग प्रयोग किया जो लोक (पारम्परिक) और आधुनिक तथा स्थानिक और वैश्विक सब एक साथ था। उन्होंने इस शैली के आधार पर भारत में आधुनिक रंगमंच का मुहावरा ही बदल दिया।

4.2 रंगोपकरण

'रंगोपकरण' शब्द रंग और उपकरण इन दो शब्दों के मेल से बना है। इसमें 'रंग' मंच या रंगमंच का द्योतक है तो 'उपकरण' उस मंच पर प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ हैं। अर्थात् रंगमच पर प्रयुक्त होने वाली सामग्री या वस्तुएँ ही रंगोपकरण है। ये रंगोपकरण निर्देशक और अभिनेता की सूक्ष्म संवेदना से अर्थवान होते हैं। भरतमुनि के अनुसार *''प्रयोग के लिए किसी भी स्थूल उपादान से बना शिल्प या रचना उपकरण हैं। नाटक की आवश्यकता और प्रकृति के अनुसार अनेक उपकरण हो सकते हैं जिनका प्रयोग निर्देशक और अभिनेता की कल्पना-शक्ति पर निर्भर करता है।''*[28]

रंगमंच पर प्रयुक्त ये विविध उपकरण या वस्तुएँ रंग-व्यापार में शामिल होकर अपनी

---

[27] वाजपेयी, अशोक (स.); नटरंग; अंक 86-87; जुलाई-दिसंबर 2010; पृ. 62

[28] रस्तोगी, गिरीश; रंगभाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 173

सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता से नाटक में प्रभावी भूमिका निभाती हैं। सुविधा की दृष्टि से इन वस्तुओं, उपकरणों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहला- दृश्य-रचना के लिए अर्थात् मंच सामग्री और दूसरा- पात्र अपने अभिनय में प्रयुक्त करते हैं अर्थात् पात्र सामग्री। देखा जाए तो ये दोनों रंगभाषा का एक अभिन्न अंग है। गिरीश रस्तोगी पात्र से रंगोपकरण को जोड़कर देखती हैं। वे लिखती हैं, *''पात्रों से रंगोपकरणों का स्पर्श संबंध होता है। अगर अभिनय के समय पात्र इन्हें नहीं छूता है तो यह दृश्य-भाषा का रूप है और अगर छूता है तो ये रंगोपकरण हैं।''*[29] मतलब कि अभिनेता के प्रयोग में आए मंच के स्थूल उपकरण रंगोपकरण का हिस्सा हैं।

आन्तरिक रूप धारण तो अभिनेता की अपनी निजी शक्ति है ही, परन्तु बाह्य रूप-धारण आहार्य माध्यमों की सहायता से होता है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रंगोपकरण को आहार्य अभिनय के अंतर्गत शामिल किया। आहार्य अभिनय- भले ही अभिनय ने अन्य प्रकारों (आंगिक, वाचिक, सात्विक) की तुलना में स्थूल और बाह्य है पर यह भी अभिनय का आधारभूत तत्त्व है। सामान्यतः आहार्य के चार प्रकार किए गए हैं- पुस्त, अलंकरण, अंग-रचना और सजीव। पुस्त में कई विधियों से दृश्यबंध तैयार किए जाते हैं। अलंकरण और अंगरचना में प्रसाधन, आभूषण आते हैं तथा प्राणियों की मंच पर गतिशीलता सजीव के अंतर्गत शामिल की गई है। सजीव में देव, दानव, पशु-पक्षी के मुखौटे और पर्वत, रथ, वृक्ष आदि के दृश्य तैयार किए जाते हैं।

भारतीय पारम्परिक (संस्कृत और लोक) नाटकों में मुखौटों का प्रयोग पाया जाता है। मुकुट- मुखौटे, रूप-सज्जा, वेश-भूषा आदि भावों एवं पात्रों के चित्रण में अभिनेता की मदद करते हैं। 'चूँकि हर वस्तु को उपकरण के रूप में मंच पर नहीं लाया जा सकता इसलिए उसे कभी लोकधर्मी पद्धति से करना होता है, कभी प्रतीकात्मक और सांकेतिक पद्धति से। मुकुट, मुखौटे

---

[29] रस्तोगी, गिरीश; रंगभाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 174

आदि स्थूल उपकरण हैं पर वे अभिनेता की सृजन-क्षमता बढ़ाने के लिए ही है। *''भरत ने उपकरणों के प्रयोग में आस्वादन तत्त्व को ज्यादा महत्त्व दिया है जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम, मृच्छकटिकम आदि में रथ, धनुष, गाड़ी, अश्व, विमान, पालकी आदि का आभास अभिनेता ही कराता है। कभी किसी प्रस्तुति में सारथी के हाथ में छोटी पट्टी भी दे दी जाती है। कभी लोकनाट्यों में रुमाल से ही बहुत सारे काम हो जाते हैं जैसे मालवा के माच में। भरत ने बहुत-सी समस्याओं का हल पात्रों की गतियों, हस्त और पाद की मुद्राओं से निकाला है। संस्कृत मंच स्थूल उपकरणों के स्थान पर इसी सौन्दर्यमूलक सांकेतिक शैली को प्रधानता देता है।''*[30]

देखा जाए तो निर्देशक रंगोपकरण का चयन अपनी शैली के अनुसार करता है। भले ही पारम्परिक शैली में किए गए नाटकों में मुकाभिन्य द्वारा उपकरण के अभाव की पूर्ति की जाती हो, परन्तु थोड़ी बहुत आवश्यक सामग्री वहाँ भी प्रोयोग में लायी जाती थी। अभिनेता और दर्शकों के बीच कल्पनाशीलता का एक अटूट रिश्ता था। दर्शक अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग कर स्थान विशेष का बोध कर लेते हैं। लेकिन उपकरणों के आधिकाधिक प्रयोग तो जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु यथार्थवादी रंगमंच से शुरू हुए। इससे दृश्यबंध की एक व्यापक परिकल्पना सामने आई। मंच पर चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला के उपयोग की संभावनाएं और बढ़ गई।

इन स्थूल उपकरणों द्वारा निर्देशकों, अभिनेताओं ने मानवीय सम्बन्ध और परिवेश बनाने में सुविधा महसूस की। मंच पर वे सब चीजें ज्यों की त्यों दिखाई जाने लगी जिनका वास्तविक जीवन में प्रयोग होता है। जब यथार्थवादी नाटक और रंगमंच के हु-ब-हु पन और एकरसता के विरोध में कई नाट्य आन्दोलन उठ खड़े हुए तब दृश्यबंध के प्रति विचारों में गहरा परिवर्तन आया। दृश्यबंध सांकेतिक, व्यंजनापरक, काव्यात्मक होने लगा। लेकिन जो भी हो एक बात से

---

[30] रस्तोगी, गिरीश; रंगभाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 173

मुकर नहीं सकते कि यथार्थवादी शैली हमेशा रंगमंच के केंद्र में रही और आज भी है।

आहार्य अभिनय में अलंकरण और अंगरचना का भी काफी महत्त्व है। इन्हें सामान्य शब्दों में वेशभूषा और रूप-सज्जा भी कहा जाता है। वेशभूषा और रूपसज्जा से अभिनेता अपने आप को चरित्र के निकट महसूस करने लगता है। साथ ही दर्शकों के मन में भी चरित्र के संबंध में एक हल्का खाका या प्रारूप बन जाता है। देखा जाए तो ये चरित्र को विश्वसनीय बनाने में मदद करते हैं। एक राजा, एक गरीब, एक शहरी, एक ग्रामीण, ब्रह्मचारी, देव, दासी आदि पात्रों के बीच पहला फर्क वेशभूषा और रूप-सज्जा द्वारा रेखांकित हो जाता है। जैसे फटे-चीथड़े वस्त्र, हाथ में झोला और कटोरा देखकर समझ जाते हैं कि यह पात्र भिखारी है। वेशभूषा पात्र के बारे बहुत कुछ कहती है और यह कहना ही रंगमंच पर उन्हें आहार्य भाषा का अंग बना देती है। इसलिए पारम्परिक रंगमंच के साथ-साथ समकालीन रंगमंच पर भी वेशभूषा, रूप-सज्जा का काफी महत्त्व होता है। हाँ यह जरुर है कि विभिन्न शैलियों और रंगभाषाओं के नाटकों में वेशभूषा आकल्पन पर्याप्त भिन्न होता है।

इस संदर्भ में रंग समीक्षक आशीष त्रिपाठी लिखते हैं, *"वेशभूषा के हर हिस्से को भी नाटक के अर्थ और पात्रों के चरित्र को उभारने में मददगार होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब वेशभूषा पात्र के स्वभाव, वर्ग, आयु, समाज में स्थान, उसकी व्यक्तिगत पसंन्द, उसकी मनोदशा और उसके चरित्र को ध्यान में रखकर परिकल्पित की गई हो और उस चरित्र की कुछ खास विशेषताओं को उभारती हो।"*[31] साथ ही पात्रों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को भी उसे व्यक्त करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर हम हबीब तनवीर के नाटक 'चरनदास चोर' को देख सकते हैं। इसमें वेशभूषा के द्वारा पात्रों के वर्ग, स्वभाव, सामाजिक हेसियत को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नाटक के पात्रों जैसे चोर, पुलिसवाला, साधू, मालगुजार, सेतुवाला, पंडित, मंत्री, रानी, राज पुरोहित आदि की वेशभूषाओं द्वारा उनकी चारित्रिक भिन्नताओं को स्पष्ट किया जा

[31] त्रिपाठी, आशीष; समकालीन हिंदी रंगमंच और रंगभाषा; शिल्पायन, दिल्ली; संस्करण 2007; पृ. 57

सकता है। 'चरनदास चोर' नाटक के पात्रों की वेशभूषाओं को चित्र क्रमांक 13, 14, 15, 16 तथा 17, 18, 19, 20 में देखें।

चित्र – 13
(पुलिस तथा चोर की वेशभूषा)

चित्र – 14
(गुरु की वेशभूषा)

चित्र -15
(गरीब सेतुवाले की वेशभूषा)

चित्र - 16
(मालगुजार की वेशभूषा)

चित्र - 17
(पंडित की वेशभूषा)

चित्र - 18
(मंत्री तथा मुनीम की वेशभूषा)

चित्र - 19
(राज पुरोहित की वेशभूषा)

चित्र - 20
(रानी की वेशभूषा)

इसी तरह उनके अन्य नाटकों के पात्र भी अपनी खास वेशभूषा और रूपसज्जा से पहचाने जाते हैं। हबीब तनवीर ने यथार्थवादी और लोक दोनों ही शैलियों में नाटक प्रस्तुत किये हैं। अतः उनके यहां उसी तरह के वेशभूषा और दृश्यांकन का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के तौर पर 'आगरा बाज़ार' को लिया जा सकता है। नाटक यथार्थवादी और लोक दोनों शैलियों का मिश्रण है। मंच सज्जा या दृश्यांकन में वे बिल्कुल यथार्थवादी दिखते हैं, लेकिन नाटक की प्रस्तुति में लोक शैली अपनाते हैं। 'आगरा बाज़ार' की यथार्थवादी मंच सज्जा को देखिए चित्र क्रमांक 21, 22 में।

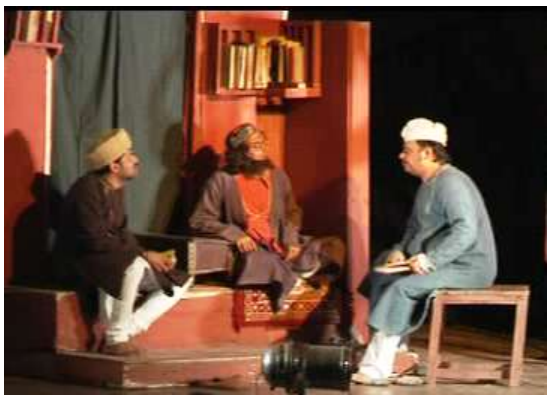

चित्र - 21
(किताब वाले की दुकान का दृश्य)

चित्र -22
(पतंग वाले की दुकान का दृश्य)

देखा जाए तो हबीब तनवीर का रंगकर्म लोक-चेतना पर आधारित हैं। उन्होंने लोक कथाओं को, संस्कृत नाटकों को लोक शैली में प्रस्तुत किया। अतः इन नाटकों की रंगसज्जा, रंगोपकरण का साधन भी लोकरंग से जुड़ा हुआ है। उन्होंने पात्रों की सज्जा में मुखौटों का प्रयोग किया है। 'मिट्टी की गाड़ी' के संदर्भ में अमितेश कुमार का कहना है, *"मिट्टी की गाड़ी का मंचन करते हुए हबीब साहब ने उसके आलेख में कुछ परिवर्तन किया। कविता को हटा दिया। नाटक के अन्दर के गोल मूवमेंट को पहचानते हुए गोल चबूतरे का सेट बनाया। वेशभूषा को स्टाइललाइज्ड बनाया। मुखौटों पर इस्तेमाल किया, स्पेश मेकअप ने इन सबको गहरा दिया है।"*[32] 'मिट्टी की गाड़ी' का मंच पारम्परिक नाटकों के ढांचे पर निर्मित किया गया जहाँ कहानी को बिना किसी बाधा के कह जाने के लिए मंच से सभी उपकरण हटा दिए और केवल एक गोल चबूतरा बचा। देखें चित्र क्रमांक 23 में।

चित्र - 23
('मिट्टी की गाड़ी' नाटक की मंच सज्जा)

[32] कुमार, अमितेश कुमार; 'रंग शैली'; अशोक वाजपेयी (स.); नटरंग; अंक 86-87; जुलाई-दिसम्बर, 2010; पृ. 63

लोक मंच पर अक्सर मंच सज्जा बहुत सहज, सादगी भरी हुई होती है। मंच के चारों ओर बांस के खम्बे लगे होते हैं और उन पर बल्ब लगा कर प्रकाश व्यवस्था कर दी जाती है। इसी तरह हबीब तनवीर भी अपने नाटकों में रंगसज्जा सादगी भरी रखते थे। 'आगरा बाज़ार' और 'जिस लाहौर ...' आदि नाटकों की रंग सज्जा में यथार्थवादी ढांचा अपनाया। बाकी उनके अधिकांश नाटकों में पेड़ लगाकर किसी में मंच को पूरा खाली रखकर दृश्यबंध तैयार कर लिया जाता है। 'चरनदास चोर' में एक प्लेटफोर्म और उसके किनारे में लगे पेड़ से दृश्यबंध तैयार हो जाता है। 'चरनदास चोर' में पेड़ पर पड़ने वाले विभिन्न कोणों के प्रकाश से बड़ा ही प्रभावी दृश्य उपस्थित होता है। देखें चित्र क्रमांक 24 में।

चित्र - 24
('चरनदास चोर' नाटक की मंच सज्जा)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हबीब तनवीर के नाटकों में रंगोपकरण का प्रयोग बहुत सहजता से, सादगी से और बड़ी सूझ-बूझ के साथ हुआ है। वेशभूषा में छत्तीसगढ़ी परिधान को महत्त्व दिया है। उन्होंने इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि उनकी शिक्षित नागर चेतना का लेखक उनके ग्रामीण अभिनेताओं, कलाकारों पर हावी न पड़े। *"यह साझा कर्म है जहाँ दोनों एक-दूसरे*

को सम्पन्न बनाती है। इसका बढ़िया उदाहरण है जिस तरह से तनवीर अपनी कविताओं को लोकधुनों और संगीत से जोड़ देते हैं। इसमें उनकी नगर चेतना की तर्कशक्ति और कल्पना भी बची रहती है, उनका सामाजिक-आर्थिक तर्क भी बचता है, लेकिन लोक परम्परा, संगीत को नुकसान नहीं पहुँचता, दूसरा उदाहरण है उनका अपने अभिनेताओं को बिलकुल सामने लाना। इसमें वे लाइट, सेट आदि के लोभ से बचते हैं। इस तरह हबीब तनवीर के नाटक परम्परा और आधुनिकता का एक बढ़िया यौगिक बनाते हैं। इसमें एक तरफ लोक परम्पराओं की सृजनात्मक ऊर्जा है तो दूसरी तरफ आधुनिक आलोचनात्मक चेतना है।''[33]

4.3 रंग संगीत

नाटक और रंगमंच में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गिरीश रस्तोगी के अनुसार, "नाटक में संगीत की हैसियत महज एक अलंकार वस्तु की नहीं है, वह समग्र रंगनुभाव के एक प्रभावी घटक के रूप में प्रतिष्ठित है।"[34] इसी प्रकार जयदेव तनेजा जी का भी विचार है कि "नाटक के कथ्य को सम्पूर्ण और प्रभावशाली रूप में श्रोताओं तक पहुँचाने में संगीत और ध्वनि-प्रभावों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।"[35]

इसलिए हम देखते हैं कि संगीत प्रधान नाटक अक्सर चर्चित हो जाते हैं। मगर संगीत प्रधान नाटकों का रंगमंच पर प्रदर्शन आसान नहीं होता। ऐसे में पूरा भार ऐसे में संगीत निर्देशक के ऊपर आ जाता है। ब.व. कारंत का कथन है, *"निर्देशक न तो संगीत केवल अलंकरण के रूप में प्रयोग करता है, न मात्र भराव के लिए, नहीं भावोद्दीपन के लिए, न कथा के विकास के लिए और न कार्य व्यापार के लिए, बल्कि इन सबसे भिन्न रंगमंचीय संगीत रचना– रूढ़िगत स्वर रचना नहीं*

---

[33] मलिक, जावेद; हबीब तनवीर: 'एक गाथा पुरुष का बनना'; कमला प्रसाद; कलावार्ता; अंक 103, पृ. 148

[34] रस्तोगी, गिरीश, रंगभाषा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 177

[35] तनेजा, जयदेव; आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श; राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 13

है, बल्कि एक ध्वनि संयोजन है। पात्रों के संवाद भी इसी ध्वनि संयोजन का अंश बन जाते हैं। इस दृष्टि से यहां कोई स्वर बेसुरा नहीं है, कोई ताल बेताल नहीं है, कोई ध्वनि अशून्य नहीं है। यंत्रों की मर-मर, हवा सॉय सॉय, झरने की कल-कल ये सब संगीत की भांति हैं।''[36]

लोक नाट्यों की सबसे बड़ी धरोहर उनका संगीत एवं नृत्य पक्ष है। यह संवादों की संचरण शक्ति को बढ़ाता है तथा शब्दों की व्यंजनाओं में चार चाँद लगाता है। वह ऐसा पक्ष है जो अभिव्यंजित पदों को श्रोताओं के स्मृति-पटल पर लम्बे समय तक स्थापित कर देता है। दूसरा यह कि बहुधा लोकनाट्यों में उसके अभिनेता और दर्शकों को शब्द ज्ञान नहीं होता। उनको कथ्य को लिख लेने की सामर्थ्य नहीं होता। अतः हर पद उन्हे कंठस्थ होना आवश्यक हो जाता है। इसलिए भी लोकनाट्यों में गेय संवादों की प्रधानता रहती है। दर्शक समुदाय भी गीतों का आनंद लेने के लिए ही दूर-दूर से उमड़ पड़ता है। एक ही बात को कई प्रकार से कहने की परिपाटी भी इन लोक नाटकों में परिलक्षित होती है। अतः इन पुनरावृति की नीरसता को दूर करने के लिए गीतों की धुनों में विभिन्नता के दर्शन होते थे।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में छत्तीसगढ़ के लोक संगीत का, संस्कृति का जो प्रयोग किया, वह लोक परम्परा के लोक कलाकारों के कंठ, गायन के अंदाज, नृत्य, ताल, लय के कारण एक दूसरा ही रंग लिए था। फ़िदा बाई एक अच्छी लोक गायिका थी। *''एक गायिका तो अद्भुत थी। हवाओं को चीरता पर बेहद मधुर स्वर। वे धुनें, वो नृत्य अपनी लोक-परम्परा के कारण जीवंत थी जिसकी नाटकीय संभावनाएं हबीब तनवीर ने भरपूर रचनात्मकता के साथ खोजी थी।''*[37]

---

[36] शुक्ल, डॉ. धीरेन्द्र (स.); हिंदी नाटक और रंगमंच; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, राजस्थान; संस्करण 2009; पृ. 218

[37] रस्तोगी, गिरीश; रंगभाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 177

हबीब तनवीर के संदर्भ में डॉ. कपिल तिवारी कहते हैं, *''वे शीर्षस्थ निर्देशक ही नहीं, रंग-लेखक और संगीतज्ञ भी है। उन्होंने समग्रता की रंगदृष्टि का विस्तार करते हुए नई रंग भाषा का आविष्कार किया है। उनके रंग-दर्शन और दृष्टि को, रंगान्दोलन को उनकी मंचीय यात्रा का हमसफर बनकर ही जाना और समझा जा सकता है।''*[38]

ब.ब. कारंत ने कहा, *''रस संगीत अलग नहीं है। यह भाषा का हिस्सा है, संवाद का हिस्सा है। हबीब बहुत सिद्धहस्त है। इनके नाटकों में कविता को, शायरी को, संगीत को अलग-अलग करना कठिन है। नाटक में कभी वादी, तो कभी कभी संवाद हो जाता है। नाटक का औचित्य सिद्ध होना उनके नाटकों की बहुत बड़ी सफलता है। ऐसे नाटकों को एक व्यक्ति प्रस्तुत करे, यह भारत में ही संभव है। उनके नाटकों में शायरी के पीछे, स्वरों के पीछे, अर्थ छिपा रहता था। रस संगीत में कोई गुरु परम्परा नहीं है, फिर भी मैं इनसे प्रेरित हुआ।...हबीब तनवीर दार्शनिक और रंगसंगीतज्ञ के बहुत बड़े साधक ही नहीं संत भी हैं।''*[39]

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों के मंचन में छत्तीसगढ़ी लोक गीत-संगीत एवं लोक कलाकारों का प्रभाव जमाया है। हबीब ने महावीर अग्रवाल से एक बातचीत के दौरान स्पष्ट कहा है, *''छत्तीसगढ़ में लोक धुनों का जो खजाना है, उसकी दुनिया में कोई मिशाल नहीं है। छत्तीसगढ़ ही नहीं, किसी भी क्षेत्र के लोक गीत और लोक संगीत हो, उसका जो जादू है, वह कलाकारों के सिर पर चढ़कर बोलता है। यह जरुर है कि कलाकार को अपने फन में माहिर होना चाहिए। छत्तीसगढ़ के खेत-खलियान में, बोली-बानी में, रहन-सहन में गीत-संगीत बसा है। अपनी माटी के लोक रंग से महकती हुई छत्तीसगढ़ी की अपनी बेहद समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है पर विरासत मेरे*

---

[38] अग्रवाल, महावीर, हबीब तनवीर का रंग संसार, श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 208

[39] वही, पृ. 216-217

संजीवनी की तरह है।''[40]

छत्तीसगढ़ी सगीत की धुनों के अतिरिक्त अन्य धुनों के प्रयोग के सम्बन्ध में हबीब तनवीर का कहना है, *''मैंने अपने नाटकों में गुजरती, हरियाणवी, उत्तरप्रदेश के बिदेशिया की, बुंदेलखंड की धुनों का इस्तेमाल किया है।''*[41] इसके अतिरिक्त उनके नाटकों की धुनों में *''विदेशिया है, पहाड़ी धुनें हैं हिमाचल की, बंगाली धुनें हैं तो लोगों को देखते वक्त यह सब महसूस नहीं होता है।''*[42]

हबीब तनवीर अपने नाटकों में लोक गीतों, धुनों, संगीत और नृत्य का ऐसा तालमेल रखते थे कि दर्शकों को अपनी मिट्टी से जुड़े होने का अहसास होता था। हबीब तनवीर के नाटकों में संगीत पर भास्कर चंद्राकर के विचार हैं कि *''हबीब तनवीर के नाटक गौर से देखें तो लगता है वो आम जनता से, दर्शकों से संबोधित है। आसान भाषा में दिल को छू लेने वाली बेहद सरल धुनें सीधे दिल पर असर करती हैं। उनका संगीत मनोरंजन ही नहीं करता, बल्कि उसका अपना एक अलग ही महत्त्व है। वो अपने नाटकों में संगीत के इस्तेमाल में साफ और स्पष्ट भावनाएं रखते हैं।''*[43]

हबीब तनवीर के संगीत में दर्शक बंध जाते थे। आज के आपाधापी के दौर में हबीब के संगीत में जो एक ठहराव, एक सुकून था, उससे दर्शकों को आत्मीय शांति और कुछ सीखने की प्रेरणा मिलती थी। *''हबीब तनवीर अपने संगीतके जरिए संत सूफी बनने की राह पर है। एक अफसोस जनक हकीकत ये है कि हबीब तनवीर की ड्रामा निगारी पर अब तक खास ध्यान नहीं*

---

40 अग्रवाल, महावीर; 'हजार कसौटियों से गुजरता है नाटक'; अशोक वाजपेयी; नटरंग; अंक 86-87; पृ. 117

41 शुक्ल, प्रयाग; रंग प्रसंग, जुलाई-सितम्बर 2009, पृ. 9

42 अलखनंदा; 'अपने दिल की सच्ची बात लिखिये' (बातचीत); प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 62

43 नियाजी, इकबाल; 'आधी सदी के कैनवास पर हबीब तनवीर के रंग'; कमला प्रसाद; कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 127

दिया गया है। 'आगरा बाज़ार' से लेकर 'एक औरत हिपेशिया थी' तक हबीब तनवीर ने लगभग दर्जन भर अर्थ पूर्ण नाटक लिखे हैं लेकिन उन्हें बतौर ड्रामानिगार वो प्रसिद्धि नहीं मिली जिसके वो हकदार थे। मुमकिन है कि इसकी वजह ये भी हो कि उनके ड्रामे पुस्तक की शक्ल में नहीं है सिवाय आगरा बाजार, शतरंज के मोहरे, चरनदास चोर, देख रहे हैं नैन। उनके दीगर नाटकों की स्क्रिप्ट उपलब्ध नहीं है, वरना ड्रामागार की हैसियत से भी और नाटक के संगीत पर भी आलोचकों ने कम ध्यान दिया है।''[44]

हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी धुनों का प्रयोग किया। इस धुनों का इस्तेमाल करके हबीब तनवीर को लगा कि 'मिट्टी की गाड़ी' के युग को आज के युग से जोड़ रहा हूँ, नाटक का संगीत जोड़ने वाला पुल का काम कर रहा था। यह सब करने में हबीब तनवीर का मकसद था कि दर्शक एक साथ ही नाटक में अपने आपको पहचान भी सकें और अपने नाटक से अलग रखकर नाटक में जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में सोच भी सकें। उसके बाद हबीब तनवीर ने बाद की हर प्रस्तुति में इस बात पर ज़ोर दिया। इसलिए वह ऐसे अभिनेताओं का होना आवश्यक मानते थे जो गायन, नृत्य, अभिनय सब में गुणी हो और जो स्वयं सूक्ष्म, कल्पनाशील हों, नए-नए दृश्यों की कल्पना स्वयं कर सके तथा नाटकों में समूह नृत्य की कल्पना भी स्वयं कर सके। *''उनके नाटकों में समूह, नृत्य-रचना और उसकी नाटकीय व्यंजनाएं बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनमें नृत्य पूरी प्रस्तुति का बहुत अन्तरंग हिस्सा था।''*[45]

हबीब तनवीर के चरनदास चोर, बहादुर कलारिन, हिरमा की अमर कहानी, देख रहे हैं नैन, जैसे प्रायः सभी नाटकों में संगीत की प्रभावशाली भूमिका आज इतिहास का एक तथ्य है। लोक संगीत लोक नाटकों जैसे संगीत की इसमें बड़ी भूमिका थी। *''आगरा बाज़ार' में धुनें यूं*

---

[44] नियाजी, इकबाल; 'आधी सदी के कैनवास पर हबीब तनवीर के रंग'; कमला प्रसाद; कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 127

[45] रस्तोगी, गिरीश; रंगभाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 94

ज्यादातर नई थीं पर पहले भटिंडा और बाद में छत्तीसगढ़ी लोक गायकों का गला पाकर उन्हें एक अलग ही अंदाज मिला। 'मिट्टी की गाड़ी' का संगीत छत्तीसगढ़ी लोक संगीत से प्रेरित था। 'गाँव का नाम ससुराल' में उन्होंने पहली बार पूरा संगीत छत्तीसगढ़ी लोक संगीत से चुना लेकिन आगे भी लोकसंगीत और नई धुनों का मित्र संगीत ही ज्यादातर उन्होंने प्रयुक्त किया। संगीत की भाषा के प्रति उनका गहरा लगाव और उस पर अभूतपूर्व विश्वास इस बात से देखा जा सकता है कि मैक्सिम गोर्की के 'दुश्मन', मोहन राकेश के 'बहुत बड़ा सवाल' और असगर वजाहत के 'जिस लाहौर नहीं देख्या'' जैसे पूरी तरफ यथार्थवादी पृष्ठभूमि के नाटकों में भी उन्होंने बड़ी संख्या में गीत-संगीत का प्रयोग किया। 'दुश्मन' का संगीत अक्तूबर क्रांति के मार्च-संगीत और बंग्ला के रवीन्द्र व नजरुल संगीत से लिया गया। 'जिस लाहौर नहीं...' में हबीब तनवीर ने फिराक गोरखपुरी, अमृता प्रीतम, राही मासूम रजा और नासिर काजमी के गीतों को नई धुनों में ढाला। एक पंजाबी गीत अवश्य परम्परागत हीर की धुन पर था। 'बहुत बड़ा सवाल' की (रीवा में) एक प्रस्तुति में उन्होंने दो जगहों पर चपरासियों राम भरोसे, श्याम भरोसे नामक चरित्रों से एक गीत गवाया जो परम्परागत वसदेवा गायकी पर आधारित था।''[46]

आधुनिक नाटककारों ने लोक गीत-संगीत को मंच से दूर रखा है और उसे लोकनाट्यों के लिए अनिवार्य मानकर यथार्थवादी रचनाएँ दीं। लेकिन हबीब तनवीर के अपने नाटकों में संगीत-पक्ष लोकप्रियता का एक बड़ा कारण रहा है। नाटक के गीतों को स्वयं उन्होंने संगीतबद्ध किया। *''रंग संगीत एक शक्ति थीजो रंग के कथ्य को आगे ले जाता है। जहाँ अभिनेता चुकने लगता हो, उसकी सीमा आ जाती थी, वहां भी स्वरों का नाम था उनके गीत। इस अर्थ में रंग की सीमा का विस्तार करते थे। उनका उपयोग करते थे। तनवीर की जो सारी रंगचेतना संगीत में दिखाई देती थी वो मूलतः छत्तीसगढ़ी लोक परम्परा का संगीत था। उनकी चेतना का केंद्र छत्तीसगढ़ी लोक संगीत*

[46] त्रिपाठी, आशीष; समकालीन हिंदी रंगमंच और रंगभाषा; शिल्पायन, दिल्ली; संस्करण 2007; पृ. 271

है। करवा, ददरिया, विहाव इन लोक धुनों का प्रयोग करते थे वे। पंडवानी, पंथी, नाचा इन सब का। सुआ गीत इसका भी इस्तेमाल किया।''[47]

हबीब ने अपने 'आगरा बाज़ार' में बाजार भाषा का प्रयोग किया था तथा उसमें संगीत के कारण ही सफलता हाथ लगी। 'आगरा बाज़ार' की प्रस्तुति में हबीब तनवीर ने कई प्रयोग किये। जैसे ककड़ी, तरबूज और लड्डू के साथ पतंग, बर्तन और होली की नज्मों को एक सूत्र में बांधने की कोशिश की। *''फरहाद की निगाहे, शीरी की हँसलियां, मजनू की सर्द आहे, लैला की उंगलियाँ हैं। सब की धुनें अलग-अलग हैं और बजाने वाले भी ग्रामीण थे और आज भी ग्रामीण ही बजाते हैं। छत्तीसगढ़ी लोक गीत भी बीच में डाला गया। गाने की धुनें वही थीं, जो बचपन से बाजारों में फकीरों से सुनता रहा। इस तरह एक म्यूजिकल पुल बनता चला गया क्योंकि मैं इस बात का कायल था कि नये हिन्दुस्तानी राष्ट्रीय रंगमंच का संगीतमय होना आवश्यक है।''*[48]

हबीब तनवीर जी मुशायरों में जो धुनें बनाया करते थे उसका प्रयोग उन्होंने लाला शोहरत राय में किया। हबीब ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था, *''लाला शोहरत राय में सारी धुनें जो हैं, वह मुशायरे की है। सिवाय इसके कि 'पी लो पी लो ऐ मतवालों के अंदर' जरा सी एलाब्रेणटम है जो कि मुशायरों में... यानी मुल्ला के अन्दर जो कविता है उसमें मैंने अपनी मुशायरों की धुनों को फीड करके जैसे मैं गाता हूँ, उसको वहां रख लिया, तो इस तरह का मिश्रण है, कई चीजों का और छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के अलावा गुजराती लोकगीत जैसे 'ना रे चढ़ीया.....गाकर बताते हैं। वह गुजराती है।''*[49]

---

47 तिवारी,कपिल; व्यक्तिगत बातचीत; 14/ 07/ 2018

48 अंकुर, देवेन्द्र राज; रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2006, पृ. 42

49 प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 62

4.1 नाट्य रूढ़ियाँ

भारतीय एवं पाश्चात्य नाटकों के निर्माण में पारम्परिक रूप से जिन विशेष सिद्धांतों का पालन अनिवार्यतः होता रहा है, उन्हें नाट्य-रूढ़ियाँ कहते हैं।[50] ये नाट्य रूढ़ियाँ कई है। जैसे- पूर्वरंग, नान्दी, प्ररोचना, प्रस्तावना, सूत्रधार,नाट्य-वर्जनाएं, भरत-वाक्य। देखा जाए तो संस्कृत और हिंदी के पुराने नाटकों में उपरोक्त नाट्य रूढ़ियों का प्रयोग होता रहा है। लेकिन अब हिंदी नाटक और रंगमंच पर इन नाट्य रूढ़ियों का प्रयोग (कुछ अपवादों को छोड़कर) कम ही देखने को मिलता है। इस कड़ी में हबीब तनवीर भी पीछे नहीं हैं। उन्होंने अपने नाटकों में नाट्य रूढ़ियों का बहिष्कार किया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह कि उन्होंने नाट्य वर्जनाओं (निषेध) का खुलकर रंगमंच पर प्रयोग किया। ये नाट्य-वर्जनाएं देश-काल की सीमाओं के अनुसार निर्धारित होती हैं। जिस देश में जैसी संस्कृति और सभ्यता होगी, उसी के अनुकूल नाट्य-निषेध भी निर्धारित किए जायेंगे। इस प्रकार, नाट्य के वर्जित उपकरणों में अन्तर का होना स्वाभाविक है। जैसे भारतीय प्राचीन परम्परा के अनुसार रंगमंच पर चुम्बन का दृश्य वर्जित माना गया है। पर पाश्चत्य नाटकों में ऐसा निषेध नहीं किया गया। क्योंकि वहां इसे एक सामाजिक शिष्टाचार माना गया है।

देखा जाए तो नाट्य-वर्जनाओं के मूल में तीन बातों की प्रमुखता दिखाई पड़ती है। 1. लोकाचार, 2. लोकहित, 3. रंगमंचीय व्यवस्था। इन तीनों बिन्दुओं को देखते हुए 'नाट्यशास्त्र', 'दशरूपक', 'नाट्यदर्पण', 'साहित्यदर्पण', 'भाव प्रकाशन' आदि ग्रंथों में नाट्य-वर्जनाओं का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। इन वर्जनाओं में युद्ध, राज्यक्रांति, मरण, वध, लम्बी यात्रा, परिधान-परिवर्तन, स्नान, जल-क्रीडा, भोजन, शाप, अनुलेपन, विवाह, सम्भोग, मद्यपान, धूम्रपान, परित्याग, नगर घेरा आदि को प्रत्यक्ष रूप से रंगमंच पर दिखाना मना है। आवश्यक होने पर

[50] झा 'श्याम', डॉ. सीताराम; नाटक और रंगमंच;; बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना; संस्करण 2000; पृ. 59

प्रवेशक के द्वारा उन वस्तुओं, घटनाओं की सूचना ही दे देना ठीक है।

आज सामाजिक परिवर्तन के इन नाट्य-वर्जनाओं का विधान उपेक्षित सा हो गया है। सिनेमा में तो निषेध नाम की कोई चीज़ ही नहीं रह गयी है और अब नाटकों में भी प्रायः ऐसा कुछ नहीं माना जाते लगा है। हबीब तनवीर के नाटक इसके प्रमाण हैं। वे अपनी प्रस्तुति में उन सभी दृश्य आदि को दिखाते हैं जिनका संस्कृत में दिखना वर्जित था। 'आगरा बाज़ार', 'चरनदास चोर', 'मिट्टी की गाड़ी', 'देख रहे हैं नैन', 'हिरमा की कहानी', 'गाँव का नांव ससुराल मोर नांव दामाद', 'एक औरत हिपेशिया भी थी' आदि नाटकों में इन नाट्य-वर्जनाओं को देखा जा सकता है। नीचे दिए गए विभिन्न चित्रों (क्रमांक 25 से 32 तक) से इसे स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

चित्र- 25
(धूम्रपान करते हुए दृश्य)

चित्र- 26
(खाना खाते हुए दृश्य)

चित्र- 27
(हत्या का दृश्य)

चित्र- 28
('मिट्टी की गाड़ी' में देवसेना सोते हुए)

चित्र- 29
(देख रहे हैं नैन में युद्ध का दृश्य)

चित्र - 30
(देख रहे हैं नैन में विराट का वस्त्र बदलना)

चित्र - 31
(गाँव का नाम ससुराल...में मानती के विवाह का दृश्य)

चित्र - 32
('देख रहे हैं नैन' में राजा और दासी का मिलन)

इस प्रकार हम देखते हैं कि हबीब तनवीर अपने नाटकों में नाट्य वर्जनाओं का प्रयोग भी एक उपकार की भांति करते नजर आते हैं तथा अन्य नाट्य रूढ़ियों को अपने रंगमंच से बहिष्कार कर देते हैं। इस संदर्भ में 'गाँव का नांव ससुराल मोर नाम दामाद', 'चरनदास चोर', 'मिट्टी की गाड़ी',' देख रहे हैं नैन' आदि नाटक प्रमाण के रूप में हमारे समक्ष हैं।

कुल मिलकर कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर ने पाश्चात्य और भारतीय रंग शैलियों के मेल से अपनी एक अलग शैली निर्मित की थी। सिर्फ भारत के रंगमंच में ही नहीं थियेटर के पूरे विश्व में ऐसे किसी रंगकर्मी की मिशाल मिलना मुश्किल है जिसने लगातार एक ही दिशा में एक ही तरफ के और एक ही ड्रामा ग्रुप के साथ एक ही समूह को लेकर 50 वर्षों तक रंगकर्म किया हो। *''हबीब तनवीर अपनी जमीन से उगे ऐसे रंगकर्मी हैं, जो नए नाट्य-मुहावरे के लिए किसी बाहरी*

शक्ति से नहीं, बल्कि आज के समाज कि स्थितियों, वातावरण और मान्यताओं से ताकत हासिल करते हैं। उनका ये मुहावरा विशुद्ध भारतीय है, मौलिक है। अगर उसे दूर तक देखने की कोशिश करें तो उनका यह मुहावरा हमें नाट्यशास्त्र में वर्णित लोकधर्मी परम्परा से अनायास जोड़ देता है।"[51] लोक गीत-संगीत, लोक जीवन, लोक शैली के प्रयोग से हबीब तनवीर ने यह सिद्ध कर दिया कि हमारी जड़े आज भी गाँव की संस्कृति में हैं। इस संस्कृतियों से जुड़े कलाकारों की रंग प्रस्तुतियां दर्शकों पर गहरा प्रभाव डालती हैं।

[51] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 99

पंचम अध्याय

हबीब तनवीर के नाटक : भाषा और शिल्प

भाषा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और इससे किसी भी समाज के अस्तित्व की एक पहचान बनती है। यह अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। मनुष्य अपने आचार-व्यवहार, खान-पान, कला-साहित्य आदि को भाषा के द्वारा सही रूप से प्रकट कर पाता है। इसलिए इसे संस्कृति को प्रभावित करने वाला एक तत्त्व माना गया है। भाषा का बोली से भी गहरा सम्बन्ध है। बोली भाषा की ताकत है, उसकी ऊर्जा है। क्योंकि किसी भी बोली का उत्स उसकी लोक परम्परा और जीवंत संस्कृति में निहित होता है।

भाषा के संबंध में हबीब तनवीर का मानना हैं कि भाषा में बोली की सहज प्रवाहमयता और ग्रहणशीलता जरुर होनी चाहिए। साथ ही भाषा की रवानगी जीवंत हो, विचारप्रद हो तो वह सीधे भीतर तक उतरती चली जाती है। लैंग्वेज की जो सेन्स होती है, उसमें सहजता और सादगी होनी चाहिए। इसलिए हम देखते हैं कि हबीब तनवीर अपने नाटकों में लोक भाषा को प्राथमिकता देते हैं। उन्होंने साबित कर दिया कि लोक भाषा या बोली भी रंगमंचीय प्रस्तुति की सफलता का सशक्त माध्यम बन सकती है।

नाट्य-शिल्प का सम्बन्ध सामान्यतः नाटक की बाह्य अभिव्यक्ति से होता है। इसमें नाटककार ने अपने नाटक में वस्तु-विन्यास, संवाद-योजना, चरित्र-चित्रण, भाषा, गीत आदि का प्रयोग किस प्रकार किया है, यह सब देखा जाता है। शिल्प और शैली में थोड़ा अंतर जरुर है। मंच पर नाटक जिस रूप में प्रस्तुत किया जाता है वह शैली है। जबकि नाटक की रचना-प्रक्रिया शिल्प के निर्माण में सहायक है। कभी-कभी तो कोई नाटक अपने खास शिल्प या शैली से पहचाना

जाता है। शैली के संबंध में हबीब तनवीर का विचार था कि *"शैली वही होनी चाहिए जो विषय की मांग को पूरा करती हो। अगर शैली विषयवस्तु पर हावी होने लगे तो नाटक खराब हो जाता है।"*[1] अतः समझा जा सकता है कि किसी भी नाटक के प्रस्तुतिकरण हेतु भाषा और शिल्प कितना महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

5.1 छत्तीसगढ़ी बोली का प्रयोग

हबीब तनवीर अपने नाटकों में भाषा की दृष्टि से भी बहुत प्रयोगधर्मी थे। उन्होंने उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि के शब्दों का खूब प्रयोग किया है। लेकिन जिस बोली को उन्होंने सबसे ज्यादा प्राथमिकता दी, वह है छत्तीसगढ़ी। 'राडा' के प्रशिक्षण प्रक्रिया के प्रति उनके मन में जो एक अनास्था जगी उसकी वजह भाषा ही थी। वे अच्छी तरह से समझते थे कि शब्द और संस्कृति की रचनात्मक दुनिया में उस स्थान और पर्यावरण का बहुत महत्त्व होता है, जहाँ आप जन्म लेते हैं, जहाँ आपकी परवरिश होती है। सृजनात्मक कार्य के लिए आपको तमाम ऊर्जा, शक्ति अपनी जमीन, अपनी भाषा से मिलती है। इसलिए हबीब तनवीर एक विदेशी भाषा में अभिनय और रंगकर्म को समझने की अपेक्षा अपनी माटी की भाषा को महत्त्व देते हैं और नाट्य प्रशिक्षण बीच में ही छोड़ देते हैं।

दुनिया भर की यात्राएं करने के बावजूद हबीब तनवीर अपनी बोली में रचे-बसे रहे। इस सम्बन्ध में ध्रुव शुक्ल का मत है, *"बोली में अपना नाट्य रचते हुए हबीब तनवीर ने नाट्य की आधुनिक बोली का भी विकास किया, जो हिंदी और दूसरी भारतीय भाषाओं के रंगकर्म के बीच अलग पहचानी गई है। बोली के भीतर अपनी बोली का विकास विरले ही कर पाते हैं।"*[2] देखा

---

1 शुक्ल, प्रयाग (सं.); रंग प्रसंग; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; अंक 1; जनवरी-जून, 2000; पृ. 15

2 शुक्ल, ध्रुव; 'हबीब का सहज स्वांग'; अशोक वाजपेयी; नटरंग, अंक 86-87, जुलाई-दिसम्बर; पृ. 110

जाए तो हबीब तनवीर ने 'मिट्टी की गाड़ी', 'चरनदास चोर', 'गाँव का नांव सुसुराल मोर नाम दामाद', 'हिरमा की अमर कहानी', 'बहादुर कलारिन', 'सड़क', 'जमादारिन', 'देख रहे हैं नैन' आदि की प्रस्तुतियों में छत्तीसगढ़ी बोली का भरपूर प्रयोग किया है।

'मिट्टी की गाड़ी' इनका पहला ऐसा नाटक था जिसमें हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ के पारम्परिक रंगकर्म की युक्तियां, शैली और कलाकारों का प्रयोगधर्मी उपयोग किया। इस नाटक की ऐतिहासिक सफलता के पीछे उनका भाषाई प्रयोग सबसे बड़ा कारण था। हबीब तनवीर 'मिट्टी की गाड़ी' की प्रस्तुति से पहले अपने घर रायपुर गए थे। वहां गांव में उन्होंने नाचा का मंचन देखा और निश्चय किया कि वे अपनी बोली में ही नाटक का मंचन करेंगे। नाचा के इस प्रदर्शन के दौरान ही उन्होंने लोकभाषा की शक्ति को पहचान लिया था। उनका मानना था कि अभिनेता स्वयं की भाषा के शब्दों और उसके अन्तर्निहित अर्थों तथा नाटक के अंतर्पाठ को जितने सहज और स्वाभाविक तरीके से अपनी भाषा में प्रस्तुत कर सकता है, वह अन्यत्र संभव नहीं।

'मिट्टी की गाड़ी' नाटक की प्रस्तुति के दौरान जब हबीब तनवीर लोक कलाकारों को हिंदी में संवाद बोलने के लिए तैयार कर रहे थे तब उन कलाकारों में सहजता और ऊर्जा का कोई भाव नहीं दिखाई दे रहा था। वे हिंदी में सहज नहीं हो रहे थे। इस संदर्भ में हबीब तनवीर लिखते हैं, *"यह ग्रामीण कलाकारों के साथ ज्यादा मुश्किल था जिन्हें पढ़ना-लिखना नहीं आता और जो ये तक भूल जाते हैं कि किस संवाद के साथ चलना-घूमना है। दूसरी दिक्कत यह थी कि इन कलाकारों को हिंदी या हिन्दुस्तानी में संवाद बुलवाना पड़ता था जो उनकी भाषा नहीं थी। ये दोनों ही बातें उन कलाकारों पर दबाव डालती थी जिसमें वे अपनी सृजन क्षमता को पूरी तरह नहीं चला पाते थे।"*[3] इन दोनों ही गलतियों को ध्यान में रखते हुए हबीब तनवीर ने उन्हें कम करने की

[3] मलिक, जावेद; 'हबीब तनवीर: एक गाथा पुरुष का बनना'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, पृ. 143

दिशा में काम शुरू कर किया। छत्तीसगढ़ के इन आंचलिक कलाकारों की बोली को अपनाकर उन्होंने अभिनेता की सहज अभिव्यक्ति की रक्षा की जो 'मिट्टी की गाड़ी' की पहली प्रस्तुति में संभव नहीं हो सकी थी।

हबीब तनवीर ने महसूस किया कि नाटक की गति और प्रस्तुति को पहले से कागज पर लाइनों और चलने के अंदाज से तय करना ठीक नहीं हैं। अपने एक साक्षात्कार में हबीब तनवीर कहते हैं, *"असल में मैंने यह देखा कि अपनी पूरी शक्ति से मेरे अभिनेता गाँव में अपनी मातृभाषा छत्तीसगढ़ी बोल रहे हैं और नाचा कर रहे हैं। मैं नाचा के इन कलाकारों को जब दिल्ली लेकर आया तो मुझे समझ में नहीं आया कि ये लोग मरे-मरे से क्यूं हो गये हैं। इन लोगों को डांटता था और अपने बाल नोंचता रहता था। तीन साल इसमें बीत गए। फिर मैंने महसूस किया कि मातृभाषा के महत्त्व को नहीं भूलना चाहिए। उसी में इन अभिनेताओं की शक्ति है। फिर छत्तीसगढ़ी में नाटक को आजमा के देखा तो मेरे कानों को बहुत अच्छा लगा था। फिर भी दर्शक बहुत कम आते थे। सन 1973 तक यही चलता रहा। पर 1973 में हमको वो भाषा मिल गई, जो रंगकर्म की भाषा थी। उस भाषा के बल पर बॉडी लैंग्वेज, साउंड और रंगकर्म की हरेक चीज ठीक होने लगी।"*[4]

अब उनके कलाकारों के अभिनय में एक जीवन्तता आ गई। वे पूरी शक्ति, सहजता के साथ संवाद बोलने लगे। यह बात समझने में हबीब तनवीर को थोड़ा समय जरुर लगा। लेकीन एक बार जब उन्होंने समझ लिया तो निरंतर अपने नाटक इम्प्रोवाइजेशन पद्धति से प्रस्तुत किये।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में छत्तीसगढ़ी बोली का खुलकर प्रयोग किया है तथा अंचल विशेष की कथाओं, मिथकों को भी नाटक बना दिया। जैसे 'बहादुर कलारिन' उनका इसी तरह का प्रयोग है। इस नाटक का कथ्य लोक से जुड़ा है तथा पूरे नाटक में छत्तीसगढ़ी बोली का

---

[4] मलिक, जावेद; 'हबीब तनवीर: एक गाथा पुरुष का बनना'; कमला प्रसाद; कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 18

प्रयोग है। अंचल की खांटी भाषा की महक हमें नाटक के संवाद और गीत दोनों में मिलती है। उदाहरण के तौर पर निम्न संवाद देखें-

"बहादुर- अरु नहीं खाबे ?

छछान-बस अब पेट भरगे। पानी दे।

बहादुर- ले एकनी अरु खां ले ।

छछान- आज तोर हाथ के खाना बहुत मिठाइसा।"[5]

'गाँव के नांव ससुरार मोर नांव दमाद' नाटक में भी छत्तीसगढ़ी का प्रयोग किया हुआ है। नाटक के सभी पात्र (झंगलू, मंगलू, मान्ती, शांति, बुढवा, टेड़हा आदि) छत्तीसगढ़ी बोलते हैं। उदाहरण के लिए यह संवाद देखें-

"बाप : तोर गाँव के नांव का हेगा।

बुढवा : मोर गाँव के नांव ससुरार हे ददा।

बाप : अच्छा में समझगेव, उहां घर जबई होब।"[6]

इसी तरह 'हिरमा की अमर कहानी' की सफलता भी हिंदी के साथ-साथ छत्तीसगढ़ी के प्रयोग के कारण हुई। नाटक की प्रस्तुति में लोक कलाकारों के साथ कुछ शहरी कलाकार भी थे जो रायपुर के आसपास के क्षेत्रों से थे। ये कलाकार छत्तीसगढ़ी को अच्छी तरह से जानते थे और समझ भी लेते थे। नाटक में मुख्यतः ग्रामीण पात्र ही छत्तीसगढ़ी बोलते हैं। उदहारण के लिए हिरमा और बैगिन का यह संवाद देखें-

"हिरमा : बैगिन ! देवगुड़ी खोल देस।

---

[5] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 82

[6] वही, पृ. 82

बैगिन : हव, खोल देहव, अउ बीजा ला घलो रखा देहव। अभी बासी खाथें पाहू तोर करा आहीं।"[7]

इस नाटक में हबीब ने छत्तीसगढ़ी का प्रयोग करके बस्तर के आदिवासी क्षेत्र के जनजीवन की प्रथाओं, रूढ़ियों व सामाजिक मूल्यों के प्रति उसके विश्वास के अतरंग चित्र को जीवंत कर दिया है। यही नहीं 'चरनदास चोर', 'पोंगा पंडित', 'कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना', 'मुद्राराक्षस', 'बुर्जुआ जेंटलमैन' के अनुवाद 'लाला शोहरत राय' आदि नाटकों में भी हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी का प्रयोग किया है।

यह तथ्य मान्य है कि अभिनय में सहजता तभी होती है जब उस नाटक का पात्र जिस बोली क्षेत्र का है, उस बोली में संवाद भी करे। उनके नाटकों के पात्र मुख्यतः छत्तीसगढ़ी क्षेत्र के थे। अतः उनका 'मिट्टी की गाड़ी' हो, 'बहादुर कलारिन' हो या 'हिरमा की अमर कहानी' आदि नाटकों में उन्होंने जो संवाद योजना की, वह छत्तीसगढ़ी में थी। हबीब तनवीर ने जब-जब संस्कृत के नाटकों का मंचन किया, तब भी अपनी बोली की सुगंध को नहीं छोड़ा। भवभूति के 'उत्तररामचरित' नाटक के मंचन के दौरन उनके सामने लोक कलाकारों द्वारा संस्कृत भाषा के बोलने की कठिनाई आई। तब उन्होंने नाटक की भाषा सरल हिंदी और छत्तीसगढ़ी कर दी। इस प्रकार भास, भवभूति, शूद्रक, विशाखदत्त, महेंद्रविक्रम आदि के नाटकों की प्रस्तुतियां भी छत्तीसगढ़ी के प्रभाव में हुई हैं।

अतः स्पष्ट है कि हबीब तनवीर की अधिकत्तर सफल नाट्य प्रस्तुतियों के पीछे छत्तीसगढ़ी बोली का विशेष हाथ है। क्योंकि उनके लोक कलाकार अपनी बोली में ज्यादा सहज होकर, निडर होकर अभिनय करते हैं। देखा जाए तो इस बोली में प्रदर्शित का सबसे लोक प्रिय नाटक चरनदास चोर है।

---

[7] तनवीर, हबीब; 'हिरमा की अमर कहानी'; पुस्तकायन; नई दिल्ली; संस्करण 1990; पृ. 11

5.2 उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग

हम सब जानते हैं कि हबीब तनवीर की उर्दू पर अच्छी पकड़ थी। अपने मुंबई प्रवास के समय वे अक्सर मुशायरों में जाते। भले ही उन्होंने अपने नाटक छत्तीसगढ़ी, अंग्रेजी, हिंदी में प्रस्तुत किए हों, लेकिन इन नाटकों का कागज पर एक ड्राफ्ट उर्दू में ही लिखा करते थे। उनका एक आधा नाटक तो छत्तीसगढ़ी के साथ-साथ उर्दू जुबान में भी प्रकाशित है। जैसे 'आगरा बाजार', 'देख रहे हैं नैन' आदि। कई नाटकों में पात्रों की मांग के कारण भी कुछ जगहों पर इस भाषा का प्रयोग हुआ है।

हबीब तनवीर इस बात को अच्छे से जानते थे कि सफल प्रस्तुति के लिए भाषा पर अच्छी पकड़ बेहद जरुरी है। 'आगरा बाज़ार' में पात्रों को ध्यान में रखते हुए वे जिस भाषा को गढ़ते हैं वह आम आदमी की जीवन्तता के कई रंग रूप को उभारती है। नाटक में बाज़ार के बीच आम आदमियों द्वारा बोली जाने वाली भाषा, ठेठ आंचलिक भाषा है। इसमें कहीं आपसी मिठास है, तो कहीं गाली-गलौज है। किताब वाले की दुकान पर भाषा का अंदाज निहायत अदब और कायदे की नफासत लिए हुए है। पतंग की दुकान तथा बाई जी के कोठे पर बोली जाने वाली जुबान का मुहावरा उस वक्त के शौकीनों और अय्याशीपरस्त लोगों का मुहावरा है।

अलखनंदन को दिए गए एक इंटरव्यू में हबीब तनवीर ने 'आगरा बाजार' की भाषा के बारे में बताते हैं, *"'आगरा बाज़ार' में मैंने उर्दू बड़ी मेहनत से हासिल करके लिखी...मिर्जा फरहतुल्ला बेग की 'दिल्ली की आवाजे' एक किताब है। इसमें ये बेचने वाले, कटोरे वाले, जीरा पानी बेचने वाले किस-किस तरह से बोली लगाते हैं, उसकी भी खूबसूरती, करखनदारी भी उसके अंदर। वह दिल्ली की भाषा के बारे में छोटी–सी किताब है। तो उसमें से मैंने बहुत सारे पैसेज लिए, उनका इस्तेमाल किया। तो बाज़ार की बोली वह और किताब की दुकान में जो जुबान है, वो*

है मोहम्मद हुसैन आजाद ने जो किताब 'आबे हयात' लिखी है, उर्दू लिटरेचर की हिस्ट्री। वे बड़े जबर्दस्त स्टाइलिस्ट थे और उनकी जुबान का बड़ा गहरा असर मुझ पर शुरू से, तालीबे इल्मी के जमाने से था। तो कुछ उस अंदाज की मैंने जुबान लिखी है।"[8]

हबीब तनवीर का 'एक औरत हिपेशिया भी थी' नामक नाटक का कथानक मिस्र के *अलेक्जेंड्रिया* की ऐतिहासिक कथा पर आधारित है। इसलिए नाटककार ने अपने इस नाटक में क्लासिक उर्दू का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर नाटक की मुख्य पात्र हिपेशिया का कथन है, *"अच्छा तो मेरे दोस्तों, मैं आज की अपनी इखतिता मिया तक़रीर में बस इतना कहना चाहती हूँ कि जो शख्स सच्चाई की तलाश में रहता है, उसे कभी-कभी बल्कि अक्सर, औक़ात झूठ को भी अपने काम के दायरे में लाना पड़ता है ताकि उसे जाँच सकें, उसे रोशनी में लायें और परखें। क्योंकि वह सच को भी उस वक्त सच नहीं मानता जब तक वो साबित न कर दे।"*[9]

इस नाटक की भाषा को हबीब तनवीर ने क्लासिक उर्दू बताया है। 'नाटक का ताल्लुक मिश्र से, *अलेक्जेंड्रिया* से रखता है। तो इसके नाते वहाँ तक आदमी का जहून पहुंचे तो मैंने बहुत ही क्लैसिकल उर्दू भी इस्तेमाल की है। जिसमें मेरा मुहावरा भी है और जिसमें आसानी से कलम मेरी चलती भी है।'

हबीब तनवीर के कुछ बाल नाटकों में भी उर्दू का प्रयोग हुआ है। जैसे 'कारतूस' नाटक की कहानी प्रमुख मुसलमान चरित्र वजीर अली पर केन्द्रित है। अतः नाटक में जब वजीर अली (सवार के रूप में) आता है तो वह अपने संवादों में उर्दू शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे-

"कर्नल-साहब यहां कोई गैर आदमी नहीं है। आप राजदिल कह दें।

---

[8] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 100

[9] तनवीर, हबीब; एक औरत हिपेशिया भी थी; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 84

सवार- दीवार हम गोश दारत। मुझे आपके साथ बिल्कुल तन्हाई चाहिए।"[10]

इसी तरह एक अन्य बाल नाटक 'दूध का गिलास' के भी पात्र मुसलमान हैं। शायद इसीलिए वहां भी उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। जैसे-

"जल्लो आपा : गजब हो गया।

शीरी : क्या हुआ जल्लो आपा।

जल्लो आपा : बड़े जोर का तूफान आने वाला है।

मिक्खू : उई ..."[11]

उर्दू भाषा के शब्दों के अतिरिक्त हबीब तनवीर के नाटकों में अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। दरअसल ये सब शब्द परिस्थिति और पात्रों के अनुसार ही आए हैं। अधिकतर शहरी पात्रों की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग दिखता है। उदाहरण के तौर पर ज़हरीली हवा नामक नाटक देखा जा सकता है। नाटक मूलतः भोपाल गैस त्रासदी से सम्बंधित है जिसमें डॉ. सोनिया लेबान्ते, देवराज, मदीहा अकरम, एंडरसन, जगनलाल जैसे पात्रों की भाषा में अंग्रेजी के शब्दों को देखा जा सकता है। जैसे-

"एंडरसन : यस !

जगनलाल : दिस इज नॉट जस्ट।

एंडरसन : सर ऐसे समझौते में एन एलिमेंट ऑफ स्पेक्युलेशन जरुर होता है। मतलब की बात ये है कि मरने वालों ने मरना बंद कर दिया है।"[12]

इसी तरह देवराज और मदीहा के संवाद को देखा जा सकता है-

---

[10] तनवीर, हबीब; पचरंगी (कारतूस); वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; सस्करण 2015; पृ. 14

[11] तनवीर, हबीब, पचरंगी (दूध का गिलास), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; सस्करण 2015; पृ. 76

[12] तनवीर, हबीब; (अनु.) ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण; 2010; पृ. 101

"मदीहा : आई डोंट नो ...अबाउट वीमेन ... अबाउट बेबीज़, एनिमल्स, आई डोंट नो।

देवराज : व्हाई डू यू थिंक वी पेड फॉर ऑल दोज़ डेड एनिमल्स।

मदीहा : इट्स बिकाज़ ... द एनिमल चेरिटी...ओ माई गॉड !"[13]

इस सारे विश्लेषणों का सार यह है कि हबीब तनवीर भाषिक दृष्टि से भी प्रयोगधर्मी थे जो समकालीन हिंदी नाट्य परिदृश्य को बनाये रखने के लिए सर्वथा अनुकूल है। उनके नाटकों में छत्तीसगढ़ी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी का प्रयोग है तथा बिम्ब, प्रतीक, मुहावरे भी हैं।

5.3 कथावस्तु

नाटक आधुनिक काल की गद्य विधाओं में सबसे कलात्मक विधा है। कथा साहित्य की भांति इसमें भी सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावस्तु है। भारतीय विचारकों ने कथावस्तु को वस्तु कहा है। इसके अतिरिक्त कथानक, इतिवृत्त, गल्प, प्लॉट आदि भी इसके पर्याय हैं। देखा जाए तो नाटक लोकावस्था का अनुकरण है और लोक अवस्थाएँ काफी विस्तृत व व्यापक होती हैं। इसलिए नाटक का कथानक भी अत्यंत व्यापक होता है। पाश्चात्य विचारक कथावस्तु को घटनाओं का विन्यास मानते हैं। क्योंकि नाटक के माध्यम से जीवन की गंभीर समस्याओं के चित्रण किये जाते हैं। कभी-कभी साहित्य और सामाजिक समस्याओं का निदान भी नाटक में खोजा जाता है। अतः इस दृष्टि से भी कथानक महत्त्वपूर्ण हो उठता है।

देखा जाए तो नाटक का समस्त प्रतिपाद्य अंश कथावस्तु की परिधि में आ जाता है। कथावस्तु के आधार पर ही नाटक के अन्य तत्त्वों और अंगों का विकास होता है। सामाजिक जीवन पर आधारित विधा होने के कारण समाज और जीवन के विस्तृत फलक पर ही नाटक का कथा-विधान अपना स्वरूप ग्रहण करता है। नाटक की प्रभावोत्पादकता और रसाभिव्यंजकता का

---

[13] तनवीर, हबीब; (अनु.) ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण; 2010; पृ. 97

मूल आधार कथावस्तु का संगठन ही होता है।

कथावस्तु के विषय में डॉ. बच्चन सिंह का कथन उलेखनीय है, *''वस्तु-योजना नाटक का बाह्य ढांचा अथवा यांत्रिक विधान नहीं है। यह नाटक की सम्पूर्ण बौद्धिक प्रक्रिया का अविच्छेद अंग है। इसके द्वारा नाटक की सारी घटनाओं, क्रिया व्यापारों, नाटकीय स्थितियों को इस प्रकार नियोजित करना पड़ता है कि उसकी प्रभान्विति में किसी प्रकार का विक्षेप न पड़े।''*[14] अच्छे कथानक की अन्विति और सुसंबद्धता नाटक में प्राण संचार करती है। इसलिए कथावस्तु का नाट्य तत्त्वों में अप्रतिम महत्त्व है।

देखा जाए तो नाटककार कथावस्तु को आधार बनाकर नाटक में विभिन्न प्रयोग करता है। कभी वह धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष की सिद्धि प्राप्त करना चाहता है। कभी मानव की धार्मिकता, नीतिमत्ता बढ़ाकर उत्तम जीवन निर्वाह की क्षमता लाना और आचरण में सुधार करना चाहता है। प्राचीन भारतीय नाटक इसी आदर्शवादी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर लिखे गए जिनका मुख्य उद्देश्य अपने नाटकों द्वारा जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत करना रहा। जबकि पाश्चात्य नाटककार अरस्तु ट्रेजडी को नाटक मानते थे। उनके अनुसार, *''करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।''*[15] अरस्तु का मानना है कि ट्रेजडी मनोवेगों को उत्तेजित नहीं करती, वरन उनका विरेचन कर सामाजिकों को मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करती है।

दरअसल नाटक का उद्देश्य उसकी कथावस्तु में ही निहित रहता है। यह भारतीय और पाश्चात्य दोनों नाटकों में समान रूप से प्रचलित है। हालाँकि उद्देश्य की विभिन्नता उस नाटककार या उस समाज की रुचि आदि पर निर्भर करता है। नाटक के माध्यम से समाज के सामने कोई विचार, कोई समस्या या उद्देश्य को प्रस्तुत किया जाता है जिसके अंतर्गत शिक्षाप्रद नाटक,

---

[14] अंकुर, देवेन्द्र राज; पहला रंग; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1999; पृ. 84

[15] जैन, निर्मला; कुसुम बांठिया; पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत; राधा कृष्ण, नई दिल्ली; संस्करण 1994; पृ. 59

सामाजिक नाटक, सांस्कृतिक-धार्मिक नाटक, राजनैतिक नाटक आदि शामिल हैं। इन नाटकों के अलावा मानसिक तृप्ति के लिए विशुद्ध मनोरंजक नाटक भी रचे जाते हैं।

अपने लोक कलाकारों की लोक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए हबीब तनवीर ने उनके साथ अनेक प्रस्तुतियां दीं। जो अपने कथा स्रोत में भले ही लोक कथाओं पर आधारित हो, लेकिन अपने कथ्य एवं मूल संवेदना में आधुनिक और मौलिक है। किसी भी लोक-शैली पर आधारित नाटकों को तभी सफल माना जाएगा जब वह लोक-कथा से जुड़े होने के साथ-साथ अपने समय की ज्वलंत समस्याओं को भी उठाये। हबीब तनवीर सामाजिक सरोकारों से जुड़े हुए एक प्रतिबद्ध नाटककार, रंगकर्मी थे। सामाजिक समस्यओं को उठाना उनके नाटकों का मूल उद्देश्य रहा है।

उन्होंने 'आगरा बाज़ार' के द्वारा सांस्कृतिक क्षरण को दिखाया है। साथ ही नज़ीर अकबराबादी के समय के समाज, लोगों, और रीति-रिवाजों की झांकी पेश करते हुए सामाजिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा समय और समाज के यथार्थ चित्र को प्रस्तुत किया। नाटक में अनेक छोटी-छोटी घटनाओं के संयोजन से कथानक का निर्माण संभव हुआ है। इसमें नज़ीर की शायरी नाटक का संसार रचती है, एक ऐसा संसार जो अपनी तमाम सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विसंगतियों के साथ सांस लेता है। पूरे नाटक में क़ुतुबफरोश, तजकिरानवीस, पतंगवाला, लड्डूवाला वगैरह के माध्यम से कुलीन और जनवादी दृष्टिकोण के बीच एक संघर्ष जारी रहता है और अंत में बाजी लगती है जनकवि नज़ीर के हाथ। नाटक में रीति-रिवाज, संस्कृतियों, चाल-चलन के बीच आदान-प्रदान, एक जनपद में रहन-सहन का जैसा मनोरम चित्रण नज़ीर की रचनाओं के द्वारा हबीब तनवीर ने खींचा है, वह अन्यत्र ही कहीं देखने को मिले। साथ ही नाटक का प्रयोगशील शिल्प हिंदी-रंगमंच के स्वतंत्र अस्तित्व की साक्षी देता

है। लोकनाट्य शैली को पचाकर लिखा गया यह नाटक लोक-जीवन के परिवेश को गहरे प्रभाव के साथ उजागर करता है।

नाटक 'चरनदास चोर' हबीब तनवीर का सबसे प्रसिद्ध और प्रयोगधर्मी नाटक है। भारतीय परम्परा में ढेर सारे चोरों की कहानी है। भारतीय शास्त्रों में एक चोर शास्त्र भी है। हबीब तनवीर के मन में चोर को आधार बनाकर नाटक करने का ख्याल राजस्थानी लोक कथा से उपजा। इसका नाम 'चरनदास चोर' भी बड़े मंथन के बाद रखा गया और यह भिलाई में सबसे पहले खेला गया।

सामाजिक समस्याओं की दृष्टि से हबीब तनवीर का नाटक 'चरणदास चोर' बहुत ही प्रासंगिक है। नाटक में लेखक ने तत्कालीन छत्तीसगढ़ के कई भयावह घटना चक्र को भी दिखाया है। समाज में व्यक्ति गलत रस्ते पर क्यों चलता है? चोर या डाकू क्यों बनता है? इस प्रश्नों से यह नाटक जुड़ा हुआ है। प्रदेश में सूखा पड़े या अतिवृष्टि या अनावृष्टि हो, किसान से मालगुजार अपना हक वसूल लेता है। वह किसी भी हालत में किसान को छोड़ता नहीं है। इसी यथार्थ का अंकन करते हुए नाटक का पात्र सेतुवाला कहता है, *"का बतांव भइया! तीन साल होंगे लगातार अकाल पड़त सब गाय/ गरु/ मवेशी मरत जाते। सारी जनता में त्राही-त्राही मचे है। अब दूसर के बात ला का बतांव, मोरे बाल बच्चा के पेट में तीन दिन होगे, अन्न के दाना नइये। इही गाँव के एक झन मालगुजार हे- साल में तीन फसल, चार फसल उगाथे, कोई गरीब आदमी कुछ कांही मांगे बर जाथे तो ओकर पहलवान मन डंडा लेके सलाम कर थे।"*[16]

छत्तीगढ़ के लोक के पलायन की मूल वजह यही है। आज भी गाँव का मजदूर अकाल पड़ने पर पलायन करके दूसरे प्रदेश में रोजी रोटी के लिए जाता है। नाटक में सेतुवाला के माध्यम से हबीब ने इस समस्या को उठाया। नाटक में कलात्मक अभिनय के साथ एक और महत्त्वपूर्ण

[16] मोहन, डॉ. नरेन्द्र (सं); समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2009; पृ. 123

पहलू उसका कथा पक्ष है। राजस्थानी लोककथा पर आधारित यह नाटक ट्रेजडी के मानकों पर खरा उतरता है। *''नाटक के अंत में दस मिनट पहले तक ये सभी घटनाएँ, दर्शकों को हंसती हैं। अपनी प्रतिज्ञाओं के कारण रानी के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के कारण चरनदास को मृत्यु का वरन करना होता है। कॉमेडी अचानक ट्रेजडी बन जाती है, नाटक सुखांत की ओर बढ़ते-बढ़ते अचानक दुखांत में रूपांतरित हो जाता है।''*[17] इस नाटक के कथानक में चोर द्वारा सच बोलने की प्रतिज्ञा लेना एक विस्मयपूर्ण घटना है और जिसके निर्वाह में अन्ततः वह चोर अपनी जान भी गवां बैठता है। यह नाटक दिखलाता है कि समाज में हर जगह चोर और झूठ बोलने वाले मौजूद हैं और इस बुराई के खात्मे से ही स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकता है।

समाज में व्याप्त बेमेल विवाह को दिखाने के लिए हबीब तनवीर 'गाँव के नांव ससुरार मोरनावं दामाद' नाटक की रचना करते हैं और इस प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रेम की विजय दिखलाते हैं। अतः यह कहने में कोई हरज नहीं कि नाटक का मूल कथ्य है- प्रेम की जीत। नाटक में लेखक यह दिखाता है कि त्यौहार के दिन दो युवा आपस में प्रेम करते हैं। इस प्रेम कहानी का नायक गरीब है। ऐसी स्थिति में नायिका मालती का पिता उसका विवाह मालदार घराने में कर देता है। लेकिन गरीब प्रेमी हार नहीं मानता है और अन्ततः अपनी नायिका को उसके ससुराल से भगा ले जाता है।

यह नाटक 1973 में प्रस्तुत किया गया हास-परिहास युक्त नाटक है। इसमें प्रमुख रूप से छत्तीसगढ़ी पारम्परिक त्यौहारों, नृत्य, गीत-संगीत का मिला जुला रूप लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पूरे नाटक में लेखक छत्तीसगढ़ के विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों को भी सामने लाता है और वे सारे सांस्कृतिक संदर्भ कई जगह गीतों के माध्यम से प्रकट होते हैं। जैसे यह गीत देखिए-

---

[17] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कलकता, संस्करण 1993; पृ. 63

"सेमी के मढना कूदरवा के झूलेवो

जेहीतरी गोरी कूटे धाने ... 2

भौजी ला केहंव भौजी हमार वो सुना भौजी बातें हमारे ... 2

अमली के गोजाचड़ा चड पारे, ढमकत जाबो ससुराले ... 2

जाये वार जाहूं भौजी मैं ससुराले वो जल्दी भेजाबे लेन हारे ... 2

भेजे बर भेजहूँ नोनी मैं लेन हारे , वो नदिया छेके हे बेईमान ... 2

नदिया ला दइबो बोकरा अरु भेड़वा वो डोगा में सेन्दुर चढ़ावो ... 2"[18]

साथ ही इस नाटक में तत्कालीन समाज की परिस्थितियों को भी दर्शाया गया है। जैसे धन के प्रति लालच, बेमेल विवाह, छल-कपट को प्रमुख रूप से लोकरंग परम्परा का निर्वाह करते हुए रंगमंच पर दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया। नाटक का अंत दो प्रेमियों के मिलन और सुखांत अनुभूति के साथ हो जाता है।

हबीब तनवीर ने 'वेणी संहार' का जो कथ्य चुना है, वह मानव समाज की विध्वंसकारी मानसिकता को ही उजागर करता है। यह नाटक हमें बतलाता है कि किस तरह व्यक्ति प्रतिशोध की आग में जलता हुआ विध्वंस का रास्ता अख्तियार कर लेता है। अछूत एवं वर्णभेद की समस्या भारत में प्राचीन काल से रही है। अछूत और वर्णभेद की समस्या को वे अपने नाटक 'पोंगा पंडित' में उठाते हैं तथा इसके माध्यम से कट्टरपंथी ताकतों पर कुठाराघात करते हैं। लोककथा लोरिक चंदा को नवीन प्रयोग के अंतर्गत 'सोन सागर' के नाम से प्रस्तुत करते हैं। इसमें वस्तु तत्त्व पूरी तरह से कथा श्रोतों से जुड़ा हुआ है और नायिका चंदा के माध्यम से स्त्री चेतना द्वारा परम्परा को नया अर्थ देने का सार्थक प्रयास हबीब तनवीर करते हैं।

[18] सिंह, रामचंद्र; व्यक्तिगत बातचीत; 04/05/2019

'एक औरत हिपेशिया भी थी' नामक नाटक कथ्य राजनैतिक शोषण और दमन के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलंद करने के लिए जनांदोलन के रास्ते को अख्तियार करने का मार्ग प्रशस्त करता है। सत्ता का स्वार्थ और कुटिल मनोविज्ञान की स्थितियां उनके नाटक 'मुद्राराक्षस' और 'मिट्टी की गाड़ी' और 'हिरमा की अमर कहानी' में स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होती है। 'मुद्राराक्षस' में जहाँ राजनीतिक स्वार्थ के लिए चाणक्य की कुटिलता देखने को मिलती है, वहीं 'मिट्टी की गाड़ी' में अत्याचार और दमन के विरुद्ध प्रतिरोध। 'हिरमा की अमर कहानी' में राजनीति और नौकरशाही के दमन चक्र को दिखाया गया है। दूसरी तरफ नौकरशाही द्वारा न्याय के नाम पर किस प्रकार मानवीय मूल्यों की बलि दी जाती है, यह भी उजागर किया गया है। इस नाटक में आदिवासी संस्कृति की रक्षा का प्रश्न भी प्रमुखता से उठाया गया है।

देखा जाए तो हबीब तनवीर का 'हिरमा की अमर कहानी' के माध्यम से आदिवासी जन जीवन की प्रथाओं, रूढ़ियों, सामाजिक मान्यताओं व उनके मूल्यों के प्रति आस्था व विश्वास के अन्तरंग चित्र दिखाना है। साथ ही उनके विरुद्ध शहरी जीवन में प्रचलित मान्यताएं, जो आदिवासी मूल्यों में निरंतर टकराती हैं, इस सच्चाई को भी दिखाना चाहते हैं। यह सच है कि समकालीन समाज की संवेदनाएं आदिवासी समाज की संवेदनाओं से मेल नहीं खाती हैं। आदिवासी और शहरी भावबोध में अंतर है। आधुनिक विचार वाला आदमी आदिवासी समाज को पिछड़ा, आदिम और संस्कारहीन मानता है। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है।

आदिवासी समाज के जीवन मूल्य और संस्कार इतने अलग और दिलचस्प हैं कि जब तक उनका बारीकी से अध्ययन न किया जाए किसी निर्णय पर पहुंचना मुश्किल है। यही इस नाटक का कथ्य है। इसमें इन्हीं दो संवेदनाओं का टकराव है। नाटक को ऊपरी तौर पर देखने से हमें ऐसा लगता है कि इसमें सामंतवादी सोच उभर रही है। लेकिन ऐसा है नहीं। हबीब तनवीर

आदिवासी लोगों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठावान थे और उनका प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करना चाहते थे।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों की विषयवस्तु में नारी विमर्श को भी स्थान दिया है। 'बहादुर कलारिन' इसका एक उदाहरण है। यह नाटक हबीब के लिए सबसे ज्यादा चुनौती भरा रहा। इसका कथ्य इतना चौंका देने वाला है कि इसमें सामाजिक चेतना के तत्त्व खोज पाना मुश्किल है। इस सम्बन्ध में शाहिद अनवर ने लिखा है, *"इसका कथ्य इतना चौंका देने वाला है कि इस कथ्य में सामाजिक चेतना के तत्व खोज पाना थोड़ा दुश्वार है। बेटे का 126 शादियाँ करना और फिर माँ से दैहिक सम्बन्ध की लालसा करना यह बात इडिपस का महज दुहराव बनकर रह जाती अगर हबीब साहब इसका रिश्ता तत्कालीन समाज के सामंती चरित्र से नहीं जोड़ते। सामंती व्यवस्था से पैदा सामंती मूल्यों के वाहक बेटे का निकृष्ट चरित्र अपनी माँ के आसक्ति के रूप में फूटता है। खुद कलारिन अपने को सामंती ढंग से ही सम्पन्न बताती है। कलारिन और उसके बेटे के खिलाफ समधियों और फिर गाँव वासियों का जो आक्रोश है वही नाटक के सामंतवाद विरोध का आधार बनता है। यह विरोध कुछ इतना तीखा है कि माँ द्वारा बेटे को कुँए में ठेले जाने पर भी किसी को बेटे या माँ से हमदर्दी नहीं होती। हमदर्दी के अभाव की वजह से नाटक का ट्रैजिक इम्पैक्ट थोड़ा कमजोर तो पड़ता है, लेकिन इसका राजनीतिक पक्ष बहुत मजबूत हो जाता है।"*[19]

छत्तीसगढ़ में बहुविवाह प्रथा प्रचलन में है और उस बहुविवाह प्रथा के कारण उबा हुआ इस नाटक एक पात्र छछान कहता है, *"मोर सुख के दिन बितगे, मोला अरु दुनिया में सुख नई मिलय...तेला मैं जानगेव। मोर खुशी के दिन मोर पहिली-पहिली सादी के दिन खतम होगे, मोला अपन बचपन के सुरता आधे जब मोला अपन हाथ में खवात रहे। वो आनंद अब मोला कभू नई*

---

[19] अनवर, शाहिद; 'हबीब तनवीर: जनरंग की राजनीति'; प्रो. कमला प्रसाद (सं.); कलावार्ता; अंक 103, 2003; पृ. 169-170

मिले। कोन जनी मोला का होगे हे, मैं तोर से नई गोठिया सकंव।''[20] 'बहादुर कलारिन' नाटक में स्त्री को सिर्फ भोग्य न समझने की चेतावनी सी दी गई है। यह नाटक आज के पतनशील समाज पर प्रश्न-चिह्न खड़ा करता है।

स्टीफन ज्वाइन की कहानी 'आईज ऑफ द अनडाइंग ब्रदर' पर आधारित 'देख रहे हैं नैन' की विषयवस्तु आदमी के अंदरूनी ज्ञान, उसकी आत्मा के संघर्ष से सम्बंधित है। नाटक का कथ्य इतना विस्तृत है कि इसमें जहाँ एक तरफा शाश्वत शांति की आध्यात्मिक तलाश है तो वहीं दूसरी तरफ जंग, भ्रष्टाचार जैसी सांसारिक समस्याएँ हैं। एक तरफ वैराग्य का आदर्शवाद है तो दूसरी तरफ क्रांति के लिए सामूहिक संघर्ष। इसका कथानक भी दो स्तरों पर जारी रहता है- पहले स्तर पर व्यक्ति बनाम समाज है तो दूसरे स्तर पर राजतंत्र बनाम लोकतंत्र। इस कर्म में दर्शन और राजनीति के साथ-साथ अलौकिक और लौकिक के बीच जो असंगति है वह बड़े स्पष्ट तरीके से स्थापित होता है। 'इस नाटक का मूल सूत्र यह है कि एक अकेले की मुक्ति उस वक्त तक मुमकिन नहीं जब तक कि पूरे समाज को मोक्ष न मिल जाए। यही इस नाटक की राजनीति है।'

हबीब तनवीर अपनी धरती, अपनी संस्कृति, अपने देश, अपने समय और समाज की रक्षा के संकल्प के साथ अपने नाटकों में दिखते हैं। वे राष्ट्रीयता और सामाजिक सुधार की बात करते हैं। इस संदर्भ में 'मिट्टी की गाड़ी' नाटक का यह गीत प्रासंगिक है-

'निर्धन का दुःख दूर हो कैसे
जब कोई उसका मीत नहीं
कुछ उसकी मर्यादा इज्जत

[20] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 81

कोई जीवन रीत नही...निर्धन का दुःख दूर हो कैसे।"[21]

'पोंगा पंडित' नामक नाचा में कर्मकांड पर विनोदपूर्ण व्यंग किया था। नाटक का कथानक एक अनपढ़ ब्राह्मण पुरोहित और एक किसान का बुद्धू बेटा इसके प्रमुख पात्र हैं। किसान की मृत्यु हो जाने पर उसकी विधवा अपने भोले भाले बेटे से किसी ब्राह्मण को बुलाकर सत्यनारायण की कथा करवाने को कहती है। लड़का उस अनपढ़ ब्राह्मण को बुला लाता है जिसे कथा का कोई ज्ञान नहीं है, परन्तु वह कर्मकांड का ढोंग करता है। वह लड़का भी पूजा-पाठ से पूर्णतः अनभिज्ञ है। दोनों पात्र अपने-अपने अज्ञान एवं सरल ग्रामीण भोलेपन की प्रस्तुति कर हास्य का सृजन करते हैं।

'ज़हरीली हवा' में हबीब तनवीर का कथ्य बड़ा साफ था। समकालीन समाज की सच्चाइयों को उद्घाटित करना नाटक का उद्देश्य था। जनप्रतिनिधि व बहुराष्ट्रीय कम्पनी के संचालक की दुरभि संधि से इतनी बड़ी औद्योगिक दुर्घटना हुई। इस दुर्घटना में पीड़ितों के पक्ष में चर्चा कम है, सब अपनी अपनी रोटी सेकने में लगे हैं। इस नाटक का एक पात्र देवराज कहता है, *"विकास मतलब डेवलपमेंट संभव नहीं है। सर बिना रिस्क लिए, लेकिन अगर ये रिस्क करोड़ों भूखे आदमियों को भूख व फाँके से बचा सकता है तो फिर ये रिस्क सार्थक है। सर विश्वास कीजिए मि. एंडरसन, गीवेन द चांस, मैं आपको बताऊंगा कि कार्बन थंडर अनेक जिन्दगियों को बदल देगा। इट विल टच मेनी लाइव्स।"*[22]

नाटक में यहां के नौकरशाही की सच्चाई को भी लेखक उद्घाटित करता है। इस संदर्भ में देवराज पुन: कहता है, *"हो! मगर नौकरशाही सीमाओं से परे है। यह एक डीरेगुलेशन का देश है,*

---

[21] सिंह, रामचंद्र; व्यक्तिगत बातचीत;04/05/2019

[22] तनवीर, हबीब (अनु.); ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 43

जहाँ नियम कानून का कोई बंधन नहीं।"[23] इन दोनों वक्तव्य से जो सच्चाई उभर कर आती है वो यह है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां केवल धन कमाना चाहती हैं। वे किसी रूप में आम जनता के हित के लिए प्रस्तुत नहीं है। दूसरा यह है कि भारत के नौकरशाह हुक्म के गुलाम, सुविधाजीवी, भ्रष्ट प्रवृति रखते हैं और पैसा लेकर हम नियम कानून को तोड़ देते हैं।

देखा जाए तो समकालीन हिंदी रंगमंच पर कथ्यगत नवीनता का अनेक स्तरों पर विकास हुआ है। हबीब के नाटकों की कथ्य चेतना देखकर यह बात समझी जा सकती है। समसामयिक जीवन के संदर्भों को विभिन्न कोणों से उलट-पलट कर देखने की कोशिश हमें हबीब में देखने को मिलती है। उनके नाटकों में छत्तीसगढ़ी जीवन का आंचलिक स्पंदन तो मिलता ही है साथ ही भारतीय समाज के विभिन्न सत्य भी उजागर होते हैं। इनके नाटकों में मानवीय संवेदना की बड़ी सूक्ष्म अभिव्यक्ति तो है ही साथ ही उनके जीवन संघर्ष का वैविध्य भी है। हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया हैं, बल्कि अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं को उजागर करते हुए उसे दूर करने का समाधान भी प्रस्तुत करते नजर आते हैं।

आज हिंदी के नाटकों में कथ्य के स्तर पर अनेक प्रयोग हो रहे हैं। हबीब ने अपने नाटकों में हर स्तर पर इतना प्रयोग किया है कि वे पूरे विश्व में एक नयी पहचान बन कर उभरता है। देखा जाए तो हबीब के अधिकतर नाटकों की कथावस्तु के अंत में नायक या नायिका की मृत्यु होती है। यह पाश्चात्य ट्रेजडी बिलकुल नहीं थी। क्योंकि यह दर्शकों के मन में शोक का संचार नहीं करता था, बल्कि दर्शकों का मन आनंद की अनुभूति से भर जाता था। हबीब अपने नाटकों का अंत एक ऐसे बिंदु पर करते थे कि जहाँ दर्शक सभागार से सम्मोहित अवस्था में या शोक या आनंद में डूबा

---

[23] तनवीर, हबीब (अनु.); ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 43

हुआ न जाए। जब नाटक खत्म हो तो दर्शक को कुछ सोचने का, कुछ समझने का मौका मिले। नाटक में उठाए हुए मुद्दों, सवालों से रु-ब-रु हो पाए।

उनके नाटकों के कथ्य पर अपनी बात कहते हुए महावीर अग्रवाल कहते हैं, *"नाटक चाहे वेद या अध्यात्म से उत्पन्न हो, वह कितने ही सुन्दर शब्दों और छंदों में रचा अध्यात्म से उत्पन्न हो, वह तभी सफल माना जाता है जब लोक उसे स्वीकार करता है, क्योंकि नाटक लोकपरक होता है। उनका कथ्य आधुनिकता और जीवन बोध से जुड़ा हुआ होता है। यहीं कारण है कि कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से प्रयोगधर्मी होने के बाद भी उनके नाटकों में कहानी बहुत सहज ढंग से विकसित होती चली जाती है।... कुछ नाटकों को छोड़ दिया जाए तो उनके अधिकांश नाटक की यह विशिष्टता रही है कि हर बार कुछ नया नाटक, एक नई रंगभाषा के साथ नया रंग शिल्प लेकर आया है।....उनके नाटकों में संवाद छोटे-छोटे और मारक होते हैं। अक्सर उनके कलाकार प्रत्युत्पन्नमति द्वारा तत्काल संवाद बोलकर एक नई और अनोखी बात पैदा कर लेते हैं।"*[24]

इन सारे विश्लेषणों का सार यह है कि हबीब के नाटकों में कथावस्तु उन्हें कालजयी बनाने में अहम भूमिका निभाती है।

5.4 चरित-चित्रण

संस्कृत नाटकों में देखें तो नायक या नेता नाटक का दूसरा महत्त्वपूर्व तत्त्व होता है। इसके अंगों के रूप में नाटक के अन्य चरित्र, जैसे नायिका, उपनायक, प्रतिनायक, नायक के सहयोगी, प्रतिनायक के सहयोगी, नायिका की सखी आदि समाहित होते हैं। मनुष्य के मानसिक संघर्ष, अन्य पात्रों से मुठभेड़ या उसकी परिस्थितियों से संघर्ष चरित्र को अधिक प्रभावित करते हैं।

[24] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 140-141

अर्थात् चरित्र चित्रण में परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। परिस्तिथियों पर विचार करते हुए तथा पात्रों के अभिनय का विशेष ज्ञान रखकर ही कोई भी नाटककार चरित्र निर्माण में सफलता प्राप्त कर सकता है। चरित्र के विकास के लिए पात्र का अनुकूल होना भी आवश्यक है।

नाटक में अक्सर दो प्रकार के चरित्र प्रयोग में लाये जाते हैं। पहला वर्गप्रधान और दूसरा व्यक्ति प्रधान। वर्गप्रधान चरित्र में वर्गगत विशेषताओं पर अधिक बल डाला जाता है। जैसे राम और ईसामसीह वर्गगत चरित्र हैं जो कि समाज के उद्धारक, नेता और आदर्श हैं। व्यक्तिप्रधान चरित्र में व्यक्तिगत विशेषताओं पर ज़ोर दिया जाता है जो कि आदर्श पर आधारित होते हैं। वस्तुतः चरित्र नाटक का प्रेरक भाग और उसके जीवन से सम्बन्ध है।

हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में चरित्र की जो उद्भावना की, वह अप्रितम है। 'आगरा बाज़ार' नाटक में एक चरित्र मदारी के द्वारा हबीब तनवीर हिंदुस्तान की साझी संस्कृति के साथ-साथ इतिहास का प्रस्तुतीकरण करते हैं। मदारी के इस संवाद में देखें, *"अच्छा, जरा बताओ तो होली में मिरदंग कैसे बजाओगे? (बंदर मृदंग बजाता है) और पतंग कैसे उड़ाओगे ? (बंदर नक़ल करता है) और बांके बनकर महादेवी के मेले में कैसे जाओगे?....अच्छा, अब बताओ नादिरशाह दिल्ली पर कैसे झपटा था? (बंदर मदारी को एक लाठी मारता है) अरे, तुम तो सारे दिल्ली शहर को मार डालोगे! बसकरो, बड़े मिया, बस करो! अच्छा, अहमदसाह अब्दाली दिल्ली पर कैसे झपटा था? (बंदर लाठी मारता है) हाँय, हाँय, हाँय। तुम तो सारे हिन्दुस्थान को रौंद डालोगे। बस करो बड़े मियाँ, बस करो। और सूरजमल जाट आगरे सहर पर कैसे झपटा था? (वही नक़ल) ओहो, ओहो, मर गया। बस करो, बड़े मियाँ, बस करो! अच्छा बताओ, फिरंगी हिन्दुस्थान में कैसे आया था? (बंदर भीख माँगने की नक़ल करता है) और पिलासी की लड़ाई में लाट साहब ने क्या किया था? (बंदर लाठी से बंदूक चलता है) फैर कर दिया था? ओहो-हो, और बंगाल में क्या*

हुआ था?"[25] ककड़ी वाले का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है। देखा जाए तो इस नाटक का प्रत्येक चरित्र अपनी बातों से उस समय के राजनीतिक और सांस्कृतिक समाज की झलक दिखला जाता है।

'मिट्टी की गाड़ी' का चरित्र शर्विलक किस तरह अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करता है, यह इन पंक्तियों में समाहित है, 'मैं वीरों और अपनी भुजाओं के पराक्रम से बने-राजा के अपमान से कुपित सेवकों तथा अपनी जाति के लोगों को मित्र आर्यक की मुक्ति के लिए उत्तेजित करता हूँ।' इस नाटक के अन्य पात्र भी आज के सामाजिक मूल्यों को चुनौती देते हैं। 'मुद्राराक्षस' नाटक में चाणक्य आज की राजनीति में व्याप्त कूटनीति का प्रतीक है, जो सत्ता के लिए चक्रव्यूह की रचना करता है। 'गाँव के नाम ससुरार मोर नांव दामाद' नाटक में मालती का पिता लालच से वशीभूत होकर अपनी बेटी का ब्याह एक बूढ़े से कर देता है। यह चरित्र समाज में व्याप्त लालची मनोवृति का प्रतीक है।

'चरनदास चोर' नाटक हबीब तनवीर की सबसे सफलतम प्रस्तुतियों में से एक है। नाटक का नायक चरनदास एक चोर है। चोर किस तरह समाज में अपनी प्रतिष्ठा तथा सत्य की स्थापना के लिए अपनी मृत्यु तक का वरण करता है, यह इस चरित्र के मध्याम से उजागर होता है।

'बहादुर कलारिन' नाटक में दो प्रमुख पात्र हैं। एक छछान और दूसरा बहादुर। छछन समाज में व्याप्त औरत को भोग्य समझने वाले कुत्सित मानसिकता का प्रतीक है। बहादुर का चरित्र स्त्री की मान-मर्यादा की रक्षा करने के उपक्रम में अपने बेटे के प्रति ममत्व भाव का गला घोंट देती है। 'सोनसागर' नाटक में लोरिक और चंदा की प्रेममयी गाथा समाहित है। हबीब तनवीर ने इस प्रेमगाथा में लोरिक को एक नेता के चरित्र की तरह पेश किया है, वहीं दूसरी ओर चंदा को एक सशक्त इरादों वाली महिला के रूप में।

---

[25] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 50-51

हबीब तनवीर ने 'हिरमा की अमर कहानी में' महाराज हिरमादेव और कलक्टर नामक दो पात्रों के माध्यम से सामंतवाद और लोकतंत्र का अंतर्विरोध दिखाया है। दोनों पात्र अपने-अपने चरित्र को बखूबी उजागर करते हैं। हिरमादेव ने सामान्य जनता की आस्था व श्रद्धा का दुरूपयोग किया, वहीं कलक्टर के चरित्र के माध्यम से नौकरशाही के दांव-पेंच को यहां प्रस्तुत किया गया है। 'देख रहे हैं नैन' नाटक का मुख्य पात्र विराट है जो अनजाने में हुई चूक या गलती को सहन नहीं कर पता। वह आत्मग्लानि से पीड़ित है, जिसके कारण वह बार-बार अपने पथ से विचलित होता है और अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है।

'एक औरत हिपेशिया भी थी' नाटक की पात्र हिपेशिया इस नाटक की नायिका है, जो राजनैतिक शोषण और दमन चक्र के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करती है। 'वेणी संहार' नाटक में द्रोपदी मुख्य चरित्र के रूप में सामने आती है। किन्तु वह शोषण और दमन के विरुद्ध आवाज बुलंद नहीं करती, बल्कि प्रतिशोध की आग में जलती हुई विध्वंस की मानसिकता का परिचय देती है। 'पोंगा पंडित' (छत्तीसगढ़ी गम्मत) नाटक की प्रमुख पात्र जमादारिन है। पहले यह नाटक 'जमादारिन' नाम से मंचित होता था। इस नाटक में जमादारिन के चरित्र के माध्यम से सामाजिक वर्ग-विभेद की स्थितियों से उत्पन्न कुरीतियों को खत्म करने का प्रयास किया गया है।

देखा जाए तो हबीब तनवीर के नाटकों में मुख्य पात्रों के अलावा अन्य पात्र भी प्रासंगिक हैं, जो नाटकों की गतिशीलता बनाए रखने में अपने-अपने किरदारों का वहन करते हैं। नाटकों के कथानक को स्पष्ट करने में ये पात्र अपनी महती भूमिका का निर्वाह करते हैं।

कुल मिलकर कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर अपने नाटकों में चरित्रों की जो उद्भावना करते हैं, वह अपने कार्य-व्यापार द्वारा लोगों पर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। यही वजह है कि हबीब तनवीर के नाटक ज्यादा लोकप्रिय और चर्चित हुए हैं।

5.5 गीत-योजना

नाटक में गीत का महत्त्व प्राचीन काल से रहा है। नाटक के कथानक के निरस प्रसंगों को दूर करने के लिए तथा नाटक में सरसता और रोचकता लाने के लिए गीत-संगीत की योजना को बताया गया है। लेकिन यूनानी नाटकों की तरह भारतीय नाटकों को गीतों के आधार पर संगठित करने का परामर्श नहीं दिया गया। यहां नाटकों में परिणति, परिवेश और आवश्यकतानुसार गीत-संगीत की योजना की जाती रही है। कभी-कभी कथ्य को आगे बढ़ाने में भी गीत अपनी भूमिका निभाते हैं।

हिंदी नाटकों की बात करें तो भारतेंदु हरिश्चंद तथा जयशंकर प्रसाद की गीत योजना सबसे महत्त्वपूर्ण रही है। इनके नाटकों में गीतों का बाहुल्य है, खासकर प्रसाद के यहां। प्रसाद के गीतों में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना के भी दर्शन होते हैं। समकालीन हिंदी नाटक में जितने बड़े नाम हैं, उन्होंने अपने नाटकों में आवश्यकतानुसार गीत की योजना प्रस्तुत की हैं और गीत की योजना प्रस्तुत करके अपने कथ्य के अनुरूप वातावरण का निर्माण भी करते हैं तथा मूल चेतना के तरफ भी संकेत कर जाते हैं। इस काम में सबसे पारंगत हबीब तनवीर दिखते हैं। चूँकि वे स्वयं एक अच्छे शायर, कवि थे इसलिए गीत की योजना उन्होंने खूब की है। गीत के बिना हबीब तनवीर के नाटक की परिकल्पना मुश्किल से रहती है। हबीब तनवीर कहते थे, *"यह अभिनय नहीं, भाव समाधि है। गीत की लय या धुन कलाकारों को सम्मोहित करती है और वह पुरी तरह उसी में डूब जाता है। इसके विशिष्ट प्रभाव को, इसके जादू को दर्शक भी महसूस करते है।"*[26]

देखा जाए तो गीतों का सीधा सम्बन्ध लोक जीवन से है। यह किसी बंधे बंधाएं शास्त्रीय पद्धति का अनुगामी नहीं होता और न ही लिखित परम्परा का वाहक होता है। इसका सम्बन्ध

---

[26] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 319

श्रमशील समाज से है। यह अकारण नहीं है कि अधिकतर भारतीय लोक गीतों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में कृषि श्रमशीलता के साथ है। यह लोक मानस में पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होता रहता है। हिंदी साहित्य कोश में लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखा गया है, 'लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोक समूह अपना मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिंबित रहता है।' यह भाव बोध लोक कलाओं और लोक गीतों पर भी लागू होता है।

लोकगीत को प्रकृति काव्य कहा जा सकता है। इसका सम्बन्ध ऋतुओं के साथ गहरा जुड़ा हुआ है। वर्ष में जैसे-जैसे ऋतु परिवर्तन होते हैं, उनके साथ प्रकृति का रूप भी बदलता है और लोक गीत का स्वरुप भी। साथ ही भारतीय लोक गीतों का सम्बन्ध यहाँ की कृषि प्रधान सभ्यता के साथ भी जुड़ा हुआ है जिसकी निर्भरता प्रकृति और ऋतुओं पर होती है। फागुन मास में 'फगुआ', चैत में 'चैता', सावन में 'कजरी' जैसे अलग-अलग ऋतु गीत लोक में प्रचलित हैं। जिनकी सरसता और मिठास लोक जीवन को हमेशा सराबोर करता रहता है।

हबीब तनवीर में एक साथ अभिनय कौशल, निर्देशन, और लेखन का तो गुण था ही, वे शायरी और तरन्नुम की चेतना से भी भरे हुए थे। जैसे संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार कालिदास अपने अभिज्ञानशाकुन्तल आदि नाटकों में कथानकों को गीतों एवं गेय संवादों के माध्यम से आगे बढ़ाते हैं ठीक उसी प्रकार हबीब तनवीर अपने अधिकांश नाटकों के कथावस्तु को गीतों के माध्यम से आगे बढ़ाते हैं। जिससे दर्शकों का मनोरंजन होता रहे और नाट्य प्रयोजन भी सिद्ध होता रहे। सत्येन्द्र तनेजा के शब्दों में, *''हबीब तनवीर नाटकीय अवसाद को रुचिकर बनाये रखने के लिए गीत संगीत की मनोरंजक परक आवश्यकता को समझते थे परन्तु उनकी सीमा के प्रति वे*

सदा सतर्क रहे, अन्यत्र गीत नाटक के कार्यव्यापार के अभिन्न अंग है। वे शब्द बहुल नहीं है और आकार में छोटे है, इसलिए कहीं बाधक या उबाऊ होने की स्थिति नहीं आई। हबीब के नाटकों के केंद्रीय पात्र किसी न किसी बाध्य या आन्तरिक संकट से घिरे रहते हैं, ये गीत उनकी गुत्थियों को सामने लाते हैं या उन्हें नये आयाम देते हैं।''[27]

हबीब तनवीर ने 'मिट्टी की गाड़ी' को प्रथम बार मंचित करते समय भारतीय संगीत व नृत्य परम्पराओं का बड़ा सूझ-बूझ के साथ प्रयोग किया था। यह सूझ-बूझ पहली प्रस्तुति की सफलता में सहायक सिद्ध नहीं हुआ। लेकिन असफलता से यह सिद्ध नहीं होता कि नाटक में संगीत पक्ष का महत्त्व नहीं है। इस संदर्भ में भारत रत्न भार्गव लिखते हैं, *''हमारे शास्त्रीय संगीत में शब्दों और शब्दों से कहीं अधिक स्वरों का दुहराव एक विशेष अर्थ ध्वनित करता है।....अपने नाटक के माध्यम से दर्शकों को उसी प्रकार के अनुभव तक ले जाना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मिट्टी की गाड़ी में स्वरों की आवृत्ति का प्रयोग किया। अलग-अलग मनः स्थितियों के लिए एक ही शब्दावली। फिर भी स्वर रचना, लय और ताल में भरपूर विविधता। लेकिन इस विविधता के बावजूद शब्दों की पुनरावृति और स्वरों की आवृति नाटक में सामान्य दर्शकों के लिए रस अवरोधक बन गए। हमारे शास्त्रीय संगीत की एक परम विशिष्टता तथा उपलब्धि नाटक में समाहित होने पर केवल तिरोहित ही नहीं हुई, बल्कि उसने रसास्वादन में भी बाधा उत्पन्न कर दी।''*[28]

हबीब तनवीर यह मानते हैं कि रंगकर्म हेतु रंगकर्मी को कविता, संगीत और चित्रकला की अच्छी समझ होनी चाहिए, क्योंकि इसके बिना नाटक में आकर्षण नहीं आता है। उनके शब्दों में, *''कविता, नाटक, संगीत, चित्रकला और साहित्य के बीच रिश्ता गहरा है। थियेटर में इन सबका*

---

[27] तनेजा, सत्येन्द्र; 'नाटकों के गीत', अशोक वाजपेयी; नटरंग; अंक 86-87; जुलाई-दिसम्बर, 2010; पृ. 77

[28] भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली; संस्करण 2006; पृ. 66

इनवालमेंट जरुरी मैं मानता हूँ, कई कलाएँ थियेटर में शामिल हैं। कविता व कहानी का साथ होते हुए भी संवाद द्वारा नाटक के पात्र अपनी बात कहते हैं।''[29]

हबीब तनवीर लोकगीत को बहुत महत्त्व देते थे। इस संदर्भ वे कहते थे, *''लोकगीत का अर्थ मैं मानता हूँ कि जो 'लोक' के बीच अर्थात् जन-जन के बीच प्रिय हो। सैकड़ों हजारों लोग उस 'गीत' को गाते जरुर हैं लेकिन लोक गीत को रचने वाला या लिखने वाला भी एक व्यक्ति होता है। यह जरुर है कि उस गीत के साथ रचयिता का नाम नहीं चलता दूसरे को, तीसरे को, चौथे को पसंद आता है और इस तरह सैकड़ों, हजारों तक पहुँच जाता है। लोक जीवन के अन्तस की पुकार होने के कारण ये गीत उनके कंठ का हार बन जाते हैं। धुन वही रहता है। काल और परिवेश के हिसाब से दूसरे गायक उस गीत को बदलते रहते हैं। जैसे चोंगी वाला नई दिखे बदे हों नरियर....इस गीत में 'चोंगीवाला' बदलकर गाड़ीवाला, साइकिलवाला, घड़ी वाला, स्कूटर वाला, ट्रक वाला बना दिया जाता है और फिर यही टोपीवाला नहीं दिखे, मोटरवाला नहीं दिखे, बदे हों नरियर तक पहुँच जाता है। इस तरह लोक में यह एक अनोखी और डायनेमिक चीज होती है। चुनांचे भविष्य में हम रहे, न रहे यह लोक गीत रहेगा।....लोक की अनन्त संभावनाओं को यहां समझा जा सकता है। यह लोक की शक्ति है।''*[30]

वे लोक गीत को महत्त्व इसलिए भी देते थे क्योंकि लोक भाषा में ही लोक जीवन की संस्कृतियाँ दिखती हैं। इसी बात पर हबीब तनवीर कहते हैं, *''लोकभाषा और लोकगीतों की इस काव्य धारा का सम्बन्ध परम्परागत लोक जीवन से होता है। लोक गीतों की बहुत ही सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति पारिवारिक जीवन में विविध संस्कारों के अवसर पर सुनाई पड़ती है। त्यौहारों के साथ-साथ लोकोत्सव और मेले के अवसर पर भी इनकी खनकती हुई आवाज मन*

---

[29] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्रीप्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 317

[30] वही, पृ. 317

मोह लेती है। होली के अवसर पर गाँव-गाँव में गमकती हुई फाग और दीवाली के अवसर पर करमा-ददरिया की अनुगूँज सुनकर आप मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। सुआ गीत में स्त्री जीवन के कठिन अनुभवों और उनके संघर्षों को सुनकर दिमाग के तार झनझना जाते हैं। मैंने देखा है, सुना है, समझा है, तब मैं कहता हूँ... इन गीतों के गाने वाले सब के सब नीचे तबके के लोग होते हैं, इसलिए उनका संघर्ष, उनका जीवन, सब कुछ उनकी आवाज और उनके संगीत के साथ आता है। लोक गीतों में उनका निजत्व भी सार्वजनिक होता रहा है।''[31]

हबीब तनवीर की गीत योजना को हम देखते हैं तो ढेर सारी विविधता देखने को मिलती है। 'आगरा बाज़ार' में हबीब ने जिस पहले गीत की योजना की है। उसमें आगरा के समसामयिक जीवन यथार्थ को व्यक्त किया है और वह बड़ा मार्मिक हो पड़ा है। इस गीत को फकीर गाते हुए नाटक की शुरुआत करते हैं-

''है अब तो कुछ सुख़न का मेरे कारोबार बंद
रहती है तब्अ सोच में लैलो-निहार बंद
दरिया सुख़न की फ़िक्र का है मौजदार बंद
हो किस तरह न मुँह में ज़ुबाँ बार-बार बंद
जब आगरे की ख़ल्क का हो रोजगार बंद
जितने हैं आज आगरे में कारखानाजात
सब पर पड़ी हैं आन के रोजी की मुश्किलात
किस-किसके दुख को रोइये और किसकी कहिये बात
रोज़ी के अब दरख्त का मिलता नहीं है पात

[31] अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्री प्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006; पृ. 318

ऐसी हवा कुछ आके हुई एक बार बंद...।''[32]

इस गीत की योजना करके वह आगरा के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक संदर्भों को उदघाटित कर वातावरण का सृजन तो करते ही है, आगरा के समकालीन यथार्थ का अंकन भी कर जाते है। इसी तरह एक दूसरे गीत में फकीर ने अपने जीवन की व्यथा कथा को प्रस्तुत कर रोटी के महत्त्व का अंकन किया है।

''...हम तो न चाँद समझें, न सूरज हैं जानते
बाबा, हमें तो ये नज़र आती हैं रोटियाँ
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ
रोटी न पेट में हो तो कुछ भी जतन न हो
मेले की सैर, ख्वाहिशे-बागो-चमन न हो
भूखे ग़रीब दिल की ख़ुदा से लगन न हो
सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ।''[33]

नाटक में बाजार में होने वाले एक लड़ाई-झगड़े का दृश्य है। हबीब तनवीर ने एक फकीर के माध्यम से वहां जो गीत का नियोजन किया है, वह तात्कालिक स्थिति को पूरी यथार्थता के साथ उदघाटित करता है-

''मुफ़लिस की कुछ नज़र नहीं रहती है आन पर
देता है वह अपनी जान एक-एक नान पर
हर आन टूट पड़ता है रोटी के ख्वान पर

---

[32] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010; नई दिल्ली; पृ. 47
[33] वही, पृ. 52-53

जिस तरह कुत्ते लड़ते हैं एक उस्तख्वान पर

वैसा ही मुफ़लिसों को लड़ती है मुफ़लिसी

यह दुख वह जाने जिस पे आती है मुफ़लिसी।''[34]

देखा जाए तो 'आगरा बाज़ार' के गीत बाजारवाद की सच्चाई से भी जुड़े हैं। आज के बाजारवाद में कोई भी चीज, सामान बिना उसकी ख़ूबी, महत्त्व बताए नहीं बिकता। कई बार दो उत्पादों में प्रतियोगता भी देखने को मिलती है। यही स्थिति नाटक में ककड़ीवाला, तरबूजवाला तथा लड्डू वाला के माध्यम से देखी जा सकती है। शुरुआत में ये तीन अपना सामान न बेच पाने के कारण परेशान होते हैं तथा आपसी झगड़े में उलझ जाते हैं। लेकिन नाटक के अंतिम पड़ाव में जब ककड़ी वाला नज़ीर से नज़्म लिखवा गा-गा कर अपनी ककड़ी बेचने लगता है तो बाकी दोनों भी नज्म लिखवाकर प्रतियोगी के रूप में बाजार में आ खड़े होते हैं। ये पात्र बाजार में अपने-अपने सामान का गीत के माध्यम से किस तरफ प्रचार-प्रसार करते हैं। ककड़ी वाला गाता है-

''क्या प्यारी-प्यारी मीठी और पतली-पतलियाँ हैं

गन्ने की पोरियाँ हैं, रेशम की तकलियाँ हैं ...

ककड़ी न कहिए इसको, ककड़ी नहीं परी है

क्या ख़ूब नर्मों-नाजुक इस आगरे की ककड़ी

और जिसमें ख़स काफ़िर इसकंदरे की ककड़ी''[35]

इसी तरफ तरबूज़वाला गाता है-

''अब तो बाज़ार में बिकते हैं सरासर तरबूज़

---

[34] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010; पृष्ठ. 55-56

[35] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 106

क्यों न हो सब्ज ज़मरुद के बराबर तरबूज़

करता है ख़ुश्क कलेजे के तई तर तरबूज़

दिल की गर्मी का निकाले है यह अक्सर तरबूज़

जिस तरफ देखिए बेहतर से है बेहतर तरबूज़।''[36]

इस तरह ये सभी अपना सामान बेचने में सफल होते हैं। हबीब तनवीर के गीत योजना की यह विशेषता है कि गीतों के माध्यम से वातावरण और कथ्य चेतना दोनों को उद्घाटित करने में बड़े सहायक है। साथ ही पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को भी उभारने में सहायक है। जैसे 'एक औरत हिपेशिया भी थी' नाटक का यह गीत देखिए-

''अक्ल की दुनिया में जिस कदर भी थी

वो सब एक शख्स से समाई थी

एक औरत हिपेशिया भी थी

शक्ल महताब हुस्न की पहली

जिससे दुनिया में रोशनी फैली

एक औरत हिपेशिया भी थी

अक्ल की वैसी दिल की भी वैसी

उसको हर शख्स से थी हमदर्दी

आप अपनी मिशाल थी वैसी

एक औरत हिपेशिया भी थी

---

[36] तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; संस्करण 2010; पृ. 106

उसके क्या-क्या हुनर मैं गिनवाऊ

कम है जितना भी उसके गुन गाऊ

एक औरत हिपेशिया भी थी।''[37]

'एक औरत हिपेशिया भी थी' नाटक में गीत कथानक को अग्रिम कड़ी तक ले जाता है। जैसे यह गीत-

'' हमको इंसान से हैवान बनाया जिसने

सरे- बाज़ार में हमें कत्ल कराया जिसने

जुल्म से जुल्म का अहसास कराया जिसने

अब उसे जुल्म का अंजाम भुगतना होगा

अक्ल को दश्ते-जहालत में भटकना होगा...2

शाखे इरफाँ को बदस्तूर जलाया जिसने

इश्क को खाक में रह-रह के मिलाया जिसने

कौम को खानमाँ-बर्बाद बनाया जिसने

अब उसे जुल्म का अंजाम भुगतना होगा

अक्ल को दश्ते-जहालत में भटकना होगा...3 ''[38]

देखा जाए तो हबीब तनवीर अपने गीतों से कई बार नाटक की शुरुआत करते हैं और कई बार अंत। जैसे 'चरनदास चोर' नाटक कि शुरुआत पंथी गीत से होती है और अंत 'चरनदास चोर' की महिमा के साथ। 'एक औरत हिपेशिया भी थी' नाटक का भी अंत वे एक गीत से करते हैं। जैसे-

---

[37] तनवीर, हबीब; एक औरत हिपेशिया भी थी; वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004; नई दिल्ली; पृ. 11

[38] वही, पृ. 22

" हाथों में थी खुली छुरी, होठों पर राम मुजब जब था

देखो, अपने बाजीगरो, गुर भी कैसा बेढब था

ऐसा जमाना इससे पहले, हमने भी देखा कब था

बाबरी मस्जिद काण्ड के पीछे, सियासत थी या मजहब था

या शायद इस भेद के अंदर, अपना अपना मतलब था।

फिरकापरस्ती की ये आग, भला किसने भड़काई है

हम जिंसों पर वार किए, आदत किसने डलवाई है।

अपने इस विज्ञान के दौर का, काण्ड बड़ा दुखदायी था

बाबरी मस्जिद काण्ड के पीछे..."[39]

देखा जाए तो 'बहादुर कलारिन' नाटक में दुर्ग जिले की कथा है और इस नाटक का सम्बन्ध भिलाई से भी है। नाटक के प्रारम्भ में आया गीत कथानक को गति प्रदान करता है। जैसे-

"अइसन सुन्दर नारी के ये बात, कलारिन ओकर जात

सोरर अउ चिरचारी के निशानी सब झन ला देखाव थावंव गा।"[40]

इस नाटक में हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी गीतों का प्रयोग कर यहाँ कि आंचलिक महक को गीतों के माध्यम से उद्घाटित करने की कोशिश की हैं। जैसे-

"संझा बेरा जाबो घुमें ला डोंगरी,

काली अइसन सपना सपनाय हंव जोड़ी।।

ऊहीं डोंगरी तो है राजा, सुंदररंगमहल

---

[39] तनवीर, हबीब; एक औरत हिपेशिया भी थी; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ. 88

[40] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 14

जंगल झाड़ी का हे हो सुंदर रंगमहल।

नवसे के हावय ओबरी

संझा बेरा...

बन में मन मोर नाचे हो मैना तितुर बोले ना

कोयली परेवना बोले हो मैना तितुर बोले ना

आनी बानी के हे बोली।।

संझा बेरा...

री रीना रीना रंगरसिया मन लेके जाबे ससुराल

गोड़ के बिछिया इसल परे पिसल परे महल ऊपर दिया जले

पर्वत के फूल रे पवन झलक दे रंगरसिया मन लेके।''[41]

इस गीत में राजा के रंग महल की कथा को सामने लाया गया है। अपने दूसरे गीत के संयोजन में हबीब तनवीर ने गाँव अंचल में प्रचलित कहावतों के माध्यम से जीवन व जगत की सच्चाई का बयान किया है।

''दुनिया में दू झगरा हे भाई खेती अऊ नारी के दुनिया में ...

चारो युगले आवत हावै गहाही हावय इतिहास दुनिया में ...

घर बँटवारा के खातिर संगी कतको होइन लड़ाई

कौरव पांडव के का गत होगे, लड़ीन भाई भाई।

दुनिया में ...

नारी खातिर बाली रावन दूनो दे दिन जान

सच हे येहर नोहय लबारी गवाही हे वेद पुराण

---

[41] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2004; पृ. 32

दुनिया में... ''[42]

शादी के अवसर पर पत्नी अपने पति से लहंगा, ब्लाउज और चुनरी की मांग करती है, क्योंकि गाँव की ये सच्चाई है कि उनके पास नया ड्रेस सिलाने का वही अवसर होता है। गाँव में मेहनत कस लोग इतने साधन सम्पन्न नहीं होते कि वे नित्य नये वस्त्रों की फरमाइश कर सकें। संयोग से घर में जब कोई मांगलिक अवसर आता है तब घर की औरतें अपने पति से अपनी लम्बी अवधि से संचित अभिलाषा की पूर्ति हेतु फरमाइश करती हैं। इसी आग्रह और मांग से भरा गीत है-

''देतो दाई देतो दाई अस्सी रुपैया,ते सुदरी ला लानव वो बिहाव
सुंदरी सुंदर बाबू तुम झनि रटिहौ, ते सुंदरी के देश बड़ा दूर
तोर बर लानव दाई, रंधनी पोरसनी, के मोर बर घर के सिंगार ...
सैंया मोरे रुंया भरा दे रे हावा के चोली सिलाय।
कारी को सोहै कारी पिरी चुटिया और भला गोरी को सोहै छीट
छैलू को सौहे रें चुनरिया मिल गए पुराने मीत। ''[43]

लोक संस्कृति और लोकगान के आग्रही हबीब तनवीर ने 'गाँव का नांव ससुराल मोर नांव दामाद' नाटक में फेरे के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीत को अपने इस नाटक में लिया है जो अंचल की परम्परा और उसके रीति-रिवाजों को प्रस्तुत करता है। गीत इस प्रकार है-

''करसा सिंगारौ भैंया रिग बिन सिग बिन वो रिग बिन सिग बिन...
लिमवा के डारा मोर इट-फुट जाइहै वो तिरनी गई छरियान ''[44]

---

[42] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन, वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 53
[43] वही, पृ. 63
[44] तनवीर, हबीब; तीन खेल; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 186-187

लोकगीतों में सामान्यतः प्रकृति का आलम्बन, गायक की अभिलाषा और उस अंचल की नोक-झोक यह सब कुछ मिलता है। हबीब तनवीर इस सब की अच्छी समझ थी। इसलिए उनके नाटकों के गीतों में भी यह बात दिखती है। जैसे 'गांव के नांव ससुराल मोर नांव दामाद' के अंत में कुछ इस अंदाज भरे गीतों से होता है-

''सास गारी देवे ननद मुह लेबे, देबर बाबू मोर

सैया गारी देवे परोसी गम लेवे करा कुल फूल, केरा बारी में डेरा देबो चले के बेरा हो ...।''[45]

इसी तरह नाटक चरनदास चोर में भी हबीब तनवीर आंचलिक गीतों को विषय के अनुरूप इतने सुंदर ढंग से पिरोते हैं कि कथा की मूल चेतना गीतों के माध्यम से दिखने लगती है। इस संदर्भ में यह गीत है-

''तरीच नारी नाहा ना मोर नाहा नारी ना ना रे

सुआ हो तरी ओ नारी नाहा नारी ना ...।''[46]

हबीब तनवीर के अधिकांश नाटकों में गीत कथ्य को आगे बढ़ाने में सहायक हैं। इसी दृष्टि से उनका प्रसिद्ध नाटक 'कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' नाटक को देखा जा सकता है। देखा जाए तो इस नाटक का प्रत्येक संवाद गेय है। जैसे-

''मेरी परियों, ओ मेरे तूफानों मेरे बगूलो।

मेरा हुक्म है, इस जवान की सेवा कभी न भूले।।''[47]

'चरनदास चोर' नाटक के कथानक को भी आगे बढ़ाने में गीत सहायक सिद्ध हुए हैं। जैसे-

''रानी ने संगी शहर में डौंडी पिटवाई ...

---

[45] वही, पृ. 197-198

[46] वही, पृ. 133-134

[47] तनवीर, हबीब; कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना; वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली; पृ. 32

दस मोहरे रानी के खजाने से कोई लेने चोरके''[48]

'ज़हरीली हवा' नाटक की शुरुआत में ही विषय के अनुरूप हबीब तनवीर गीत का संयोजन करते हैं। भारतीय समाज का यथार्थ है कि आज समकालीन समाज में बेईमानी, भ्रष्टाचार, दुराचार, फरेब, झूठ इतना बढ़ा है कि वातावरण विषाक्त हो गया है और चारों तरफ 'ज़हरीली हवा' बह रही है। आए दिन औद्योगिक घटनाएँ होती हैं। भोपाल में यूनियन कार्बाइड गैस कांड हुआ जिसके कारण हजारों लोग मारे गए, हजारों लोग विकलांग हो गए। इसी को आधार बना कर नाटक की शुरुआत में यह गीत आया है।

''गैब से चलने लगी जब

एक ज़हरीली हवा ...

मौत की जैसी बू आ रही है।''[49]

'ज़हरीली हवा' में हबीब तनवीर गीत योजना पर ज्यादा केन्द्रित न रहकर विषय की गंभीरता के कारण वैचारिक ढंग से अपनी बात सामने लाते हैं। 'देख रहे हैं नैन में' में गीत योजना देखते बनती है जब राजा निराश हो जाता है तो उसे विराट में आशा की एक किरण दिखती है-

''आस का दामन छूट गया

राजा का दिल टूट गया

हंस गए सेना भी गई

रही सही आशा भी गई

भागे फौजों के जत्थे

चम्पत राय भी चम्पत थे

---

[48] तनवीर, हबीब; चरनदास चोर; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2008; पृ. 65

[49] तनवीर, हबीब; ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2010. पृ. 15

जब उड़-उड़ ध्रुवन गगन में छागे, बरगे सुरुज के जोत

तोर जोत महामायी बरगे सुरुज के जोत

एक विराट से आशा थी

आशा थी मर्यादा थी

सब मित्रों से भर पाया

राजा विराट के घर आया।"[50]

'कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना' विलियम शेक्सपियर के नाटक का रूपांतरण है। इस नाटक में कई रोमांटिक गीतों का चयन करके विषय के अनुरूप गीतों का सृजन किया है। जैसे-

"जब तक है इश्क जिन्दा, ऐ चाँद छुप न जाना,

तेरी ही गर्म किरणें हैं इश्क़ का बहाना।

अपनी चमक-चमक में थिस्बी मेरी दिखा दे,

और इस तरह ज़मीं पर भी चाँद एक उगा दे।

है ज़ुल्म का ज़माना ऐ चाँद छुप न जाना ...

धुल उठे और उठकर मेरे चेहरे पर छा जाए।

क्यों न मेरे सर पर पर्बत, अपने पत्थर बरसाएँ।

बादल गरजें, मौंजें उठ्ठें, धरती थरथर काँपे,

कहो जिन्दगी से अब निकले, मौत की चादर ढांपे।"[51]

---

[50] तनवीर, हबीब; देख रहे हैं नैन; पुस्तकायन, नई दिल्ली; संस्करण 1996; पृ. 19

[51] तनवीर, हबीब; कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 57

नायिका के विरह की अभिव्यक्ति भी इस नाटक में आए गीत में देखने को मिलती है जब थिस्वी कहती है-

" क्या मेरा प्यार सो गया बिलकुल

चुप हमेशा को हो गया बिलकुल

क्या मेरा पिरेमस अब न बोलेगा

अब तेरा बाज पर न तोलेगा

बोल सचमुच तू मर गया बिलकुल

क्या मुझे बेवा कर गया बिलकुल ...

लो ये देखो तुम्हारी थिस्वी गई

रोशनी मेरी शमाँ की भी गई।"[52]

हबीब तनवीर इस नाटक का अंत भी गीत से करते हैं। इस गीत में नाटक के सोद्देश्यता पर प्रकाश तो डालते ही हैं साथ ही नाट्य प्रस्तुति का दर्शक से प्रतिक्रिया की अपेक्षा रखते हुए भविष्य में और बेहतर नाटक प्रस्तुत करने की बात करते हैं।

"भाईयों बहनों बुरा न मानना

बुरा लगे गर खेल

बाती उतनी रौशनी देती

जितना डालो तेल

यही समझ कर देखो

हम सब रात की हैं परछाई

---

[52] तनवीर, हबीब; कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004. पृ. 59-60

बातें इन परछाइयों की कुछ

हमने तुम्हें बताईं।

समझो काम से थककर तुम

सो गए थे थोड़ी देर

और फिर एक सपना देखा

जब हो गये नींद से ढेर

यही हमारा कच्चा पक्का

नाटक था वो सपना

तुम भी अगर ये बात मान लो

काम बन गया अपना

भाइयों बहनों अगर हमारा

बुरा लगे ये खेल

समझो मंड़वे चढ़ते चढ़ते

चढ़ जायेगी बेल

हम वादा करते हैं अगली बार

जो हम आयेंगे

आज के नाटक से कुछ

बेहतर नाटक दिखलायेगे।"[53]

सांसारिक 'जीवन में ज़र-जोरू-जमीन' विवाद का मुख्य कारण बनती है। इस तथ्य को हबीब तनवीर ने अपने नाटक 'बहादुर कलारिन' में इस गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

---

[53] तनवीर, हबीब; कामदेव का अपना बसंत ऋतु का सपना; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 63-64

"दुनिया में दू झगरा हे भाई खेती अऊ नारी के दुनिया में ...

चारों युगले आवत हावै गहाही हावय इतिहास दुनिया में ...

घर बंटवारा के खातिर संगी कतको होइन लड़ाई

कौरव, पांडव के का गत होगे, लड़ीन भाई भाई दुनिया में ...

नारी खातिर बाली रावन दूनो दे दिन जान

सच हे येहर नोहर लाबारी गवाही हे वेद पुराण दुनिया में..."[54]

सत्ता के स्वार्थ में किस तरह छोटी-छोटी बातों के लिए संघर्ष होता है, यह नाटक 'हिरमा की अमर कहानी' के इस गीत से स्पष्ट होता है-

"एक अंगूठी न मिलने के खातिर

न मिलने के खातिर, न मिलने के खातिर

कि सुवना फिर गद्दी भी छीनी गई

अंगूठी पे गद्दी भी छीनी गई

एक अँगूठी पे गद्दी भी छीनी

गद्दी भी छीनी, देश भी छीना,

कि सुवना फिर जिन्दगी भी छीनी गई

अंगूठी पे जिन्दगी भी छीनी गई... ।"[55]

'हिरमा की अमर कहानी' में आदिवासियों के अपने जल, जंगल, जमीन से जुड़े होने के भाव को निम्न गीत प्रस्तुत करता है-

"हम धरती के लाल हैं, धरती के सैनिक भी हम हैं।

---

[54] तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 2004; पृ. 53

[55] तनवीर, हबीब; हिरमा की अमर कहानी; पुस्तकायन, नई दिल्ली; संस्करण 1996; पृ. 7

हम जंगल के वासी हैं, जंगल के रक्षक भी हम हैं

सेवक भी पेड़ों के हम हैं, और मालिक भी हम ही हैं

यही हमारी महतारी, ये धरती इतनी प्यारी

यही हमारी महतारी[56]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर के नाटकों में गीत योजना का कितना महत्त्व है। गीत न केवल मनोरंजन करते हैं बल्कि कथ्य को आगे बढ़ाते हैं, चरित्र को उभारते हैं। उनके लगभग सभी नाटकों में गीत का प्रयोग किया है। साथ ही हबीब तनवीर अपने नाटकों में लोक भाषा, मुहावरों, कहावतों को संजोए हुए थे। उन्होंने छत्तीसगढ़ी के साथ-साथ उर्दू, अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उनके नाटकों के कथानक सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं को उठाते हैं।

[56] अग्रवाल, प्रतिभा; हबीब तनवीर एक व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कोलकत्ता; संस्करण 1993; पृ. 151

उपसंहार

हबीब तनवीर हिंदी एवं भारतीय रंगकर्म के एक विशिष्ट रंग-व्यक्तित्व थे। वे पत्रकार, कवि, समीक्षक, अभिनेता, गीतकार, लेखक, निर्देशक सभी कुछ एक साथ थे। उनकी रंग चेतना ने छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति को विश्व रंगमंच के फलक तक पहुँचा दिया। रायपुर में जन्मे हबीब तनवीर का बचपन से कला एवं अभिनय की तरफ रुझान रहा। यही कारण है कि अपनी पढ़ाई बीच में छोड़ कर वे बम्बई चले आये। बम्बई का जीवन उनके व्यक्तित्व के निर्माण का पहला भाग था। अपने बम्बई प्रवास के दौरान उस जमाने में 'इप्टा' की चेतना ने हबीब तनवीर का ध्यान खींचा और वे इससे जुड़ते चले गये। 'इप्टा' के साथ काम करते हुए लोक की गतिशील ऊर्जा ने उन्हें गहरे तक प्रभावित किया था। इस प्रभाव ने ही बाद में हबीब को उनके मंचीय मुहावरे तक पहुँचाया।

यह सच है कि हबीब तनवीर के अधिकांश नाटक लिखित रूप में नहीं हैं। इसका मूल कारण उनका इम्प्रोवाईजेशन पद्धति द्वारा नाटक को तैयार करना था जिस कारण उन्होंने कभी भी अंतिम रूप से नाटक लिख कर उसे मंचन के लिए नहीं दिया। उनके कुछ नाटक स्वतंत्र रूप से बहुत बाद में छपे। उनके नाटक की प्रस्तुतियों के बीच में वह स्पेस, जिसे हबीब नाटकीय दृश्य-बिम्बों से भरते हैं, नाट्य-आलेख के छपे संस्करण में सामने नहीं आता है। इसलिए उनकी प्रस्तुतियां उनके निर्देशन के संदर्भ में तो चर्चित होती रहीं, लेकिन नाट्य लेखन के स्तर पर कोई गंभीर चिंतन नहीं किया गया।

देखा जाए तो हबीब तनवीर के नाट्य लेखन के कई रूप हमारे सामने हैं। पहला रूप बाल नाटक का है। दूसरा रूप मौलिक नाट्य लेखन का है। तीसरा रूप लोककथाओं, लोकशैलियों पर

आधारित नाटकों का है। चौथा रूप है- अनुदित या रूपांतरित। इसमें उन्होंने संस्कृत एवं पाश्चात्य नाटकों को नाट्य रूपांतरण कर प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त हबीब तनवीर ने कुछ कहानियों को भी नाटक का रूप दिया है जिसमें 'शतरंज के मोहरे', 'देख रहे हैं नैन' प्रमुख नाटक हैं।

हबीब तनवीर की रंग प्रक्रिया का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष यह रहा कि उन्होंने विफलताओं, विरोधों और कटु-आलोचनाओं की चौतरफ़ा मार सहते हुए भी अपनी रचनात्मक ज़िद कभी नहीं छोड़ी। उनकी कुछ प्रस्तुतियां बेशक सफल नहीं रही हो, इसके बावजूद उनकी सफल प्रस्तुतियों का मूल्यांकन समकालीन हिंदी रंगमंच की उन उपलब्धियों की ओर इंगित करता है, जो अंतर्राष्ट्रीय नाट्य-फलक पर पूर्व-स्थापित और सर्व-स्वीकृत नाट्य अवधारणाओं तथा मान्यताओं को कलात्मक चुनौती देने में समर्थ सिद्ध हुई हैं।

देखा जाए तो समकालीन हिंदी रंगमंच पर हबीब तनवीर अपनी दोहरी भूमिका निभाते हैं। एक नाटककार के रूप में, दूसरी रंग निर्देशक के रूप में। उनके नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से आधुनिक है, समसायिक हैं तो अपनी प्रस्तुति शैली और तकनीक में परम्परागत। उन्होंने न केवल छत्तीसगढ़ी 'नाचा' की शैली लो लिया, अपितु पंडवानी गायन, पंथी नृत्य, सुआ गीत, चन्दैनी, भारत लीला, स्वांग, प्रह्लाद नाटक जैसी लोकनाट्य शैलियों और विभिन्न प्रदेशों के आनुष्ठानिक प्रयोगों, लोक कथाओं आदि को भी शामिल किया। 'आगरा बाज़ार', 'मिट्टी की गाड़ी', 'गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद', 'अर्जुन का सारथी', 'राजा चंबा और चार भाई', 'चरनदास चोर', 'शाही लकड़हारा', 'जानी चोर', 'चंदैनी', 'जमादारिन', 'बहादुर क्लारिन', 'सोन सागर', 'हिरमा की अमर कहानी' आदि उनके ऐसे नाटक हैं जहाँ उनकी शैली की छाप देखी जा सकती है।

हबीब तनवीर मानते थे कि लोक रंगमंच और बोलियों का रंगमंच ही सबसे सशक्त है।

उनकी रंग चेतना आधुनिकता की उस सोच पर आधारित है जहाँ लोक परम्पराओं की सृजनात्मक क्षमताओं और ऊर्जा का स्वीकार्य है। वह परम्परा को बहुत अच्छे से जानते थे। उन्हें यह ज्ञात था कि परपरा का बहुत सारा हिस्सा मृत, अनुपयोगी और जीवन विरोधी भी है। उनके नाटकों में 'लोक' अपनी स्वाभाविकता में अभिव्यक्त हुआ है। अब चाहे वह उनका 'आगरा बाजार' हो या 'चरनदास चोर', 'हिरमा की अमर कहानी' हो या 'बहादुर कलारिन' सभी में लोक जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है।

'चरनदास चोर' में तो नाटक को लोक जीवन से जोड़ने के सन्दर्भ में 'सतनामी धर्म' की मान्यताओं (सत्य ही ईश्वर है) का पालन हुआ है। 'आगरा बाजार' में नज़ीर की शायरी के माध्यम से लोकतत्त्व उभर कर सामने आते हैं। 'हिरमा की अमर कहानी' नाटक भी बेहद पिछड़े इलाकों के तथाकथित सरकारी विकास की विसंगतियों और आदिवासी जीवन के दुःख दर्द का प्रमाणिक दस्तावेज है। 'गाँव का नाम ससुराल मोर नांव दामाद' में भी छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति जैसे साकार हो उठी है। उनके नाटकों को पढ़ने और देखने के बाद यह धारणा बनती है कि उन्होंने स्थानिक को विश्वजनीन में रूपांतरित कर दिया है।

देखा जाए तो लोक और शहरी रंगशैलियों और तरीकों के तालमेल के जरिये समकालीन जीवन की व्याख्या करना उनके रंगकर्म का उद्देश्य रहा है। उनका रंगकर्म जीवन की पूर्णता का पर्याय है। यही बात उनके प्रदर्शनों को एक भारतीयता भी प्रदान करती है और विश्व स्तर पर भी पहुंचा देती है। इसके कलाकार जन्मजात अभिनेता हैं। वह सब मिलकर जो निर्मित करतें हैं वह कहानियों की अत्यंत समृद्ध विविधता है। इन कहानियों को वे अपनी भाषा और शैली में कहते हैं। यहाँ तक की ब्रेख्त और मौलियर को भी सहज रूप से प्रस्तुत करते हैं। यहाँ स्थानीय मूल और विदेशी शैली के बीच कोई अंतर नहीं रह जाता।

हबीब तनवीर के नाटकों में रंग संगीत भी एक शक्ति थी। वे करवा, ददरिया, विहाव आदि छत्तीसगढ़ी लोक धुनों का प्रयोग करते थे। आज के आपाधापी के दौर में हबीब तनवीर के संगीत में जो एक ठहराव, एक सुकून था, उससे दर्शकों को आत्मीय शांति और कुछ सीखने की प्रेरणा मिलती थी। उनके संगीत में दर्शक बंध जाते थे। हबीब तनवीर के 'चरनदास चोर', 'आगरा बाज़ार', 'बहादुर कलारिन', 'हिरमा की अमर कहानी', 'देख रहे हैं नैन', 'मिट्टी की गाड़ी' जैसे नाटकों में लोक संगीत की प्रभावशाली भूमिका आज इतिहास का एक तथ्य है।

हबीब तनवीर के नाटकों में रंगोपकरण का प्रयोग बहुत सहजता से, सादगी से और बड़ी सूझ-बूझ के साथ हुआ है। वेशभूषा में उन्होंने छत्तीसगढ़ी परिधान को महत्त्व दिया है। वे अपने नाटकों में लोकगीतों, धुनों, संगीत और नृत्य का ऐसा तालमेल रखते थे कि दर्शकों को अपनी मिट्टी से जुड़े होने का अहसास होता था। हबीब तनवीर के नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से बंधे-बंधाएं ढांचे से मुक्त हैं। वे अपने कथ्य को दोहराते नहीं हैं। उनका यह विचार था कि सत्ता के समर्थन में नहीं, बल्कि सत्ता के विरोध में ही सच्ची कला पनपती है, जिसका सीधा संबंध आम आदमी की तकलीफों, दुखों और उनकी विवशताओं से होता है। उनकी प्रस्तुतियों में हर बार कुछ ना कुछ नया होता है। वे एक तरफ अपने नाटकों में शास्त्रीय नाट्य रूढ़ियों का बहिष्कार करते हैं तो दूसरी तरफ तमाम नाट्य-वर्जनाओं को मंच पर दिखाया है।

हबीब तनवीर अपने नाटकों में भाषा की दृष्टि से भी बहुत प्रयोगधर्मी थे। उन्होंने अपने नाटकों में उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेजी आदि के शब्दों का खूब प्रयोग किया। लेकिन अपने नाटकों में जिस बोली को उन्होंने सबसे ज्यादा प्राथमिकता दी वह है छत्तीसगढ़ी। उन्होंने इस बात का हमेशा ध्यान रखाकि उनकी शिक्षित नागर चेतना का लेखक, उनके ग्रामीण अभिनेताओं, कलाकारों पर हावी न पड़े। 'मिट्टी की गाड़ी', 'चरनदास चोर', 'गाँव का नांव सुसुराल मोर नाम

दामाद', 'हिरमा की अमर कहानी', 'बहादुर कलारिन', 'सड़क', 'जमादारिन', 'देख रहे हैं नैन' आदि की प्रस्तुतियों में छत्तीसगढ़ी बोली का भरपूर प्रयोग किया है।

हबीब तनवीर के नाटकों में चरित्र-चित्रण और गीत योजना का भी महत्त्व है। उनके नाटकों में गीत न केवल मनोरंजन करते हैं बल्कि कथ्य को भी आगे बढ़ाते हैं, चरित्र को उभारते हैं। हबीब ने लगभग अपने सभी नाटकों में गीतों का प्रयोग किया है। वे छत्तीसगढ़ की लोक रीतियों, अनुष्ठानों और परम्पराओं को भी अपनी रंगदृष्टि में पूरा स्थान देते हैं। वे कहते थे कि लोक में हो रहा है न। लोग कर रहे थे। वह लोक की जीवंत परम्परा है। उनके पास में लोक की चीजें सजावटी नहीं थी। वे सारे छत्तीसगढ़ को जीते थे। उसे समझते थे। उसकी एक-एक रीति को, उसके संगीत को, उसकी वेशभूषा को, उसकी भाषा को, उसकी कला को, उसके नृत्य को, उसकी गायन को, सब ले आये। एक जनपद जो है, उसको अपनी सम्पूर्णता में संसार के सामने रख दिया तनवीर ने।

हबीब तनवीर ने साबित किया है कि आधुनिक संवेदना से युक्त नए कथ्य को भी पारम्परिक रंग-शैलियों में पूरी क्षमता के साथ संप्रेषित किया जा सकता है। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता लोक शैलियों का सहारा लेकर अभिव्यक्त होती है। उन्होंने 'नाचा' के तत्त्वों और लोक कलाकारों के साथ एक नया रंग संश्लेष गढ़ा जो लोक और समय कालीन, ग्रामीण और आधुनिक, स्थानिक और वैश्विक सब एक साथ था। अतः इनके नाटकों का समग्र मूल्यांकन आवश्यक है क्योंकि ये अपनी शैली, तकनीक और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से देशज हैं, लेकिन कथात्मक रूप से विश्वजनीन, आधुनिक, सम-सामयिक।

सन्दर्भ-ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ

1. तनवीर, हबीब; आगरा बाज़ार; वाणी प्रकाशन ,दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2010.
2. तनवीर, हबीब; चरनदास चोर; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2008.
3. तनवीर, हबीब; गाँव के नांव ससुरार मोर नांव दमाद; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2012.
4. तनवीर, हबीब; बहादुर कलारिन; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2004.
5. तनवीर, हबीब; तीन खेल; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2004.
6. तनवीर, हबीब; हिरमा की अमर कहानी; पुस्तकायन, नयी दिल्ली; संस्करण 1990.
7. तनवीर, हबीब; देख रहें हैं नैन; पुस्तकायन, नयी दिल्ली; संस्करण 1996.
8. तनवीर, हबीब; एक औरत हिपेशिया भी थी; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2004.
9. तनवीर, हबीब; पचरंगी; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2015.
10. तनवीर, हबीब (अनु.); कामदेव का अपना वसंत ऋतु का सपना; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2004.
11. तनवीर, हबीब; (अनु.) ज़हरीली हवा; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2010.

सहायक ग्रन्थ

1. अग्रवाल, प्रतिभा; (सं.) हबीब तनवीर : एक रंग व्यक्तित्व; नाट्य शोध संस्थान, कलकता; संस्करण 1993.

2. अग्रवाल, महावीर; हबीब तनवीर का रंग संसार; श्रीप्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006.

3. आठले, डॉ. उषा वैरागकर; छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य और रंगकर्म; श्रीप्रकाशन, दुर्ग, छत्तीसगढ़; संस्करण 2006.

4. ओझा, डॉ. दशरथ; हिंदी नाटक : उद्भव और विकास; राजपाल एंड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली; संस्करण 2012.

5. अंकुर, देवेन्द्रराज; अन्तरंग बहिरंग; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2004.

6. अंकुर, देवेन्द्रराज; पहला रंग; राजकलम प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1999.

7. अंकुर, देवेन्द्रराज; रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2000.

8. अंसारी, डॉ. प्रवीन नियाज; लोक साहित्य के विविध आयाम; विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, उत्तरप्रदेश ; संस्करण 2016.

9. अवस्थी, सुरेश; हे सामाजिक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2002.

10. कौड़ा, डॉ. स्वामी प्यारी; हिंदी नाटक और रंगमंच में लोकतत्त्व; सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, रोहणी, नई दिल्ली; संस्करण 2013.

11. किशोर, ब्रजराज; हिंदी नाटक और रंगमंच: समकालीन परिप्रेक्ष्य; जनप्रिय प्रकाशन, पंजाबी बाग, दिल्ली; संस्करण 1980.

12. कुमारी वी. एल, डॉ. रीना; हिंदी नाटक और रंगमंच; विद्या प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2019.

13. खां, जावेद अख्तर; हिंदी रंगमंच की लोकधारा; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2013.

14. गार्गी, बलवंत; रंगमंच; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1968.

15. गुप्त, सोमनाथ; पारसी थियेटर : उद्भव और विकास; लोक भारती प्रकाशन, इलाहबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2015.

16. गौतम, डॉ. सुरेश; भारतीय लोक साहित्य कोष (खंड-1,4); संजय प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली; संस्करण 2010.

17. गौड़, अरविन्द; नुक्कड़ पर दस्तक; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2019.

18. गुंदेचा, संगीता; नाट्यदर्शन; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2012.

19. चातक, गोविद; हिंदी नाटक इतिहास के सोपान; तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2002.

20. चातक, गोविन्द; (सं.) भारतेंदु हरिश्चंद्र के सम्पूर्ण नाटक; तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 1998.

21. चैनी, शेल्डान; श्रीकृष्णदास; (अनु.) रंगमंच; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2009.

22. जैन, नेमिचंद्र; रंगपरम्परा : भरतीय नाट्य में निरंतरता और बदलाव; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1996.

23. जैन, नेमिचंद; रंग दर्शन; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1996.

24. जैन, नेमिचन्द; तीसरा पाठ; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1998.

25. ठाकुर, डॉ. आशा गुप्ता (अनु.); संस्कृति का ताना–बाना; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2016.

26. डॉ. सत्येन्द्र; लोक साहित्य विज्ञान; राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, राजस्थान; संस्करण 2006.

27. डॉ. अज्ञात; भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास; पुस्तक संस्थान, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 1978,

28. तनेजा, सत्येन्द्र कुमार; नाटककार भारतेंदु की रंग-परिकल्पना; राधाकृष्ण प्रकाशन, जगत पूरी, दिल्ली; संस्करण 2002.

29. तनेजा, जयदेव; आधुनिक भारतीय रंग-परिदृश्य; तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली; संस्करण 1992.

30. तनेजा, डॉ.जयदेव; हिंदी रंगकर्म :दशा और दिशा; तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2010.

31. तनेजा, जयदेव; आधुनिक भारतीय रंग–परिकल्पना; तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 1992.

32. तनेजा, जयदेव; आधुनिक भारतीय नाट्य–विमर्श; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जगत पूरी, नई दिल्ली; संस्करण 2010.

33. तनेजा, जयदेव; नाट्य प्रसंग; तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2017.

34. तनेजा, जयदेव; रंग साक्षात्कार; किताब घर प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2014.

35. तिवारी, कपिल (सं.); रंगभूमि : मध्यप्रदेश के जनपदों की लोकनाट्य शैलियों पर

विमर्श और पाठ; आदिवासी लोककला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल, मध्यप्रदेश; संस्करण 2009.

36. दुबे, श्यामसुन्दर; लोक : परम्परा, पहचान और प्रवाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगत पूरी, नई दिल्ली; संस्करण 2004.

37. देसाई, डॉ.बापूराव; लोकसाहित्य शास्त्र; विकास प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2004.

38. दईया, पीयूष (सं.); लोक; भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, राजस्थान; संस्करण 2002.

39. निरगुणे, वसंत; लोकसंस्कृति; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश; संस्करण 2012.

40. पुष्कल, अजित अग्रवाल, हरीशचंद्र (सं.); नाटक के सौ बरस; शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण 2004.

41. बिरही, डॉ. परशुराम शुक्ल; लोकसंस्कृति : अवधारणा और तत्त्व; मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश; संस्करण 2011.

42. भारती, ओमप्रकाश; बिहार के पारम्परिक नाट्य; उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2007.

43. भार्गव, भारतरत्न; रंग हबीब; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली; संस्करण 2006.

44. भार्गव, भारतरत्न; भारतीय नाट्य परम्परा और आधुनिकता; नई किताब प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण 2020.

45. भानावत, डॉ.महेंद्र; भारतीय लोकनाट्य; आर्यावर्त्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली; संस्करण 2014.

46. महावर, निरंजन; लोकरंग : छत्तीसगढ़; राधाकृष्ण प्रकाशन, जगत पूरी, नई दिल्ली; संस्करण 2014.

47. मुद्राराक्षस; रंग भूमिकाएँ; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली; संस्करण 2006.

48. मधुरेश; हिंदी आलोचना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2012.

49. यादव, डॉ. राजन; विविध : साहित्यिक निबंध माला; साहित्य संगम, लूकरगंज, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश; संस्करण 2012.

50. रंजन; अंगिका लोकसाहित्य; शब्दसृष्टि प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 2009.

51. रस्तोगी, गिरीश; समकालीन हिंदी नाटककार; इंद्राप्रस्थ प्रकाशन, कृष्ण नगर, नयी दिल्ली; संस्करण 1982.

52. रस्तोगी, गिरीश; नाट्यचिन्तन और रंगदर्शन : अंतरसंबंध; किताबघर प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2013.

53. रस्तोगी, डॉ. गिरीश; आधुनिक हिंदी नाटक; ग्रंथम, कानपुर, संस्करण 1968.

54. रस्तोगी, गिरीश; बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच; भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली; संस्करण 2015.

55. रस्तोगी, डॉ. गिरीश; समकालीन हिंदी नाटक की संघर्ष-चेतना; हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, हरियाणा; संस्करण- 1990.

56. रस्तोगी, गिरीश; रंग भाषा; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली; संस्करण 1999.

57. रंजन; अंगिका लोक साहित्य; शब्द्सृष्टि प्रकाशन, दिल्ली; संस्करण 2009.

58. राघव, रांगेय (रूपान्तरकार); मृच्छकिटक, राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली.

59. लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण; रंगमंच और नाटक की भूमिका; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली; संस्करण 1989.

60. लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण; पारसी हिंदी रंगमंच; केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार; संस्करण 1973.

61. वजाहत, असग़र; जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नई; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दरियागंज, नयी दिल्ली; संस्करण 2013.

62. शर्मा, डॉ. हरद्वारी लाल; लोक-वार्ता विज्ञान; उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, उत्तरप्रदेश; संस्करण1990.

63. शर्मा, एच. वी.; रंग स्थापत्य; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली; संस्करण 2012.

64. शर्मा, डॉ. कुंज बिहारी; छत्तीसगढ़ : हिंदी रंगमंच; वैभव प्रकाशन, रायपुर, छत्तीसगढ़; संस्कार 2008.

65. शुक्ल, डॉ. दयाशंकर; छत्तीसगढ़ी लोक-साहित्य का अध्ययन; वैभव प्रकाशन, रायपुर, छत्तीसगढ़; संस्करण 2011.

66. सक्सेना, डॉ. रामप्रकाश; मध्य भारत के लोकगाथा गीत; प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली; संस्करण 1994.

67. सांकृत्यायन, महापंडितराहुल, उपाध्याय, कृष्णदेव (सं.); हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास-16 वां खंड; काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उत्तरप्रदेश; संस्करण 1959.

68. सहाय, डॉ. लक्ष्मण; रंगकर्म और नाटककार; तरुण प्रकाशन, गाजियाबाद; संस्करण 2016.

69. सुलभ, हृषीकेश; रंग अरंग; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2012.

70. सुबोध, डॉ. माधुरी; हमारी रंग अस्मिता; इंटरनेशनल पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 1994.

71. सिंह, बच्चन; हिंदी नाटक; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जगत पूरी, नयी दिल्ली; संस्करण 2014.

72. सिंह, डॉ. केदारनाथ; हिंदी के प्रतीक नाटक और रंगमंच; विद्या विहार, गाँधी नगर, कानपुर, उत्तरप्रदेश; संस्करण 1985.

73. त्रिपाठी, वशिष्ठ नारायण; भारतीय लोकनाट्य; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2001.

74. त्रिपाठी, आशीष; समकालीन हिंदी रंगमंच और रंगभाषा; शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली; संस्करण 2007.

75. त्रिपाठी, राधावल्लभ; संक्षिप्तनाट्यशास्त्रम; वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली; संस्करण 2000.

अंग्रेजी पुस्तक

1. Farooqui, Mahmood (translator); Habib Tanvir Memoirs; penguingroup, new Delhi; 2014

2. Malik, Neeraj; Javed Malik (edi.) Habib Tanvir : Reflections & Reminiscences; Sahmat, Safdar Hashmi Memorial Trust, 29, Ferozeshah Road, New Delhi. 2012

3. Tiwari, kapil; Pratyaya : Dialogue on Tribal and Folk Culture; Aadivasi lok-kala Parishad, Bhopal; 1993

पत्रिकाएँ

1. आलोचना (त्रैमासिक); (सं.) अपूर्वानंद; अंक 58, अप्रैल-जून, 2016.
2. उन्मेष; (सं.) डॉ. शिवेन्द्र कुमार मौर्य; अंक 6, मई-अक्तूबर, 2020.
3. कलावार्ता; (सं.) प्रो. कमला प्रसाद; अंक 103, 2003.
4. चौमासा; (सं.) कपिल तिवारी, अंक 85, मार्च-जून, 2011.
5. चौमासा; (सं.) कपिल तिवारी, अंक 16, फरवरी-जून, 1988.
6. चौमासा; (सं.) कपिल तिवारी, अंक 7, फरवरी-जून, 1985.
7. रंगकर्म (इप्टा रायगढ़ की वार्षिक पत्रिका); (स.) उषा वैरागकर आठले, जनवरी 2010.
8. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 2, अंक 1, जनवरी-जून, 1999.
9. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 3, अंक 1, जनवरी-जून, 2000.
10. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; अंक 7, जनवरी-जून, 2001.
11. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 5, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2002.
12. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 7, अंक 3, जुलाई-सितम्बर,2002.
13. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 9, अंक 3, अप्रैल-जून, 2006.
14. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 9, अंक 2, जुलाई-सितम्बर, 2006
15. रंग प्रसंग; (सं.) प्रयाग शुक्ल; वर्ष 9, अंक 4, अक्तूबर-दिसम्बर, 2006.
16. नटरंग; (सं.) अशोक वाजपेयी; खंड 25, अंक 88, जनवरी-जून, 2014.
17. नटरंग; (सं.)नेमिचंद्र जैन; खंड 18, अंक 71, सितम्बर- 2003.

18. नटरंग; (सं.)अशोक वाजपेयी; अंक 86-87, जुलाई-दिसम्बर, 2010.

19. प्रतिमान; (सं.) अभय कुमार दुबे; प्रेवशांक, अंक 1, जनवरी-जून, 2013.

20. नुक्कड़ जनम संवाद; (सं.) अशोक तिवारी; अंक 23-26, अप्रैल 2004- मार्च-2005.

21. कला समय; (सं) विनय उपाध्याय; अगस्त-जनवरी, 1999-2000.

पत्र

1. लोकमत समाचार; नागपुर; रविवार; 20/10/2002
2. दैनिक ट्रिब्यून; नई दिल्ली; सोमवार; 19/02/2004
3. पत्रिका; रायपुर; सोमवार; 30/08/2004
4. जनसत्ता; नई दिल्ली; रविवार; 29/07/2018

वेबसाइट

1. https://www.rekhta.org
2. https://Rangwimarsh.blogspot.com
3. http://www.Suhai-bilasa.blogspot.com
4. http://www.tehelkahindi.com